प्रकाशक—हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग
मुद्रक—श्री ई. पी. ठाकुर, [illegible] प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

प्रथम भाग

क. प्राकृत साहित्य

ख. अपभ्रंश साहित्य

द्वितीय भाग

संकेत चिह्न

इं० ए०	इंडियन एंटिक्वेरी ।
इं० हि० क्वा०	इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ।
ए० भं० ओ० रि० इं०	एनाल्स भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना ।
जेड० डी० एम० जी०	त्साइत्श्रिफ्ट देर डोयशेन मोरगेनलेंडिशेन गेजेलशाफ्ट ।
ना० शा०	भरतमुनि प्रणीत नाट्य शास्त्र ।
हि० सं० लि०	हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर एस० के० दे ।

प्राक्कथन

संस्कृत भाषा और साहित्य की तुलना में प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ और साहित्य भारतवर्ष की जनता के अधिक निकट रहे हैं और उनमें सर्वसाधारण की धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक प्रतिक्रियाएँ अधिक नैसर्गिक रूप में सुरक्षित है। अपने देश की आधुनिक भाषाओं और साहित्यिक धाराओं पर भी संस्कृत भाषा और साहित्य के साथ साथ प्राकृत तथा अपभ्रंशों का कम प्रभाव नहीं पड़ा है। कुछ अंगों में तो आधुनिक भाषाएँ और साहित्य प्राकृत तथा अपभ्रंशों के अधिक निकट हैं। इसी कारण हिन्दी साहित्य के समस्त संभव मूल आधारों को समझने के उद्देश्य से मैंने १९४८ के लगभग डा० तोमर को प्रस्तुत अध्ययन की ओर अग्रसर किया था। यह कार्य जो थीसिस के रूप में १९५१ में पूर्ण हो गया था अब लगभग बारह वर्षों के बाद पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

जिस समय यह कार्य किया गया था उस समय हिन्दी में प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यिक धाराओं के विस्तृत अध्ययन उपलब्ध नहीं थे। इस ग्रंथ में पहली बार इतने पूर्ण विस्तार के साथ इन साहित्यिक धाराओं का परिचय दिया गया था। इस खंड के अधिक बड़े हो जाने के कारण हिंदी साहित्य पर इनके प्रभावों से संबंधित दूसरे खंड की सामग्री को संक्षेप में देना पड़ा था। इतना समय बीत जाने पर भी इस महत्वपूर्ण अध्ययन की वैज्ञानिकता और उपादेयता में कोई कमी नहीं हुई है। विद्वान लेखक ने आश्वासन दिया है कि १९५१ के बाद प्रकाश में आने वाली नवीन अपभ्रंश साहित्य संबंधी सामग्री का वे ग्रंथ के नवीन संस्करण में अवश्य समावेश करेंगे। मेरा सुझाव है कि उस समय प्रभावों वाले खंड को भी यदि वे परिवर्धित कर सकें तो अच्छा होगा।

आशा है कि हिंदी साहित्य के मूलस्रोतों को समझने में डा० तोमर के इस महत्वपूर्ण ग्रंथ से इस विषय के विद्यार्थियों और विद्वानों को विशेष सहायता मिलेगी। साधारण पाठक भी इसे उपयोगी और रोचक पावेगा। विद्वान लेखक को इसके प्रकाशन पर मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

भाषाविज्ञान विभाग	धीरेन्द्र वर्मा
विश्वविद्यालय, सागर

प्रस्तावना

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन की ओर ध्यान आकर्षित कराने का श्रेय यूरोपीय विद्वानो को है। सन् १८५४ ई० मे अंग्रेज विद्वान कावेल ने वररुचि के 'प्राकृत प्रकाश' का एक संस्करण प्रकाशित किया, और साथ मे अंग्रेजी अनुवाद भी दिया। प्राकृतो के अध्ययन की ओर निश्चित ही इस प्रयास से विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। सन् १८७७ ई० मे जर्मन विद्वान डा० रिचार्ड पीशेल ने हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण का एक संस्करण प्रकाशित कराया। प्राकृत और अपभ्रंश के वर्तमान अध्ययन का प्रारंभ वास्तव मे पीशेल के उस सुसंपादित हैम व्याकरण के संस्करण से ही मानना चाहिए। उसके पश्चात् अनेक वर्षो के कठोर परिश्रम और समस्त उपलब्ध प्राकृत अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन करके पीशेल ने सन् १९०० मे अपनी अत्यंत महत्वपूर्ण कृति 'ग्रामाटीक देर प्राकृत श्प्राखेन' को स्ट्रासबुर्ग नगर से प्रकाशित करा दिया। उस प्रयास को आधी शताब्दी हो गई, प्राकृत और अपभ्रंश का बहुत सा साहित्य प्रकाश मे आ चुका है, लेकिन अभी तक ऐसा कोई प्रयास नहीं हुआ है जो पीशेल की इस महान् कृति का स्थान ले सके। पीशेल को उस समय जितनी अपभ्र श सामग्री का पता चल सका था उसका क्रम-बद्ध अध्ययन करके उन्होने अपने प्राकृत व्याकरण के पूरक के रूप मे 'आइन नाख-ट्राग त्सूर ग्रामाटीक देर प्राकृत श्प्राखेन-माटेरिआलिएन त्सूर केन्टनिस डेस् अप-भ्रंश' (अपभ्रंश ज्ञान के लिए सामग्री) नाम से १९०२ ई० में बेर्लीन से प्रकाशित कराया। प्राकृत भाषा के इस महान् पडित का स्वर्गवास मद्रास मे हुआ।

पीशेल के समान ही एक दूसरे दिग्गज जर्मन पंडित, बोन यूनीवर्सिटी के संस्कृत-प्राकृत के अध्यापक, डा० हेरमान्न याकोबी ने प्राकृत और अपभ्रंश के अध्ययन को आगे बढाया। जैन आगमो से चुनकर उन्होंने १८८६ में प्राकृत कथाओं का एक संग्रह 'आउसगेवाल्टे एरत्जेलुंगेन इन महाराष्ट्री' नाम से प्रकाशित कराया और अनेक जैनागमो तथा कालकाचार्य कथानक, पउमचरियं, समराइच्चकहा जैसी प्राकृत कृतियो के सुसपादित संस्करण प्रकाशित कराए। और फिर बड़ी ही

विद्वत्तापूर्ण भूमिकाओं सहित अपभ्रंश 'भविसयत्तकहा' (१९१८, म्यूनिक) और 'सनत्कुमार चरित' (१९२१) के संस्करण प्रकाशित कराए। इधर भारत मे प्रसिद्ध विद्वान म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री ने १९१६ ई० में बौद्ध सिद्धो की अपभ्रंश रचनाओं को प्रकाशित किया जिससे अपभ्रंश का अध्ययन और आगे बढ़ा। और उधर बडौदा मे बडौदा नरेश की आज्ञा से चिमनलाल डाह्याभाई दलाल ने पाटण के भंडारो का अवलोकन किया और अनेक अपभ्रंश कृतियों के अस्तित्व की सूचना पहिली वार दी। भविष्यदत्त कथा की दलाल को और प्रतियाँ मिलीं और उनके आधार पर उन्होंने एक नया संस्करण प्रस्तुत किया जिसे दलाल की असामयिक मृत्यु के पश्चात् डा० पी० डी० गुणे ने पूरा किया और सन् १९२३ मे यह संस्करण प्रकाश मे आया। इसी समय डा० हीरालाल जैन ने कारंजा के जैन भंडारो तथा अन्य भंडारो का अवलोकन किया और अनेक अपभ्रंश के महत्व-पूर्ण ग्रंथो की सूचना 'इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज' (१९२५) मे प्रकाशित अपने एक लेख के द्वारा दी और 'सावयधम्म दोहा', 'पाहुड दोहा', 'करकंडु चरित', 'नागकुमार चरित' के सुंदर सुसंपादित संस्करण प्रकाशित कराये। डा० पी० एल० वैद्य ने पुष्पदन्त की अनुपम विशाल कृति 'महापुराण' और 'जसहर चरिउ' का संपादन किया जो क्रमशः माणिक्य चंद्र ग्रंथमाला और कारंजा सीरीज मे प्रकाशित हुए। सन् १९२९ मे विद्यापति की 'अवहट्ठ कृति कीर्तिलता' का संपादन डा० बाबूराम सक्सेना ने किया जो नागरी प्रचारिणी-सभा काशी से प्रकाशित हुआ। चर्यापदों के अध्ययन की धारा भी चलती रही, डा० शहीदुल्ला १९२८, ४०, डा० बागची ने चर्यापदो और दोहाकोष के अध्ययन को और आगे बढ़ाया। सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं से हिन्दी जगत का परिचय कराने का श्रेय राहुल सांकृत्यायन को है। अब इस समय अनेक संस्थाओं और विद्वानों का ध्यान अपभ्रंश की ओर गया है और सराहनीय कार्य हो रहा है। इनमे भारतीय विद्याभवन, भारतीय ज्ञानपीठ संस्थाएँ प्रमुख हैं, तथा डा० लुदविग आल्सडोर्फ, डा० आ० ने० उपाध्ये, डा० भायाणी आदि विद्वान प्रमुख हैं। आल्सडर्फ की, पुष्पदन्त के 'महापुराण' का एक अंश 'हरिवंशपुराण', 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अपभ्रंश अंशो का अध्ययन, प्रमुख संपादित कृतियाँ हैं। एक छोटी सी कृति 'अपभ्रंश स्टूडिएन' मे भी अपभ्रंश का सुंदर अध्ययन उन्होंने प्रस्तुत किया है। डा० उपाध्ये ने 'परमात्म प्रकाश' का संपादन किया और भायाणी ने 'संदेशरासक' का संपादन किया है। जिस कार्य का सूत्रपात डा० पीशेल द्वारा हुआ और डा० याकोबी, दलाल, डा० गुणे, डा० हीरालाल जैन, डा० बाबूराम सक्सेना, म० म० हरप्रसाद शास्त्री, डा० पी० एल०

वैद्य, डा० शहीदुल्ला, डा० बागची, मुनि जिन विजय ने जो अग्रगामी (पायोनियर) कार्य किया उसके परिणामस्वरूप आज अपभ्रंश का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है और अनेक विद्वान अपभ्रंश के अध्ययन को अग्रसर करने मे लगे हैं। अभी भी अपभ्रंश साहित्य की पूरी सामग्री का पता नहीं लग सका है। प्राय. किसी न किसी शास्त्र भंडार मे नवीन अपभ्रंश कृतियो के अस्तित्व की सूचना मिलती रहती है। अभी हाल मे आमेर शास्त्र भंडार मे ऐसी अनेक अपभ्रंश कृतियो के होने की सूचना प्रकाशित हुई है जिनका अभी तक कोई पता नहीं था। इसका श्रेय जैन साधुओ को और विद्वानो को है जिन्होंने प्रयत्नपूर्वक इस साहित्य की रक्षा की। इन अग्रगामी कार्यकर्त्ता विद्वानो के परिश्रम के फलस्वरूप आज के आधुनिक भारतीय आर्यभाषा साहित्य के विद्यार्थी का मार्ग बहुत सुगम हो गया है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रारंभ उत्सुकतावश हुआ। अपभ्रंश के प्रति लेखक का प्रारभ मे एक कौतूहल का भाव था। हिन्दी साहित्य की धाराओ के मूल उत्सो को जानने की जिज्ञासा मन मे थी। गुरुवर आचार्य प्रो० डा० धीरेन्द्र वर्मा के उत्साहित करने पर इस मनोरम साहित्य का अध्ययन प्रारंभ करने का साहस लेखक ने किया। प्रारभ मे यह साहित्य लेखक को जैसा शुष्क लगता था, उस समय अपने गुरु के दिशा निर्देशन से भी मन मे बहुत उत्साह नहीं था। आज श्रद्धेय आचार्य के इस अनुग्रह के लिए, कि उन्होने इस अत्यत उत्कृष्ट साहित्य से परिचय कराया जिसका ज्ञान उत्तर भारत की संस्कृति और साहित्य को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है, अपने आचार्य के प्रति लेखक बहुत ही कृतज्ञता का भाव अनुभव कर रहा है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ का जो कुछ भी थोडा सा ज्ञान लेखक को प्राप्त हुआ है, वह श्रद्धेय प्रो० डा० बाबूराम जी सक्सेना की कृपा से। दो वर्ष उनकी कक्षाओ मे बैठकर लेखक ने प्राकृतापभ्रंश का अध्ययन किया। 'सेतुबंध', 'जसहरचरिउ' आदि कृतियो को जिस आकर्षक और विद्वत्तापूर्ण ढग से श्रद्धेय आचार्य सक्सेना जी ने पढाया था उसका स्मरण करके मन उत्साह से भर जाता है। अपभ्रंश का अध्ययन प्रारभ करते समय प्रो० डा० हीरालाल जी जैन ने लेखक को बड़ा उत्साहित किया था और अनेक बहुमूल्य परामर्श दिए थे। आचार्य डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी की छाया मे रहकर लेखकने तीन वर्ष शान्तिनिकेतन मे अध्ययन को चालू रखा। आचार्य द्विवेदी जी ने लेखक की अनेक प्रकार से सहायता की है।

डा० प्रबोधचंद्र बागची से भी समय-समय पर अनेक सुझाव मिले। श्रद्धेय डा० पी० एल० वैद्य का स्नेह और कृपा भी लेखक को बराबर मिलती रही है। इस युग के छंद शास्त्र के प्रकाड पंडित प्रो० ह० दा० वेलंकर ने लेखक के पत्रों

का तुरत उत्तर देकर, बहुमूल्य परामर्श देकर, अनेक बार उत्साहित किया है, उनकी उदारता के लिए लेखक बहुत ही कृतज्ञ है। डा० मालाप्रसाद जी गुप्त की सदा कृपा रही है। अनेक समय अनेक प्रकार से उन्होंने उत्साहित किया है। सच ही यह प्रस्तुत लेखक का सौभाग्य है कि अपने समय के प्रथम श्रेणी के इतने विद्वानो की कृपा उसे मिल सकी। इन मनीषियो का प्रस्तुत लेखक कितना ऋणी है यह व्यक्त करना उसके लिए कठिन है। इन विद्वानो की कृपा से अपभ्रंश साहित्य की सीमाओं को लेखक जान सका है, आगे उसका अध्ययन करके उसके स्वरूप को और भी स्पष्ट कर सकेगा ऐसा उसका विश्वास है और गुरु ऋण का इस प्रकार आंशिक शोध हो सकेगा।

प्रस्तुत अध्ययन के दो भाग हैं। प्रथम भाग मे प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है और दूसरे भाग मे हिन्दी साहित्य की धाराओ को अपभ्रंश साहित्य के प्रकाश में समझने की चेष्टा की गई है। हिन्दी साहित्य की धाराओ के मूल आधार अपभ्रंश साहित्य मे मिलते हैं। दूसरे भाग मे इसके केवल सकेत भर किए हैं। इन विभिन्न धाराओं को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए शास्त्र भंडारो मे पडी समस्त सामग्री का अध्ययन और परीक्षण आवश्यक है। लेखक का दृढ विश्वास है कि अपभ्रंश साहित्य का और भी अवगाहन करने पर हिन्दी साहित्य के सभी रूपो के मूल स्रोत मिल सकते हैं और इस प्रकार उनका प्रारंभ चौदहवीं शती न होकर सातवीं आठवीं शती वि० तक पहुँचेगा। इस अध्ययन को पूर्ण बनाने के लिए अभी अनेक वर्षो तक और अध्ययन करने का प्रस्तुत लेखक का विचार है। प्रस्तुत निबंध को बडे ही सकोच के साथ यह प्रस्तुत कर रहा है क्योंकि इसमे अनेक त्रुटियाँ और अपूर्णताएँ रह गई हैं।

प्राकृत अपभ्रंश से संबंधित सामग्री प्राप्त करने में लेखक को अनेक सज्जनों से सहायता मिली है, दिल्ली के बाबू पन्नालाल जी जैन अग्रवाल, श्री पं० परमानन्द जैन, आमेर शास्त्र भडार, जयपुर के अधिकारी, जैन सिद्धान्त भवन आरा के प्रबंधक, श्री कामता प्रसाद जी जैन, अलीगंज, पं० महेन्द्रकुमार जी जैन, श्री अगरचंद जी नाहटा, तथा अन्य अनेक व्यक्तियो और संस्थाओ को लेखक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता है और सभी का अत्यत आभारी है। वास्तव मे यह प्रयास गुरुजनों, मित्रों और अनेक शुभचिन्तको की नाना प्रकार की सहायता से ही संभव हो सका है और उन सबका लेखक अत्यंत कृतज्ञ है।

कृति को जिस रूप मे प्रस्तुत किया था, उसी रूप मे छापने दिया जा रहा है-अनेक कारणो से छपने मे विलंब होता गया। इस बीच मे बहुत सी नवीन

सामग्री प्रकाश मे आई। हिंदी मे अपभ्रंश के परिचायक कुछ ग्रंथ भी निकल चुके हैं। अपनी त्रुटियो का लेखक को पूरा ध्यान है। यदि अवसर मिला तो अगले संस्करण मे सभी समस्याओ पर विस्तार से विचार किया जा सकेगा। हिंदी परिषद् के अधिकारियो का लेखक आभारी है कि इस कृति को परिषद् ने प्रकाशित करने की उदारता दिखाई।

रामसिंह तोमर
शान्ति निकेतन,
मई १९६३।

१

प्राकृत साहित्य

प्राकृतो का भारतीय आर्य-भापाओ के इतिहास मे बडा महत्वपूर्ण स्थान है। सस्कृत के अतिरिक्त देश की सस्कृति का माध्यम प्राकृतें बहुत समय तक रही और उनका स्थान क्रमश उनकी उत्तराधिकारिणी आधुनिक भारतीय आर्य-भापाओ ने ले लिया। प्राचीन किसी भी वैयाकरण ने प्राकृतो की उत्पत्ति के विपय मे कुछ नही लिखा है। सस्कृत के साधु शब्दो के अतिरिक्त जो भी शब्द थे उन्हे अपशब्द, भ्रष्ट कहकर सतोप किया।[1] बहुत पीछे किसी प्राचीन सस्कृत की पक्षपातिनी परपरा का अनुसरण करते हुए कुछ वैयाकरणो ने प्राकृतो का आधार सस्कृत को बता कर प्राकृत की उत्पत्ति की अपूर्ण व्याख्या की। हेमचंद्र ने किसी प्राचीन आधार का अनुगमन करते हुए कहा,[2] 'प्रकृति सस्कृतम्, तत्रभवं तत आगतं वा प्राकृतम्।' अर्थात् प्रकृति या मूल-आधार सस्कृत है, उससे जो उत्पन्न हुई या निकली वह प्राकृत है। और इस व्याख्या का औरो को भी पता था।[3] स्पष्ट है कि इन वैयाकरणो का प्राकृत की उत्पत्ति की व्याख्या करना उद्देश्य नही था। सस्कृत शब्द को लेकर भी इसी तरह की व्याख्या की जा सकती है। कुछ विद्वानो ने प्राकृतो को ही प्रधानता दी है और 'प्रकृति' को प्राकृत

१. महाभाष्य, निर्णयसागर, १९३८, पृ० ३१।

२ हेमचंद्र के पूर्व के 'न्यायकुमुदचद्र' आदि ग्रंथों मे भी इसी व्याख्या का उल्लेख है, दे० न्यायकुमुदचंद्र स्फोटवाद प्रकरण।

३. मार्कण्डेय : प्रकृतिः सस्कृतं, तत्र भवं प्राकृतमुच्यते, धनिक कृत दशरूपकावलोक (बंबई १९४१ ई०) २.६४ प्रकृतेरागतं प्राकृतं, प्रकृतिः संस्कृतं, प्रकृतिः तद्भवं तत्सम देशीत्यनेक प्रकारकम्, इत्यादि दे० पीशेल : ग्रामाटिक अनुच्छेद १।

का आधार माना है या 'प्राक् कृत' पूर्व मे हुई वह प्राकृत है । इस प्रकार की व्याख्या की है। जैन सूत्रो मे अर्धमागधी को सर्वप्रधान माना है ।[1]

प्राकृत वैयाकरणो ने महाराष्ट्री को प्रधान प्राकृत माना है[2] तथा इसके अतिरिक्त कुछ को छोडकर शेष सब ने शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची तथा अपभ्रंश प्राकृतो का उल्लेख किया है । पैशाची और अपभ्रंश के अनेक भेदो के भी उल्लेख वैयाकरणो ने किए है ।[3] प्राकृत वैयाकरणो को उनके द्वारा किए गए प्राकृतो के विवेचन के आधार पर दो वर्गों मे विद्वान विभाजित करते हैं—पूर्वीय वर्ग और पश्चिमीय वर्ग ।[4] पूर्वीय वर्ग शाकल्य, भरत तथा कोहल को अपना आदि आचार्य मानता है, इस वर्ग के प्रतिनिधि वररुचि है और अन्य वैयाकरणो मे क्रमदीश्वर, लकेश्वर, रामशर्म तर्कवागीश तथा मार्कण्डेय कवीन्द्र है। पश्चिमी वर्ग वाल्मीकि से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है, इस वर्ग मे त्रिविक्रम, हेमचद्र, लक्ष्मीधर तथा सिंहराज है ।[5] वैयाकरणो

---

१. पीशेल, वही, अनु० १६. ।

२. दंडी : महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्टं, प्राकृतं विदुः, काव्यादर्श १.३४, कुछ विद्वान महाराष्ट्री को प्रधान प्राकृत नहीं मानते, दे० डा० मनमोहन घोष द्वारा संपादित कर्पूरमंजरी की भूमिका (कल० १९४८) पृ० १०,११ तथा २६ और आगे तथा उनका लेख 'माहाराष्ट्री ए लेटर फार्म अव् शोरसेनी' जर्नल अव द डिपार्टमेंट अव लेटर्स भाग कल०विश्व० २३, १९३३ ।

३. मार्कण्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' मे भाषा, विभाषा, अपभ्रंश तीन वर्गों के अनेक उपभेद किए हैं, विजगापट्टम १९२७ ।

४. दे० ग्रियर्सन के विविध लेख, अपभ्रंश एकार्डिंग टु मार्कण्डेय एण्ड ढक्की प्राकृत ज० रा० ए० सो० १९१३ पृ० ८७५-८३, द प्राकृत धात्वादेशाज एकार्डिंग टु द वेस्टर्न एन्ड द ईस्टर्न स्कूल अव प्राकृत ग्रामेरिएन्स, मेमोएर्स ए० सो० बंगाल ८. २. कल० १९२४, द ईस्टर्न स्कूल अव् प्राकृत ग्रामेरिएन्स, सर आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबिली वोल्यूमज, वाल्यूम ३, पार्ट २ पृ० ११९—१४१, कल० १९२५, ले ग्रामेरियं प्राकीत्स, नीती दोलची, पारी १९३८, पृ० ८९ और आगे ।

५. शाकल्य और कोहल के केवल नाम मात्र मिलते हैं, मार्कण्डेय ने शाकल्य और कोहल का उल्लेख किया है । भरत की कोई 'प्राकृत व्याकरण' पर कृति नहीं मिलती, नाट्यशास्त्र (अध्याय १७, ६-२३) मे संक्षिप्त

द्वारा विवेचित प्राकृतो मे से महाराष्ट्री मे अनेक साहित्यिक कृतियाँ मिलती हैं। शौरसेनी मे भी भारतीय नाट्यशास्त्र के कुछ पद्य, सट्टक तथा नाटकीय गद्यांश मिलते हैं। अर्धमागधी [1] मे जैन सम्प्रदाय का धार्मिक साहित्य मिलता है। मागधी के भी कुछ प्रयोग मिलते है। पैशाची मे इस समय कोई साहित्य उपलब्ध नही है, गुणाढ्य की लुप्त कृति बृहत्कथा [2] के पैशाची मे होने के कारण कदाचित् उसे इतना सम्मानप्रद स्थान मिला हो। अपभ्रंश मे भी पर्याप्त साहित्य मिलता है। वैयाकरणो द्वारा किए गए अन्य प्राकृत-भेदो का कोई साहित्य नही मिलता। सभव है उनमे साहित्य रचना न हुई हो और केवल बोलचाल के लिये उनका प्रयोग होता होगा।

वैयाकरणो द्वारा जो विवेचन प्राकृतो का हुआ है वह इस समय उपलब्ध प्राकृत साहित्य की दृष्टि से अपूर्ण है। जैन प्राकृतो का भाषा की दृष्टि से अलग विवेचन आवश्यक था किन्तु केवल आर्ष [3] प्राकृत का हेमचद्रादि ने उल्लेख भर किया है। जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी का विवेचन नही किया है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष की प्राकृत, खरोष्ठी धम्मपद, शिलालेखो मे प्रयुक्त प्राकृत, बौद्ध [4], जैन, शैव सप्रदाय के अनुयायियो द्वारा व्यवहृत 'मिश्र सस्कृत' इत्यादि प्रचुर सामग्री इस समय उपलब्ध है जिसका विवेचन प्राकृत व्याकरणकारो ने कही नही किया है। बहुत सभव है व्याकरण लेखको ने केवल साहित्यिक प्राकृतो को ही स्थान दिया हो, कम से कम सबसे प्राचीन प्राकृत व्याकरण प्राकृत प्रकाश से तो यही प्रतीत होता है। यह भी सभव है, कि इन वैयाकरणो को सपूर्ण प्राकृत साहित्य का पता न हो। वैयाकरणो के अतिरिक्त प्राकृत कवियो ने प्राकृत

विवेचन है। तथा कुछ उद्धरण (अध्याय ३२) मिलते हैं। वररुचि का प्राकृत प्रकाश भामह, रामपाणिवाद की वृत्तियो सहित मिलता है। भामह काश्मीरी होने के कारण किसी वर्ग मे नहीं आते। शेष के लिये दे० प्राकृत प्रकाश पूना १९३१, भूमिका पृ० ८ और आगे।

१. जैन प्राकृत, पीशेल : ग्रामाटिक० अनुच्छेद १६-२०।
२. दे० ला कोतः एसाइ सुर गुणाढ्य ए ला बृहत्कथा, पारी १९०८, दंडी, काव्यादर्श १.३८।
३. ऋषियो की, हे० व्याकरण ८.३।
४. बौद्ध संप्रदाय में ललितविस्तरादि ग्रंथों की अशुद्ध संस्कृत को 'गाथा डायलेक्ट' या 'मिश्र संस्कृत' कहा गया है, दे० पीशेल अनु० १०।

साहित्य के स्वाभाविक सौंदर्य, उसकी सुकुमारता तथा प्राकृत भाषा की श्रेष्ठता के सबध मे अनेक बार उल्लेख किए है, अनेक कवियो ने उच्छ्वसित होकर प्राकृत की प्रशसा की है।[1] प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से साहित्यिक, धार्मिक और ऐहिकतापरक प्राकृत का ही अध्ययन आवश्यक समझा गया है, किन्तु प्राकृत साहित्य का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से अन्य प्राकृत साहित्य की ओर भी सकेत कर दिया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ६०० ई० पू० से १८०० ई० तक के इस सपूर्ण प्राकृत साहित्य का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है[2]

१ धार्मिक प्राकृत साहित्य—

अ विशुद्ध धार्मिक, साप्रदायिक सिद्धान्तो आदि का विवेचन, पाली मे रचित बौद्ध साहित्य, अर्धमागधी, शौरसेनी मे रचित जैन धार्मिक साहित्य।

आ धार्मिक साहित्यिक पाली कथा-साहित्य, जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी मे रचित साहित्य, तथा जैनो द्वारा लिखित अपभ्र श साहित्य।

२ साहित्यिक (ललित) प्राकृत महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची, और अपभ्र श साहित्य।

अ स्वतत्र कृतियो के रूप मे तथा

आ अन्य ग्रन्थो मे उद्धरणो के रूप मे प्राप्त होने वाला प्राकृत साहित्य।

३ नाटको मे प्रयुक्त प्राकृत।

४ भारत के उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेशो मे प्राप्त प्राकृत साहित्य—प्राकृत धम्मपद, निय प्राकृत तथा खोतान, मध्य एशिया आदि मे प्राप्त प्राकृत साहित्य।

५ शिलालेखादि मे प्रयुक्त प्राकृत।

६ मिश्र सस्कृत—'गाथा डायलेक्ट'।

पाली यद्यपि भाषा की दृष्टि से प्राकृत का ही एक रूप है किन्तु सामान्यत उसे प्राकृत से अलग ही माना जाता है, वैयाकरणो की तथा साहित्य की इसी

---

१. ऐसे अनेक उद्धरणो के लिए दे० अपभ्र श काव्यत्रयी-भूमिका पृ० ७५ और आगे बडौदा—१९२६ ई०।

२. डा० एस० एम० कात्रे : प्राकृत लेग्वेज एन्ड देअर कंट्रिब्यूशन टु इंडियन कल्चर (बंबई १९४५ ई०) पृ० ९, १०।

परपरा के अनुसार उसका अध्ययन यहाँ आवश्यक नही समझा गया। और प्रतीत ऐसा होता है कि हिन्दी साहित्य से वह बहुत दूर पडता है, उसका कदाचित् ही कोई प्रभाव पडा हो इससे भी उसे छोड दिया गया है। इसी प्रकार धार्मिक जैनागमो (अर्धमागधी और जैन शौरसेनी) का भी अध्ययन आवश्यक नही प्रतीत हुआ। उसे भी छोड दिया गया है। जैन प्राकृत-साहित्य का अध्ययन आवश्यक समझा गया है, क्योकि जैन अपभ्र श-साहित्य और जैन प्राकृत-साहित्य मे विषय-विवेचन, शैली और भावधारा की दृष्टि से कोई अतर नही है। पाली साहित्य और जैन धार्मिक कृतियो की अनेक प्रकार की टीकाओ मे जो मनोरम कथा-साहित्य मिलता है तथा अन्य अनेक साहित्यिक विशेषताएँ मिलती हैं उनका अवश्य ही समस्त भारतीय साहित्य पर प्रभाव पडा होगा। भाषा, सस्कृति, धर्म, इतिहास की दृष्टि से इस साहित्य का मूल्य बहुत ही अधिक हे। प्रस्तुत ग्रथ मे केवल साहित्यिक प्राकृत-साहित्य का ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

जैन प्राकृत साहित्य

जैन सप्रदाय की सबसे बडी विशेषता रही है कि साहित्य रचना की धारा को उसने कभी भी मद नही होने दिया। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श, लोकभाषाएँ सभी मे जैन रचनाएँ मिलती हैं।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही जैन सप्रदायो द्वारा प्राकृत मे साहित्य लिखा गया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्यो ने शौरसेनी प्राकृत मे लिखा है और श्वेताम्बरो ने महाराष्ट्री मे।[1] विमल सूरि कृत पउमचरिय[2] प्रथम उपलब्ध कृति है जिसमे राम कथा है। राम कथा का जैन रूप इस कृति मे मिलता है। पुराण शैली मे ग्रथित इस कृति मे ११८ उद्देश (अध्याय) हैं। समस्त कृति का विस्तार ९००० पद्यो से भी अधिक है। प्रचलित राम कथा के सम्बन्ध मे श्रेणिक राज की अनेक शकाओ का समाधान करने के लिए गौतम गणधर ने यह कथा कही है। प्रसिद्ध राम कथा के सभी प्रमुख पात्र इसमे मिलते हैं, प्रधान पात्र सभी जैन धर्म मे दीक्षित दिखाए गए है और अनेक स्थलो पर मानवीकरण

---

१. विद्वानों ने इन प्राकृतो को 'जैन शौरसेनी' तथा 'जैन महाराष्ट्री' कहा है, सामान्य प्राकृत से कुछ भेद इन प्राकृतो में मिलता है। दे० पीशेल, ग्रामाटिक० अनु० १६, २०,२१।

२. डा० हेरमान याकोबी द्वारा संपादित, जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से प्रकाशित, १९१४ ई०।

का प्रयास किया गया है ।[1] कथा मे भी कुछ नवीन तथ्य मिलते हैं जैसे वालि का विरक्त होना, रावण की लक्ष्मण के हाथो से मृत्यु ।

पउमचरिय की भाषा और शैली सरल और प्रवाहयुक्त है । कवित्व की अपेक्षा कथा कहने की ओर कवि का अधिक ध्यान प्रतीत होता है । महाराष्ट्री मे रचित इस कृति की भाषा मे जहाँ तहाँ अपभ्रंश का भी आभास मिलता है ।[2] गाथा छद की कृति मे अधिकता है किन्तु अन्य छदो का भी प्रयोग मिलता है ।[3]

कृति के रचयिता विमलसूरि के विषय मे विशेष कुछ भी ज्ञात नही है । अन्त मे कवि ने अपने को राहु नामक आचार्य के शिष्य विजय का शिष्य बताया है, विजय को नाइल कुल वशोद्भूत (नागिल वश) कहा है । अपने को भी विमलसूरि ने इसी वश मे उत्पन्न हुआ कहा है । राहु और विजय के सबध मे कुछ ज्ञात नही है । कृति का रचनाकाल कवि ने वीर निर्वाण तिथि का ५३० वाँ वर्ष बताया है ।[4] इसका तात्पर्य होगा कि कृति की रचना ४ या ६४ ई० मे हुई ।[5] यवन ज्योतिष, भाषा तथा छदो के प्रयोग के आधार पर विद्वानो का अनुमान है कि कृति ईस्वी सन् की चतुर्थ शती से पहिले की रचना नही हो सकती ।[6]

पादलिप्ताचार्य :

तरगवती नामक सुन्दर कथा-ग्रथ के केवल उल्लेखमात्र मिलते है, पादलिप्त बहुत प्राचीन काल मे हुए थे इसके प्रमाण उनकी लुप्त कृति तरगवतीकथा के प्राचीन कृतियो मे पाये जाने वाले उल्लेख हैं ।[7] तरंगवती कथा का एक सक्षिप्त

---

१. जैसे राक्षसों को विद्याधर कहना, वानरों की उत्पत्ति, हनुमत् जन्मकथा (उद्देश १५-१८) हनुरुहपुर मे जन्म होने के कारण हनुमान नाम पड़ा । रावण के दशमुखो का स्पष्टीकरण उसके गले में एक हार था जिसमें दशप्रतिबिंब दिखने से उसका नाम दशानन पड़ा आदि ।

२. उपाध्ये, परमात्मप्रकाश, भूमिका, पृ० ८६ टिप्पणी ।

३. के० ह० ध्रुव, पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना, (बंबई, १९३२) पृ० २८१ ।

४. पउमचरियं ११८.१०३ ।

५. एम० विंटरनित्स, हि० इं० लि०, भाग २ महावीर का निर्माण काल, पृ० ६१४-६१५ ।

६. एम० विंटरनित्स, वही पृ० ४७८ ।

७ तरंगवती का उल्लेख अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक विशेष भाष्य (जिनभद्र

रूपान्तर तरगलोला नाम से प्राप्त हुआ है ।[1] सक्षिप्तकर्ता नेमिचन्द्र ने बताया है कि पादलिप्त की कृति बहुत बडी थी, उसमे देशी वचनो का आधिक्य था और वह समझने में कठिन थी । यह कथा विचित्रा और विपुला थी । तरगलोला का विस्तार १९०० श्लोक है इससे मूल कृति के विस्तार की कल्पना की जा सकती है ।

प्रभावक चरित मे प्राप्त एक प्रबन्ध के अनुसार पादलिप्त, हाल महाराज की राजसभा मे थे तथा उनका जन्म कोशल मे हुआ था और वयस्क होने पर उन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली थी । पादलिप्त के सम्बन्ध में अनेक अनुश्रुतियाँ भी इस प्रबध मे मिलती हैं जैसे, पादलिप्त का उज्जैन के राजा विक्रम की सभा मे कवि होने का उल्लेख आदि । जिन कृतियो मे तरगवती कथा का उल्लेख हुआ है उनमे सबसे प्राचीन अनुयोगद्वार सूत्र है जिसका काल 'सन् ईसवी की पाँचवी शती है, अत पादलिप्त का समय इससे पूर्व अवश्य होना चाहिये ।[2] पादलिप्ताचार्य जैन सप्रदाय में अत्यत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति थे लेकिन उनके सबध मे निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नही है ।

संघदास गणि :

महाराष्ट्री प्राकृत मे रचित वसुदेव हिंडि सघदास गणि कृत सुन्दर गद्य मे लिखित कृति है ।[3] बीच बीच मे पद्य भी बिखरें हुए हैं । हिंडि का अर्थ भ्रमण है, नाम के अनुकूल ही कृति मे वसुदेव के भ्रमण की कथा है । कृति के प्रारभ मे

गणि कृत); कुवलयमाला (दक्षिणचिह्न उद्योतनसूरि); तिलकमंजरी (धनपाल कृत) ।

१. दे० १. भारतीय विद्या, भाग २, अंक १, नवंबर ४०, मुनि जिनविजय 'कुवलयमाला' पृ० ८०-८१ ।

२. सनत्कुमार चरित, संपा० एच० याकोबी, पृ० १८ भूमिका;

३. वसन्तरजत महोत्सव स्मारक ग्रंथ पृ० २५९ और आगे ।

४. तरंगलोला का गुजराती अनुवाद जैन साहित्य सशोधक खंड २ मे ।

५. जिनरत्नकोश पृ० १५८ ।

६. जर्मन अनुवाद, लायमन्न १९२१ ई०, इत्यादि ।

२. एम० विंटरनित्स, हि० इं० लि० भाग २, पृ० ४७८ ।

३. कृति का प्रथम खंड दो भागो (भावनगर, १९३० तथा १९३१ ई०) मे प्रकाशित हुआ है जिसमें २८ लंबक हैं। कृति का गुजराती अनुवाद प्रो० भो० जें० संडेसरा ने किया है, भावनगर, २००३ वि० ।

धम्मिल हिंडि नामक एक स्वतंत्र रचना मिलती है। वसुदेव हिंडि का प्रारंभ पीठिका मे होता है फिर मुख, प्रतिमुख तथा शरीर कृति के विभाग हैं। संपूर्ण कृति १०० लम्बको मे विभक्त है। प्रमुख कथा के अतिरिक्त कृति मे अनेक कथाएँ ग्रथित हैं, कथा के मूल आधार महाभारत और हरिवंश हैं। कृति का आदर्श कदाचित् गुणाढ्य की बृहत्कथा थी जैसा 'हिंडि' के कथा विभाग मे अनुमित किया जा सकता है। कृति सरल शैली मे लिखी गई है, कही कही अत्यंत लंबे समासो की छटा भी मिलती है।[1] भाषा के रूपो मे प्रा , अप्रचलित प्रयोग भी मिलते हैं।[2] देश, नगरो के वर्णनो मे काव्य शैली का ोग मिलता है।

कृति को दो व्यक्तियो ने पूरा किया . संघदास और धर्म दास। कृति की प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि इसका उल्लेख जिनभद्र क्षमाश्रमण (७वी शती ई०) ने अपनी रचना विशेषणवती मे तथा हरिभद्र और मलयगिरि ने आवश्यक निर्युक्ति की टीकाओ मे किया है। इस प्रकार 'हिंडि' का रचनाकाल सातवीं शती ईसवी से पूर्व माना जा सकता है। भाषा के आधार पर प्रो० लुडविग आल्सडर्फ कृति का रचनाकाल ईसवी की छठवीं शती से पहिले मानते हैं।[3]

हरिभद्र :—

समराइच्चकहा (समरादित्य कथा)[4] हरिभद्र की सुन्दर गद्य-बद्ध कथा कृति है। हरिभद्र ने कृति की भूमिका में कथा का विवेचन किया है और अपनी

तथा दे० जर्नल अव द ओरिएंटल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा, भाग १०, सं०१, पृ० ७ और आगे प्रो० संडेसरा का लेख-कलचरल डेटा इन द वसुदेव हिंडि. . . ।

१. दे० प्रथम खंड प्रथम अंश, पृ० १३२ गंधर्वदत्ता का रूप वर्णन, पृ० १५७ ऋषभस्वामिचरित, पृ० १७५-१७६ वज्रजंघ का वर्णन, प्राय. वर्णनों में ही समास बहुल शैली का प्रयोग हुआ है।

२. एनल्स भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग १६, पृ० ३२।

३. बुलेटिन अव् दि स्कूल अव् ओरिएंटल स्टडीज, यूनी ्टी अव् लंदन, भाग ८, पृ० ३२० और आगे प्रो० आल्सडर्फ का लेख।

४. डा० हेरमान्न याकोबी द्वारा संपादित, बिब्लियोथेका इंडिका सीरीज में प्रकाशित १९२६ ई०। भव १, २ और ९ गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद मे अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित हुए हैं।

कृति को दिव्य-मानुष वस्तु से युक्त धर्मकथा कहा है। कृति का नायक गुणसेन और प्रतिनायक अग्निशर्मा है। दोनो के नौ जन्मों (भवो) की कथाएँ हैं। गुणसेन राजकुमार था और अग्निशर्मा राजकुल के पुरोहित का कुरूप पुत्र था। राजकुमार द्वारा उपहसित होने पर वह विरक्त हो जाता है और वैराग्य की दीक्षा लेता है। प्रसगवश राजा, साधु अग्निशर्मा को कई बार आमन्त्रित करता है किन्तु कार्य व्यस्त होने के कारण प्रत्येक बार उसका सत्कार करने मे चूक जाता है। अग्निशर्मा इसको अपमान समझ कर निराहार मरण की प्रतिज्ञा लेकर निदान (हठ) करता है कि प्रति जन्म मे वह राजा से बदला ले। अगले नौ जन्मो मे अग्निशर्मा राजा से वैर लेता है। अतिम जन्म मे राजकुमार उज्जैन का राजा समरादित्य होता है और मोक्ष प्राप्त करता है। मूल स्वभाव के कारण अग्निशर्मा सब से निम्न नरक को जाता है।

प्रधान कथा के साथ कृति मे अन्य छोटी छोटी अनेक आख्यायिकाएँ मिलती है।[1] हरिभद्राचार्य का कथा कहने का ढग बडा सरस है। कृति की भाषा साहित्यिक महाराष्ट्री (जैन) है। गद्य और पद्य की भाषा मे थोडा सा अन्तर मिलता है। गद्य मे अनेक अप्रचलित शब्द मिल जाते है, पद्य की भाषा परिनिष्ठित महाराष्ट्री है। पद्यो मे प्रधानत गाथा छद प्रयुक्त हुआ है।[2] कथाओ के मूल स्रोतो के विषय मे हरिभद्र ने कहा है कि पूर्वाचार्यो तथा गुरु से उन्हे प्राप्त हुई।[3] भारतीय जीवन के अनेक पक्ष उनकी इस कृति मे मिलते हैं।[4] परवर्ती अनेक कवि उनकी इस कृति से प्रभावित हुए होगे।[5]

---

१ उदा० अमरगुप्त की कथा पृ० ८३, मधुबिंदु दृष्टात पृ० ११०, तृतीय भव मे विजयसिंह और अजित की कथाएँ इत्यादि दे० डा० याकोबी द्वारा लिखित कृति की भूमिका पृ० २१।

२. वही भूमिका पृ० ३३।

३. प्रथम भव की प्रारभिक गाथाओ तथा अतिम भव की गाथाओ में हरिभद्र ने संकेत किए हैं।

४. यथा प्रेम प्रसग, विवाह वर्णन, राजसभाओ के चित्र, यात्रा वर्णन, शबर, चाडाल ठगो के वर्णन।

५. यशोधर चरित, सनत्कुमार चरित जैसी कृतियो की कथाओं के मूल बीज प्रस्तुत कृति में मिलते हैं। भविष्यदत्तकथा की कथा का भी मूल स्रोत कृति मे खोजा जा सकता है।

हरिभद्र की दूसरी साहित्यिक कृति धूर्ताख्यान है।[१] प्राकृत पद्यबद्ध प्रस्तुत कृति ब्राह्मण सम्प्रदाय पर एक कटु व्यंग्य-काव्य है। चार धूर्त पुरुष और एक धूर्त स्त्री अपने अपने जीवन के असभव अनुभवो को अति-रजित ढग से सुनाते हैं और ब्राह्मण, रामायण, महाभारत आदि से उनकी पुष्टि करते हैं। व्यग्य द्वारा हरिभद्र ने पौराणिक घटनाओ की असत्यता पर प्रहार किया है। उनकी कृति का व्यंग्य काव्य के रूप मे भारतीय साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

हरिभद्र को अनेक कृतियो का रचयिता कहा जाता है।[२] किन्तु उनकी उपर्युक्त दो ही साहित्यिक कृतियाँ ज्ञात हैं। उन की कृतियो मे उनके सबध मे जो सूचनाएँ मिलती है तथा परवर्ती कृतिकारो ने जो उल्लेख किए है उनके अनुसार वे श्वेताम्बर जैन सप्रदाय के थे, उनके दीक्षागुरु जिनदत्त सूरि थे। याकिनी महत्तरा उनकी धर्मजननी थी, इन्होने उन्हे जैन धर्म की दीक्षा दी थी, पहिले वे सर्वशास्त्रनिष्णात् वेदानुयायी ब्राह्मण थे। चित्रकूट (चित्तौड) दुर्ग पर रहते थे। अनेक प्रमाणो के आधार पर आचार्य का समय ७००-७८० ई० (७५७-८२७ वि०) विद्वान मानते है।[३]

उद्योतनसूरि :

समरादित्य कथा के समान ही उद्योतनसूरि विरचित कथाकृति 'कुवलयमाला कथा है[४]। प्रस्तुत कृति भी जैन महाराष्ट्री मे रचित धर्म कथा है। कृति के अत मे लेखक ने अपने सबध मे उल्लेख करते हुए कहा है कि इस कृति की रचन

---

१. भारतीय विद्याभवन, बंबई से प्रकाशित १९४४ ई०।

२. मुनि श्री जिनविजय का लेख 'श्री हरिभद्राचार्यस्य समय निर्णयः' प्रोसीडिंग्स, फर्स्ट ओरिएंटल कान्फ्रेंस, पूना, १९२९ ई०।

३. वही।

४. जिनविजय मुनिः कुवलयमाला (ए जैन स्टोरी अव द एट्थ सेंचुरी ए० डी०), भारतीय विद्या (अग्रेजी) खंड २, अंक १, नवंबर ४० ई०, तथा वसन्त रजत महोत्सव स्मारक ग्रंथ, (अहमदाबाद) मे पृ० २५९, २८४ प्रकाशित इसी कृति पर आचार्य श्री जिनविजय का लेख. भारतीय विद्या-भवन, बंबई, भाग १, १९५९ ई० से प्रकाशित तथा बुले० स्कूल अव् ओरिएंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, यूनिवर्सिटी अव् लदन, भाग १३, पृ० ४१०-४१५ तथा पृ० १००४-१६ पर आल्फ्रेड मास्टर के लेख—ग्लीनिंग्ज फ्रॉम द कुवलयमालाकहा तथा भूमिका अपभ्रंश काव्यत्रयी, बड़ौदा, १९२७ ई०

उन्होंने जावालिपुर मे की। रचनाकाल कवि ने शक सं० ७०० दिया है ।[1] उद्योतन सूरि का दीक्षा के पश्चात् दाक्षिण-चिह्न नाम प्रचलित हो गया था। हरिभद्र तथा उद्योतनसूरि मे गुरु-शिष्य का सबध था। अन्य अनेक लेखको के कृति मे नाम मिलते हैं ।[2] ऐतिहासिक, सामाजिक, भाषा आदि अनेक दृष्टियो से कृति महत्वपूर्ण है।

पादलिप्त, हरिभद्र, उद्योतनसूरि आदि की लौकिक कथा कृतियो के समान अन्य और भी कथा कृतियो की रचना हुई होगी। कुछ के अस्पष्ट उल्लेख प्राप्त कृतियो मे मिलते हैं। इस प्रकार की लौकिक कथाएँ साहित्यिक सरसता लिए हुए हैं, धार्मिक आवरण इनमे बहुत हल्का है। जैन साहित्य मे एक दूसरे प्रकार का कथासाहित्य मिलता है जिसका प्रधान दृष्टिकोण धार्मिक है। सप्रदाय के प्रसिद्ध पौराणिक तथा धार्मिक ऐतिहासिक पुरुषो को आधार बनाकर अनेक कथा ग्रथो की रचना हुई है। इसी कोटि मे एक दूसरे प्रकार के कथा ग्रथ मिलते है जिनमे धर्मोपदेश-प्रधान अनेक कथाएँ सग्रहीत मिलती हैं। ऐसी कृतियो मे मूल गाथाओ की टीका के रूप मे कथाएँ कही गई हैं। आगे इस साहित्य का अत्यत सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

जयसिंह सूरि :

उपदेशो से युक्त मूलगाथाओ के भाव को स्पष्ट करने के लिए जैन साहित्य में अनेक कथाओ की सृष्टि हुई है। धर्मदास गणि की उपदेशमाला जैसी रचनाओ की मूलगाथाओ ने अनेक कथानको को रचना के लिए लेखको को उत्साहित किया है। जयसिंह सूरि ने भी ९८ मूल गाथाओ को स्पष्ट करने के लिए दानादि सर्वमान्य धार्मिक नैतिक सदुपदेशो से सबधित १५६ कथाओ की सुन्दर प्राकृत गद्य-पद्य मे रचना की है।[3] इन कथाओ मे अनेक प्रकार के मनोरजक प्रसग मिलते हैं, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सामग्री यत्रतत्र बिखरी मिलती है ।[4] कृति मे जयसिंह सूरि ने अपना परिचय भी दिया है। मूल गाथाओ

---

१. भा० वि०, वही, पृ० ८१ ।

२. यथा पादलिप्त, षटपर्णक, गुणाढ्य, व्यास, वाल्मीकि, बाण, विमल आदि के तथा कुछ कथा कृतियो के भी उल्लेख मिलते हैं।

३. धर्मोपदेश माला विवरण, भारतीय विद्या भवन, बंबई, १९४९ ई०, लालचन्द्र भगवानदास गान्धी द्वारा संपादित ।

४. वही, प्रस्तावना पृ० ४–५ ।

के रचयिता कौन थे इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता । स० ९१५ वि० मे प्रस्तुत धर्मोपदेश माला विवरण की रचना कृष्णमुनि के शिष्य जयसिंह सूरि ने नागौर नगर मे की ।[1] सूरि की अन्य कोई कृति उपलब्ध नही हुई है ।

शीलाचार्य :

जैन सम्प्रदाय मे मान्य ६३ महापुरुषो[2] को लेकर अनेक कृतियो का प्रणयन हुआ है । शीलाचार्य या शीलाक सूरि ने इन महापुरुषो के चरित्रो का वर्णन अपनी विशाल कृति महापुरुष चरित मे किया है । कृति का रचना काल ९२५ वि० स० (८६८ ई०) है ।[3]

विजयसिंह सूरि :

विजयसिंह सूरि ने एक विशाल चम्पू ग्रथ भुवनसुन्दरी कथा की रचना सन् ९१७ ई० मे की ।[4]

कालकाचार्य कथानक :

अज्ञात नाम और काल वाले किसी कवि की एक रचना आचार्य कालक के कथानक से सबधित मिलती है जिसमे उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल की पराजय की कथा है । कृति का रचनाकाल दसवी शती ई० के आसपास हो सकता है ।[5]

---

१. वही, प्रस्तावना, पृ० १० और आगे ।

२ २४ तीर्थंकर, भरतादि १२ चक्रवर्ती, रामादि ९ वासुदेव-अर्धचक्रवर्ती, तथा इनके प्रतिस्पर्धी रावणादि ९ प्रतिवासुदेव तथा वासुदेवों के भ्राता ९ वलदेव इस प्रकार सब ६३ महापुरुष हैं, जिनको शलाका पुरुष कहा जाता है । कुछ आचार्य ९ वलदेवो की गणना शलाका पुरुषों मे नहीं करते और ५४ शलाकापुरुष ही मानते हैं ।

३. एनल्स भ० ओ० रि० इं० १९३४–३५ पृ० ३६ तथा जिनरत्नकोश पृ० ३०५ ।

४. ए० भं० ओ० रि० इं० १९३४-३५ पृ० ३६ तथा जिनरत्नकोश को पृष्ठ २९८ ।

५० प्रस्तुत कृति का एक रूप डा० याकोबी द्वारा सपादित होकर जेड डी० एम० जी० भाग ३४, १८८० ई० मे प्रकाशित हुआ है । इसी कृति के अनेक रूपान्तर अंग्रेजी अनुवाद सहित डवल्यू० नार्मन ब्राउन द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुए हैं, वाशिंगटन, यू० एस० ए० १९३३ ई०, तथा ओरिएंटल कालेज लाहौर से प्रकट होने वाली पत्रिका में डा० बनारसीदास द्वारा कुछ अंश हिन्दी मे अनूदित हुआ है ।

धनेश्वर मुनि :

गाथाबद्ध १६ परिच्छेदो मे समाप्त सुरसुन्दरी चरित्र[1] सुन्दर प्रेमाख्या है। विद्याधर और सुरसुन्दरी की प्रेम कथा कृति का विषय है जो अनेक आशा निराशाओं के पश्चात् अन्त मे परिणय द्वारा मिलते है। कृति मे पर्याप्त काव्यात्मकता है। इस सरस कृति की रचना कवि ने चड्डावल्लिपुरी मे गुरु की आज्ञा से स० १०९५ वि० मे की। धनेश्वर नामक अनेक जैन कृतिकार हुए है, प्रस्तुत धनेश्वर मुनि जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे, मुनि ने और भी अनेक कृतियो की रचना की है।[2]

महेश्वरसूरि :

गाथाबद्ध दस आख्यान महेश्वरसूरि की कृति ज्ञान पचमी कथा[3] मे हैं। दसों कथाओ मे २००० गाथाएँ है। प्रत्येक आख्यान मे पचमी व्रत से सबंधित एक आख्यान है। अन्तिम भविष्यदत्त आख्यान है, जो अपभ्रंश कृति भविष्यदत्त कथा मे और भी विस्तार के साथ उपलब्ध होता है। कृति मे ग्रथित आख्यानो मे राजाओ, द्वीपो, नगरो आदि के मनोरम काव्यमय वर्णन तथा प्रचुर सुभाषित मिलते है।[4]

महेश्वर सूरि का समय निश्चित नही है। ज्ञानपचमी कथा की प्राचीनतम प्रतिलिपि स० ११०९ की मिलती है अत महेश्वर सूरि ११०९ वि० स० के पूर्व अवश्य हुए हैं।[5] कृति की पुष्पिका मे उन्होने अपने को सज्जन उपाध्याय का शिष्य कहा है। महेश्वर सूरि नामक अनेक जैन कृतिकार हुए है किन्तु प्रस्तुत महेश्वर सूरि से कुछ पीछे हुए है, केवल सजम मजरी[6] के रचयिता महेश्वर

---

१ जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला सख्या १, सपादक मुनिराज श्रीराज विजय, बनारस १९१६ ई०।

२ दे० कृति मे संपादक की भूमिका।

३ सिंघी जैन ग्रंथमाला में डा० अ० स० गोपाणी द्वारा संपादित होकर भारतीय विद्या भवन बंबई से प्रकाशित, १९४९ ई०।

४. ज्ञानपंचमी, भूमिका पृ० २९,३५ तथा महेश्वरकृत पंचमी माहात्म्य और तद्गत सुभाषित भारतीय विद्या १९४२, भाग २, अंक २।

५ ज्ञा० प० की भूमिका पृ० ७, ८ तथा पृ० १०।

६ वही भूमिका पृ० ८,१०।

सूरि को इनसे अभिन्न माना जा सकता है किन्तु कोई निश्चित प्रमाण इसका नही है। महेश्वर सूरि की अन्य कोई कृति उपलब्ध नही हुई है।

चंद्रप्रभ महत्तर :

गाथाबद्ध जैन महाराष्ट्री मे रचित विजयचन्द्र चरित[1] के दो रूपान्तर प्राप्त होते हैं, एक छोटा है दूसरा बृहत्काय। चद्रप्रभ ने इस कथा कृति मे जिनपूजा से मिलनेवाली शुभ गति को स्पष्ट करने के लिए आठ कथाएँ कही हैं। चंद्रप्रभ ने जिनपूजा के विविध प्रकारो का चित्रण अपनी कृति द्वारा किया है। वे अभयदेव सूरि के शिष्य थे। अपने शिष्य वीरदेव गणि के आग्रह से वि० स० ११२७ मे देववाट नगर में उन्होने प्रस्तुत कृति की रचना की।

जिनेश्वर सूरि :

कथाकोश प्रकरण[2] का मूल (३० गाथायें) और उसकी वृत्ति रूप गद्यकथाएँ दोनो ही जिनेश्वर सूरि की रचनाएँ हैं। इन कथाओ मे जिनदेव की पूजा करने के फल आदि विषयो को लेकर श्रावको को उपदेश दिया गया है। कथाओ की भाषा प्राकृत गद्य है, जहाँ तहाँ सस्कृत पद्य भी उद्धृत किए गए हैं और दो एक स्थलो पर अपभ्रंश के पद्य भी मिलते हैं।[3] इन कथाओ में लेखक की मौलिकता के अनेक स्थलो पर दर्शन होते हैं। भाव, भाषा-कौशल, अलकृत शैली तथा तत्कालीन परिस्थिति आदि अनेक रूपो मे लेखक की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। विभिन्न सम्प्रदायो मे परस्पर ईर्ष्या द्वेष के मनोरजक चित्र जहाँ तहाँ इन कथाओं मे मिलते हैं।[4] जिनेश्वर सूरि ने कृति की अन्तिम प्रशस्ति मे कुछ उल्लेख किए हैं जिनमे ज्ञात होता है कि उन्होंने वि० सं० ११०८ मे इस कृति की रचना की। वे आचार्य वर्द्धमान सूरि के शिष्य थे, इस कृति को उन्होने जाबालिपुर (जोधपुर राज्य मे जालोर) मे समाप्त किया।[5] जिनेश्वर सूरि बडे प्रभावशाली आचार्य

---

१. कृति का एक रूपान्तर जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से प्रकाशित हो चुका है, १९०६ ई० तथा वहीं से कृति का गुजराती भाषान्तर भी प्रकट हुआ है। जि० र० को० पृ० ३४५।
२. सिघी जैन ग्रंथमाला ग्रन्थांक ११, संपा० आचार्य जिनविजय मुनि, भारतीय विद्या भवन, बंबई १९४९ ई० :
३. वही, पृ० ४२, ३।
४. वही, भूमिका पृ० १०६-१२३।
५. वही, भूमिका, पृ० २ और आगे।

थे। उनके जीवन के सबध मे समकालीन तथा परवर्ती कृतिकारो ने पर्याप्त लिखा है।[1] कथाकोश प्रकरण के अतिरिक्त उन्होंने एक और बड़ी कथा, प्राकृत गाथा बद्ध कृति निर्वाण लीलावती कथा की रचना की थी किन्तु यह रचना अभी तक उपलब्ध नही हुई है। संस्कृत मे रचित इस कृति का एक सार प्राप्त हुआ है।[2] इसके अतिरिक्त सूरि ने कुछ अन्य ग्रथो की भी प्राकृत मे तथा सस्कृत मे रचना की जिनमे सप्रदाय के सिद्धान्तो तथा धार्मिक विषयों का विवेचन किया है।[3]

गुणचंद्र मुनि :

अन्तिम तीर्थंकर को लेकर गुणचद्र मुनि ने अपनी विशालकाय कृति महावीर चरित[4] की आठ प्रस्तावो मे प्राकृत गद्य पद्य से रचना की है। संप्रदाय मे प्रचलित चरित्र को ही आधार बनाकर मुनि ने लगभग आधी कृति में महावीर के पूर्व जन्मो की कथा कही है और फिर उनके जन्म से लेकर निर्वाण तक की कथा शेष कृति मे कही गई है। इस प्रकार कथावस्तु में कोई मौलिकता न होकर वर्णन शैली मे काव्य की छटा देखने को मिलती है। राजा, नगर, वन आदि के सजीव वर्णन कृति मे मिलते हैं, जिन पर सस्कृत काव्यशैली का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। कृति मे अपभ्र श पद्य भी जहाँ तहाँ मिलते हैं। भाषा परिष्कृत व्याकरण सम्मत प्राकृत (महाराष्ट्री) है।

कृति के अन्त मे रचयिता ने जो प्रशस्ति दी है उसमे कहा है कि अपने गुरु सुमतिवाचक के वचनो से उत्साहित होकर प्रस्तुत कृति की उन्होंने रचना की। अपने हितैषी श्रेष्ठि वीर का भी वृत्तान्त कवि ने दिया है। कृति का रचना काल स० ११३६ वि० दिया है।[5]

हेमचंद्र :

कुमारपालचरित[6] का एक अश प्राकृत मे है जिसको हेमचद्राचार्य ने प्राकृत

---

१. वही, भूमिका पृ० ७ और आगे।
२. वही, भूमिका पृ० ६६।
३. वही, भूमिका पृ० ४३ और आगे।
४. देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थांक ७५, बंबई, १९८५ वि० सं०।
५. महावीर चरित प्रस्ताव ८, पद्य ४९ और आगे।
६. एस० पी० पंडित द्वारा संपादित, प्रथम संस्करण, बंबई, १८७२ ई०, द्वितीय सस्करण, डा० पी० एल० वैद्य द्वारा संपादित, भंडारकर इंस्टीट्यूट, पूना, १९३२ ई०।

द्वयाश्रय महाकाव्य नाम दिया है। सपूर्ण कृति मे २८ सर्ग है जिनमे से प्रथम २० सर्ग सस्कृत मे है। अतिम आठ सर्ग प्राकृत तथा अपभ्र श मे है। सपूर्ण कृति की रचना दो उद्देश्यो की सिद्धि के लिये हुई है कुमारपाल के चरित वर्णन तथा सस्कृत और प्राकृत के सिद्ध रूपो के प्रयोग के लिये, इसी कारण कुमारपाल चरित और द्वयाश्रय काव्य दोनो ही नाम प्रस्तुत कृति के लिए प्रयुक्त हुए है। हेम-चद्राचार्य के व्याकरण[1] मे आठ अध्याय है जिनमे से प्रथम सात अध्यायो मे सस्कृत व्याकरण का विवेचन है और उसके अनुसार प्रस्तुत काव्य के प्रथम बीस सर्गो मे सस्कृत शब्दो का प्रयोग किया है। व्याकरण के आठवे अध्याय मे प्राकृत तथा अपभ्र श का विवेचन है और इनमे आए शब्दो का प्रयोग उदाहरणस्वरूप काव्य के २१-२८ सर्गो मे हुआ है। इन दो उद्देश्यो की सिद्धि के लिए जो श्रम किया है उसके कारण कृति मे न तो काव्य का स्वच्छंद प्रवाह मिलता है और ऐति-हासिक दृष्टि से न कुमारपाल का चरित्र ही प्राप्त होता है। महाकाव्यो की परि-पाटी के समान कुमारपाल का जन्म, शिक्षा, ऋतुवर्णन, चद्रोदय, युद्ध आदि के वर्णन है और सप्रदाय के अनुरोध के कारण कुमारपाल की जैन सप्रदाय मे श्रद्धा ससार से विरक्ति आदि प्रसगो का प्रणयन हुआ है। स्त्री निंदा भी कठोर शब्दो मे की गई है।[2] काव्य पक्ष अत्यत दुर्बल है, जहाँ तहाँ उक्ति-चमत्कार तथा विरल सरस उक्तियाँ भी मिलती हैं।[3] शब्दो के प्रयोगो की विवशता के कारण कवि को चमत्कारहीन अलकारो के भी प्रयोग करने पडे है।[4] जो हो जिस उद्देश्य से कृति को आचार्य ने लिखा है उस दृष्टि से कृति उनकी प्रतिभा का पूर्ण परिचय देती है। कृति मे सस्कृत प्राकृत और अपभ्र श के छदो का प्रयोग हुआ है।[5]

कुमारपालचरित के अतिरिक्त हेमचद्र ने जैन सिद्धान्त, काव्य समीक्षा, व्याकरण, छद, पुराण, कोष अनेक प्रकार के ग्रथ लिखे है[6]। प्राकृत से सबधित

---

१. सिद्धहेमः प्राकृत अंश, डा० वैद्य द्वारा संपादित होकर पूना से सन् १९-३६ मे प्रकाशित।

२. प्राकृत द्वयाश्रय काव्य ७.२४, ७.२७।

३. यथा, वही, २.४०, २.४७, ३.६६, ४.७ इत्यादि।

४. यथा देखिए, यमक प्रयोग, वही ३.३ अहिमज्जु, अहिमसु।

५ गाथा, वदनक आदि प्राकृत छंदो तथा दोहादि अपभ्रंश छंदो के प्रयोग किए हैं।

६ देशीनाममाला, पूना १९३४ ई० दे० भूमिका।

उनकी दो कृतियाँ और हैं। देशीनाममाला और छदोनुशासन।[1] प्रथम मे देशी शब्दो का सग्रह है दूसरे मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श के छदो का विवेचन है।

अपनी प्रतिभा और पाडित्य के प्रभाव से हेमचन्द्र ने जैन धर्म को गुजरात मे राजधर्म के रूप मे प्रतिष्ठित किया। जैन सप्रदाय मे उन्हे 'कलिकाल सर्वज्ञ' उपाधि से विभूषित किया गया। उनका जन्म स० ११४५ वि० मे गुजरात के धन्धूका ग्राम मे हुआ था। बाल्यावस्था का उनका नाम चगदेव था। दीक्षा के पश्चात् उनका नाम सोमचद्र हुआ। मुनि देवचद्र ने उन्हे स० ११५० मे दीक्षा दी। स० ११६६ मे गुरु की गद्दी पर बैठने के पश्चात् सूरि आचार्य की उपाधि धारण की और जैन साधुओ की प्रथा के अनुसार उनका नाम हेमचद्र हुआ। उनके प्रथम आश्रयदाता चौलुक्य राज जयसिंह सिद्धराज (११५०-११९९ वि० स०) थे। वे शैव मतानुयायी थे। जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पौत्र कुमारपाल गुजरात के शासक हुए। हेमचद्र के प्रभाव के कारण ही कुमारपाल की प्रवृत्ति जैन धर्म मे हुई। हेमचद्र की मृत्यु स० १२२९ वि० मे हुई। उनके महत्व और प्रभाव की व्याख्या करने वाली अनेक कथाए जैन सप्रदाय के ग्रथो मे मिलती है।[2]

लक्ष्मण गणि :

सातवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित्र को लेकर लक्ष्मण गणि ने ८७०० गाथाओ मे सुपार्श्वनाथ चरित (सुपासनाह चरिअ)[3] की रचना की है। जैन साहित्य मे तीर्थंकरो के चरित्रो के वर्णन की शैली के अनुसार पार्श्वनाथ के पूर्व भवो (जन्मो) का वर्णन करके तीर्थंकर के जन्मादि की कथा कही गई है। पार्श्व-नाथ अन्त मे विरक्त हो जाते हैं। अपने पुत्र चेसर के पूछने पर वे व्रतो, सम्यकत्व व्रत का उपदेश देते है। व्रतो के फल को स्पष्ट करने के लिये कथाएँ दृष्टात रूप मे कही गई है। इन कथाओ मे से अनेक कथाओ मे प्रेम और आश्चर्यपूर्ण प्रसग

---

१. बंबई सस्कृत सीरीज ग्रंथ १७ भंडारकर इ० पूना से प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, १९२४ ई०।
छंदोनुशासन, प्रथम संस्करण, बबई १९१२ ई०, अध्याय ४ से ८ तक जर्नल बंबई सं० ए० सो० १९४३,४४ मे प्रकाशित।

२. द लाइफ अव् हेमचंद्राचार्य, जी० ब्यूलर द्वारा जर्मन मे लिखित, अग्रेजी अनुवाद डा० मणिलाल पटेल, सिंघी जैन ग्रंथमाला मे प्रकाशित १९३६ ई०।

३ पं० हरगोविन्द दास द्वारा संपादित होकर जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला मे प्रकाशित, बनारस, १९१८ ई०।

मिलते है ।[1] वर्णन और सुभाषितो के प्रयोग कृति की दूसरी विशेषता है ।[2] कृति की प्राकृत सरल और स्वाभाविक प्रवाह युक्त है । काव्यमय शैली का अनुकरण नही किया गया है । अनेक स्थलो पर अपभ्र श पद्य भी उद्धृत किए गए हैं ।[3]

ग्रथ की अंतिम प्रशस्ति मे लक्ष्मण गणि ने अपने को मलधारी हेमचद्र सूरि का शिष्य कहा है और स० ११९९ वि० मे कृति की रचना धन्धूका ग्राम मे करने की सूचना दी है ।

सोमप्रभाचार्य :

सुमतिनाथ चरित्र[4] और कुमारपालप्रतिबोध[5] दो प्राकृत कृतियाँ सोमप्रभाचार्य की उपलब्ध हुई हैं । प्रथम मे पाचवे तीर्थंकर सुमति का चरित्र है, कृति का आकार ९५०० श्लोक के बराबर है । दूसरी कृति पाँच प्रस्तावो मे विभक्त है । कृति मे अणहिल्लपुर के चौलुक्यवशी राजा कुमारपाल के हेमचद्र द्वारा जैन धर्म मे दीक्षित होने की कथा है । अन्य धर्मो द्वारा राजा को बोध नही हुआ । कृति मे धर्म के विविध अगो की व्याख्या करने के लिये अनेक दृष्टान्तो की सृष्टि की गई है । उपदेशो को छोडकर कृति मे इस प्रकार की लगभग ५८ कथाएँ हैं । इन कथाओ मे गद्य और पद्य दोनो का प्रयोग हुआ है । प्राकृत के अतिरिक्त सस्कृत और अपभ्र श के भी प्रयोग कृति मे अनेक स्थलो पर हुए है ।[6] कथाएँ अनेक प्रकार की हैं किन्तु सभी को अन्त मे धार्मिकता की ओर मोड दिया है । सुभाषितो और सरस वर्णनो के कारण कथाओ मे पर्याप्त रस मिलता है । कृति का उद्देश्य

---

१. जैसे, भुवन पताका कथा मे भुवन पताका के परिणय तथा अपहरण के प्रसंग, स्वयंवर आदि, वही पृ० २८५ और आगे ।

२. यथा, वही पृ० २९२ पद्य ११०, १११, पृ० २९३ पद्य १५५ इत्यादि ।

३. दे० आगे अपभ्रंश अध्याय ।

४ कुमारपाल प्रतिवोध, पृ० ६, पद्य ६९ । ७१, जि० र० को० पृ० ४४६ ।

५. गायकवाड ओरिएंटल सीरीज नं० १४, बड़ौदा, १९२०, दे० आल्सडर्फ आल्ट उ ड न्यू इंडिशे स्टूडिएन, हाम्बुर्ग १९२८, ए० भं० ओ० रि० इं० भाग २ पृ० १, २१ ।

६. यथा कु० प्र० पृ० १४७-८, १७५, १७९ इत्यादि । कुछ कथाएँ संपूर्ण सस्कृत पद्यो मे हैं, पृ० ३२१-३२८, ३३५-३४२, ३५६-३६४ इत्यादि । अपभ्रंश के लिए दे० आगे अपभ्रंश का अध्याय । कुमारपाल प्रतिबोध के अपभ्रंश अशो का प्रो० आल्सडर्फ ने अलग अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

जैनधर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करना है अत कुमारपाल के सबध मे कोई ऐतिहासिक उल्लेख नही मिलते। सोमप्रभाचार्य ने कृति की रचना स० १२४१ वि० मे की। उपर्युक्त प्राकृत ग्रन्थो के अतिरिक्त सोमप्रभ के कुछ सस्कृत ग्रन्थ भी मिलते हैं।[1]

जिनहर्षगणि :

पौषध व्रत के दृष्टात के रूप मे कथित रत्नशेखर नरपति कथा[2] (रयण-सेहरीकहा) जिनहर्षगणि कृत एक सुन्दर प्रेमाख्यान है। रत्नपुर नगरी का राजा रत्नशेखर रत्नवती का रूप वर्णन सुनकर उसके लिये व्याकुल हो जाता है। रत्न-वती सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री थी। दोनो के प्रेम को कवि ने जन्मजन्मान्तरो का पुराना प्रेम बताया है। राजा सिंहल जाता है और जिस मदिर मे रत्नवती कामदेव की पूजा करने जाती थी वही प्रतीक्षा करता है। दोनो का परिणय हो जाता है। कृति मे इद्रजाल, योग आदि के भी उल्लेख है।

कृति मे सरल प्राकृत गद्य और पद्य का प्रयोग हुआ है। अपभ्र श पद्यो का भी प्रयोग हुआ है।[3] प्रस्तुत कथा लोक प्रचलित रूप से ग्रहण की हुई जान पडती है। प्रेम प्रसग, सिंहल, रत्नशेखर, पद्मावती आदि नाम लोक मे प्रचलित कथाओ मे प्रयुक्त होते होगे। जिनहर्ष ने प्रस्तुत कृति की रचना चित्रकूट नगर मे की थी। उनका समय पद्रहवी शती का अन्तिम चरण है।[4]

रत्नशेखर सूरि :

श्री श्रीपाल कथा (सिरि सिरिवाल कहा)[5] भी धार्मिक आवरण से युक्त एक लोकप्रिय कथा है जिसकी रचना कवि ने स० १४२८ वि० मे की थी।

अनंतहंस :

अनतहस ने २०७ प्राकृत गाथाओ में एक छोटी सी कथा कृति कुर्मापुत्र कथा[6] (कुम्मापुत्त कहा) की रचना की है जिसमें भाव शुद्धि की महिमा वर्णित है।

---

१. कुमारपाल प्रतिबोध, भूमिका, पृ० ७–८।
२. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर से प्रकाशित, १९१७ ई०।
३. वही पृ० १५ तथा पृ० २७।
४. कृति के अंत में पद्य १४९–१५० में कवि ने अपने संबंध में कुछ उल्लेख किए हैं।
५. देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार सीरीज सख्या, ६३, भावनगर, १९२३ ई०।
६. पी० एल० वैद्य तथा के०वी० अभ्यकर द्वारा सपादित, अहमदाबाद १९३२ ई०।

जैन प्राकृत साहित्य का उपर्युक्त विवेचन किसी भी प्रकार से पूर्ण नहीं है। उसका प्रकाशन नाना दिशाओं मे हुआ है अतः इस सबको देखना भी सम्भव नहीं है और अप्रकाशित साहित्य को देखने के लिये सम्पूर्ण जीवन भी कदाचित् कम समय होगा। जिनरत्नकोश के आधार पर इस प्रकार की कुछ साहित्यिक कृतियों का और उल्लेख किया जा सकता है। यह कृतियाँ सम्प्रदाय के महापुरुषों के जीवन से ही प्रायः संबंधित हैं।[1] इस काव्य-कथा साहित्य के अतिरिक्त अनेक विशेष विषयों से संबंधित रचनाएँ भी प्राकृत मे लिखी गई किन्तु प्रस्तुत निबन्ध मे उनका विशेष संबंध न होने के कारण यहाँ उनका परिचय नहीं दिया गया है।[2] जैन महाराष्ट्री के अतिरिक्त सुदर्शनाचरित[3] (मुख्यतः चरित्र-प्रकृ-

---

1. वर्धमान रचित १५०० गाथाओं की 'मनोरमा चरित्र' जिसकी रचना सं० ११४० वि० में हुई। इनकी दूसरी कृति सं० ११५० वि० में रचित आदिनाथ चरित्र है। इस कृति में अपभ्रंश पद्य भी हैं। जि० र० को० पृ० ३०१ तथा ए० भं० ओ० रि० इं० १९३४-३५, पृ० ३८, गुणसेन के शिष्य देवचन्द्र ने सं० ११६० मे शान्तिनाथ चरित की रचना की जो १२१०० श्लोक के बराबर बृहत्काय है। इस कृति की प्रस्तावना मे अनेक ग्रन्थकारों का नामोल्लेख है। इस कृति मे भी अपभ्रंश पद्य मिलते हैं। बृहद् गच्छ के शान्त्याचार्य ने सं० ११६१ में पृथ्वीचन्द्र चरित लिखा। देवभद्रगणि ने भड़ोच में सं० ११६८ में पार्श्वनाथ चरित्र की रचना की। हेमचन्द्र के समसामयिक मलधारी हेमचंद्र ने ५००० गाथाओं में नेमिनाथ चरित्र लिखा। हेमचन्द्र के एक शिष्य श्रीचन्द्र ने० सं० ११९३ में मुनि-सुव्रतस्वामि चरित की रचना की, जिसमें राम का भी चरित्र है। श्रीचन्द्र के शिष्य हरिभद्र ने मल्लिनाथ चरित तथा चन्द्रप्रभ चरित दो प्राकृत काव्यों की रचना की। एक अज्ञात कवि की रचना १२९६ गाथाओं के परिमाणवाली मलयसुन्दरी कथा है। इस प्रकार और भी अनेक महापुरुषों तथा कल्पित पात्रों से संबंधित रचनाएँ मिलती हैं।
2. यथा नैमित्तिक शास्त्र से संबंधित दुर्गदेव कृत रिष्टसमुच्चय, भारतीय विद्या भवन, बंबई सामुद्रिक से संबंधित कृति करलक्खण भारतीय ज्ञान-पीठ काशी।
   नाम माला, देशीनाममाला, छंदों पर कृतियाँ इत्यादि।
3. आत्मवल्लभ ग्रन्थ सिरीज १०, अहमदाबाद, १९३२ ई०।

निका विहार) जैसी अन्य कथा कृतिया अन्य प्राकृतों मे भी मिलती है। स्वतत्र ग्रथो के अतिरिक्त टीकाओ के रूप मे प्राकृत मे विपुल कथा साहित्य बिखरा पडा है। गाथा पद्यो के अतिरिक्त कही कही अन्य छदो का भी जैन प्राकृत मे प्रयोग मिलता है।[1]

इस साहित्य पर दृष्टिपात करने से कथा कहने के अनेक प्रकारो के दर्शन होते हैं। धार्मिक, लौकिक, स्वतत्र तथा अवान्तर कथाएँ एक सूत्र मे पिरोने के ढग आदि अनेक विशेषताएँ मिलती हैं। अनेक विशुद्ध लौकिक[2] कथाओ के उदाहरण मिलते है जिनपर कुछ प्रसगो द्वारा ही धार्मिक आवरण चढाया गया है। धार्मिक तत्त्व और उपदेशात्मकता के साथ साथ इस साहित्य मे पर्याप्त साहित्यिकता, मनोरंजक कल्पना, नाना प्रकार के सत्य सामाजिक चित्रो के साथ इस साहित्य मे मिलते है। जैन साहित्य की इस धारा ने अवश्य ही न्यूनाधिक रूप से अन्य भारतीय साहित्य की धाराओ को उत्साहित तथा प्रभावित किया होगा।

---

१ यथा, उपदेशसप्ततिका, (भावनगर, १९१७ई०) में संस्कृत छंदों का प्रयोग हुआ है।

२ निशीथ चूर्णी में अनेक लौकिक कथाओ का उल्लेख मिलता है, नरवाहन दत्त की कथा, मगधसेना, तरंगवती कथाओं के उल्लेख, सिद्धसेन गणि के तत्वार्थसूत्र में वंधुमती आख्यायिका का उल्लेख इत्यादि।

२

साहित्यिक प्राकृत

प्राकृत मे विशुद्ध ऐहिकतापरक (सेक्यूलर) ललित साहित्य की भी रचनाएँ हुई है और उनमे से अनेक बहुत ही श्रेष्ठ हैं। रूपक उपरूपको मे तो सभी प्राकृतो का प्रयोग मिलता है, किन्तु मुक्तक तथा प्रबन्धात्मक काव्यो की रचना महाराष्ट्री प्राकृत मे ही हुई है। मुक्तक पद्यो की रचना महाराष्ट्री प्राकृत मे ही हुआ करती थी कदाचित् इसीलिए रूपकादि मे स्त्रियो के द्वारा गाए जाने वाले गीतो की भाषा महाराष्ट्री निर्दिष्ट की गई है। काव्य की भाषा के रूप मे महाराष्ट्री प्राकृत की मान्यता होने के कारण ही कदाचित् महाराष्ट्री और प्राकृत पर्यायवाची से हो गए थे।[1] महाराष्ट्री प्राकृत मे प्राप्त साहित्य को दो वर्गो मे विभाजित कर सकते है

१ मुक्तक पद्यो के रूप मे प्राप्त होने वाला साहित्य।

२ प्रबंधात्मक काव्य।

अ मुक्तक साहित्य

यह साहित्य दो रूपो मे मिलता है। प्रथम, सग्रह-कृतियो के रूप मे और दूसरा रूप है अन्य ग्रन्थो मे उद्धृत पद्यो के रूप मे।

१ सग्रह कृतियाँ—अभी तक इस प्रकार की दो सकलित कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। गाथा सप्तशती और वज्जा लग्ग।

---

१. वररुचि ने प्राकृत प्रकाश मे प्राकृत कहकर जिसकी व्याख्या की है वह महाराष्ट्री प्राकृत ही है। कुछ विद्वानो ने महाराष्ट्री की प्राचीनता में सदेह किया है किन्तु यह निर्विवाद रूप से मान्य नहीं है दे० डा० मनमोहन घोष द्वारा संपादित कर्पूरमंजरी की भूमिका कलकत्ता, १९४८।

सरस भाव मिलते हैं। विरह का गीत गाती हुई गोपी का चित्र[1], पर्वत के बीच में बसे ग्राम की वर्षा ऋतु में सुषमा[2], ग्रीष्म के दुसह ताप से झींगुरों की झनकार में जन रुदन की कल्पना,[3] प्रोषितपतिका माता का सुन्दर चित्र,[4] सुन्दर लोकोक्तियाँ और सुभाषितों,[5] दान शील व्यक्ति के दरिद्र होने का दुख,[6] सज्जन और खलों की क्रमशः स्तुति निंदा [7] आदि अनेक ऐसे पद्य हैं जिन्हें हठपूर्वक कहीं कहीं टीकाकारों ने 'ध्वन्यते' 'सूच्यते' 'व्यज्यते' शब्दों की सहायता से शृगार परक माना है। वास्तव में शृगार के अतिरिक्त जो विस्तृत व्यापक जीवन है उसकी झलक अनेक पद्यों में मिलती है। गाथा के सभी पद्य एक सीमा में बद्ध नहीं किए जा सकते।

किन्तु, शृगारात्मक पद्य भी बहुत हैं। अनेक प्रकार की नायिकाओं का उनमें संकेत मिलता है। एक वर्ग साध्वी, पति में निष्ठा रखने वाली नायिकाओं का है और दूसरा वर्ग उन वचन चतुरा विदग्ध, निपुण प्रौढ़ा नायिकाओं का है जो अन्य पुरुषों के साथ रमण करने के लिए निश्चित स्थल पर पहुँचने का साहस करती दिखती हैं। नायिकाएँ ही ऐसी साहसिनी नहीं हैं अनेक नायक भी इसी प्रकार के उच्छृंखल चित्रित किए गए हैं। कुछ पद्यों में सौन्दर्य निरीक्षण की जो प्रवृत्ति दिखती है वह सराहनीय है किन्तु उसके साथ का जो चिन्तन है वह कदाचित् ही उचित कहा जा सकेगा। यथा ग्राम बालिका के सौन्दर्य को देखकर आगे के जीवन में उससे अनर्थ की कल्पना करना।[8] जो हो, गाथा के पद्यों में सरल, आडम्बरहीन वन्य ग्रामीण सौन्दर्य को भी देखा गया है।[9] पथिकों पर तरस खाती हुई, या मोहित होती हुई तरुणियों के चित्र भी मोहक हैं।[10] कुल वधुओं के अतिरिक्त, कुलटाओं, वेश्याओं की भी कुछ पद्यों में चर्चा मिलती है जिनको कहीं-

---

१. गाथा,० २.३८।
२. वही, ७.३६।
३. वही, ५.९४।
४. वही, ६.३८।
५. वही, ३.२४, ४.१६, ५.९०, ६.९६।
६. वही, ३.३०।
७. वही, ३.४८, ३.७२, ३.८२, ३.८४, ७.९५ इत्यादि।
८. वही, ५.१०।
९. वही, ६.४५।
१०. वही, २.५६, ४.६४, ५.७३ इत्यादि।

अडाना[1] आदि पद्यकारो की उन्मुक्त दृष्टि के द्योतक है, सरस कल्पना और प्रभावोत्पादक अलकृत वातावरण के बीच वीच मे जहाँ तहाँ नीरस अलकारो के भी प्रयोग पद्यो मे मिल जाते है।[2]

गाथा० का सग्रहकाल जटिल विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ पद्यो मे हाल को इन गाथाओ का सग्रहकर्ता (रचयिता) कहा गया है।[3] पचम और सप्तम शतक को छोडकर प्रत्येक शतक की समाप्ति पर एक पद्याश मे 'कविवत्सल प्रमुख सुकवि निर्मिते' पुष्पिका मिलती है। एक गाथा मे 'कविवत्सल' हाल का विशेषण बताया गया है।[4] भारतीय साहित्य मे कवि के रूप मे हाल का कोई उल्लेख अभी तक प्राप्त नही हुआ है। सातवाहन का पर्यायवाची कही कही हाल को अवश्य कहा गया है।[5] प्रस्तुत सग्रह मे विक्रमादित्य[6], और सालाहण[7] (शालिवाहन) राजाओ के उल्लेख मिलते है। शालिवाहन, सालवाहन तथा सातवाहन एक ही व्यक्ति के नाम है। हाल को सातवाहन का एक विरुद या नामाश मान लेने से हाल सातवाहन इस कृति के सग्रहकर्ता ठहरते हैं।

सातवाहन नामवाले अनेक राजाओ का उल्लेख भारतीय साहित्य मे मिलता है। एक राजवश इस नाम का काश्मीर मे राज्य करता था।[8] और, एक प्राचीन सातवाहन वश का राज्य आध्र देश मे भी ई० पू० २२० से २२९ ई० तक रहा।[9] इस वश मे सत्रहवे राजा हाल या हालेय हुए जो कवियो और विद्वानो को आश्रय प्रदान करते थे।[10] इनका राज्यकाल ६९ ई० से पाँच वर्ष

१. वही, ६.१।
२. वही, यथा, यमकादि के प्रयोग, वही, ६.९९।
३. वही, १ ३ तथा ७ १०१।
४. वही, १.३।
५. हेमचंद्राचार्य कृत देशीनाममाला, बंबई, १९३८ ई०, 'सालाहणम्मि हालो, (टीका हालो सातवाहनः) ८.६६।
६. वही, ५.६४।
७. वही, ५.६७।
८ कल्हण कृत राजतरगिणी . ६ ३६७ तथा ७.१२८, १७३२।
९ एस० के० आयंगर : हि० इं० स० इं० पृ० ३२४।
१०. हाल सातवाहन के कवियो या विद्वानो के ऊपर कृपा करने का समर्थन सुबधु की वासवदत्ता, बाण के हर्षचरित, सोमदेव के कथासरित्सागर, नासिक के शिलालेखो तथा पुराणो में प्राप्त उल्लेखो से भी होता है।

मधुमथन[1], यशोदा, गोपी, कृष्ण, राधा कृष्ण[2], कुलनाथ, भीम[3], चंडी बलि[4], यमुना[5], कापालिक[6], प्रमाणसूत्र[7], जैनाचारो इत्यादि के उल्लेख मिलते है जो गाथा० के संग्रहकर्ता की उदार वृत्ति के परिचायक है। आदि अन्त मे शिव का स्मरण करने के कारण उन्हें शैवमतावलम्वी कहा जा सकता है।

गाथा० के पद्य अनेक परवर्ती रचनाओ में उद्धृत हुए मिलते है। उसकी लोकप्रियता के कारण इसका संस्कृत मे भी अनुवाद हुआ और अनेक टीकाए हुई। गाथा० का भारतीय साहित्य मे और मुक्तक काव्य परपरा मे बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान है। उसके पद्यो मे वह रस है जिसके जाने बिना किसी को सरस रस के संबंध मे बात करने का अधिकार नही है। गाथा० के एक पद्य मे ठीक ही एक गर्वोक्ति है।

अमिअं पाउअकव्वं पठिउं सोउं अ जे ण जाणन्ति।
कामस्स तत्त्वचिन्तां कुणन्ति ते कहं ण लज्जन्ति॥ १.२॥

'अमृत प्राकृत काव्य को जो पढना और सुनना नही जानते, वे काम की तत्त्व चर्चा करते लज्जित क्यो नही होते।'

जयवल्लभ :

गाथा० के समान ही लगभग ७०४ प्राकृत गाथा पद्यो का दूसरा संग्रह वज्जा-लग्ग[8] है। 'वज्जालग्ग' मे विभिन्न विषयो से संबंधित पद्य शीर्षकों[9] मे विभाजित करके रखे गए हैं। प्रस्तुत संग्रह मे कुछ पद्य गाथा०के भी मिलते हैं

---

१. गाथा, २.१७, ७.५५।
२. वही, १.८९, २.१२, २.१४, २.२८, ७५५।
३. वही, ५.४३।
४ वही, २.७२।
५. वही, ७६९।
६. वही, ५८।
७ वही, २.५३
८ विब्लियोथेका इंडिका सिरीज, कलकत्ता से प्रकाशित, जूलियस लावेर द्वारा संपादित, १९१४, १९२३ ई०, इसके पद्यालय, वज्रालय, विज्जाहल, विद्यालय तथा वज्जालग्ग नाम मिलते हैं।
९ शीर्षकों का नाम पद्धति दिया है। यथा, श्रोतृ पद्धति, गाथा पद्धति, काव्य पद्धति, दुर्जनपद्धति इत्यादि, इस प्रकार की ९५ पद्धतियां (शीर्षक) हैं।

और कुछ नवीन हैं। प्राकृत मुक्तक पद्यो के विषयो की विविधता का परिचय 'वज्जालग्ग' की शीर्षक सूची से मिलता है। कवि परपरा के द्वारा प्राप्त विषयो के अतिरिक्त सामान्य वस्तुओ पर भी प्राकृत कवियो का ध्यान गया था जैसे अशक और मुसल। शृगार से सबधित शीर्षक भी अनेक हैं।[1] इसके अतिरिक्त नीति से सबधित, सज्जन और दुर्जनो से सबधित पद्यो का स्थान है। वृक्षो और पशु-पक्षियो के नामो मे प्राय परपरा से प्रसिद्ध उपकरणो को ही स्थान मिला है। वचन चातुर्य की झलक सग्रह के प्रत्येक पद्य-मे मिलती है। अनेक पद्य कदाचित् सुभाषितो के रूप मे लोक मे प्रचलित रहे होगे, गाथा पद्यो की लोकप्रियता का एक पद्य मे इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

गाहाण रसा महिलाण विब्भमा कइयणाण उल्लावा।
कस्स न हरन्ति हियर्य बालाण य मम्मणुल्लावा ॥१३॥

'गाथाओ का रस, महिलाओ का विभ्रम, कविजनो का उल्लाप और बालको की सरल वाणी किस के हृदय को नही हरती।,

अनेक पद्यो मे प्राकृत पद्यो की स्वाभाविक रमणीयता की प्रशसा की है।

इन सरस पद्यो के निश्चित रूप से अनेक रचयिता रहे होगे, जिनमे से बहुतो के मूल आधार का सग्रहकर्ता को भी पता नही होगा। उनके रचयिताओ का कुछ भी पता नही है। इन गाथा पद्यो की भाषा प्राकृत गीतो के लिए प्रयुक्त होने वाली महाराष्ट्री प्राकृत है।

सग्रहकर्ता जयवल्लभ के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। उनकी उपाधि 'सूरि' से प्रतीत होता है कि वे श्वेताम्बर जैन थे। कृति के पद्यो मे जैन सप्रदाय के सबध मे कोई सकेत नही मिलता। कृति के प्रारभ मे एक पद्य मे जयवल्लभ ने सग्रहकर्ता के रूप मे अपना नामोल्लेख किया है। कृति की एक सस्कृत छाया की हस्तलिखित प्रति स० १३९३ वि० की मिलती है उसके आधार पर इतना ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सग्रह इसके पूर्व हुआ होगा।

२. स्फुट पद्य जिस प्रकार के प्राकृत पद्य गाथा० और वज्जालग्ग मे सग्रहीत हैं उसी प्रकार के मुक्तक प्राकृत पद्य साहित्य समीक्षा से सबधित कृतियो मे भी मिलते है।

नाट्यशास्त्र :

भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र मे कुछ प्राकृत गीत मिलते हैं, जो

१. यथा नयन, स्तन, व लावण्य, सुरत, प्रेम, मान, प्रवासित इत्यादि से संबंधित पद्धतियाँ।

ध्रुवागीतो [1]के उदाहरणों के रूप मे उद्धृत हुए है। रूपकादि मे प्रयुक्त प्राकृत गीतों की भाषा के सबंध में सामान्य नियम है कि वे महाराष्ट्री प्राकृत मे होने चाहिये। किन्तु ध्रुवागीतो के लिये शौरसेनी का विधान है।[2] महाराष्ट्री मे प्रयुक्त कुछ भाषा विषयक विशेषताएँ भी इन गीतो मे मिलती है जिन्हे कुछ विद्वान शौरसेन की विशेषताएँ मानकर इन गीतों की भाषा शौरसेनी बताते है।[3] धनञ्जय ने रूपकादि मे स्त्रियो द्वारा गाए जाने वाले गीतो की भाषा के लिये प्राकृत के नियम का उल्लेख किया है। 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग साधारणत वैयाकरणो ने महाराष्ट्री प्राकृत के लिये किया है। किन्तु भरत ने कही भी महाराष्ट्री प्राकृत शब्द का उल्लेख भी नही किया है। भरत और पीछे के नाटचशास्त्र विशारदो मे यह मतभेद ध्यान देने योग्य है।

नाट्यशास्त्र के ध्रुवागीतो मे सुन्दर मुक्तक पद्यो तथा गीतिकाव्य के दर्शन होते है, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, मेघ, और ऋतुओ के दृश्य प्रधान हैं। अन्य काव्यशास्त्र कृतियों मे प्रयुक्त पद्यो के समान ध्रुवागीत 'आदिरस' तक ही सीमित नही हैं। सक्षिप्तता, सजीवता इन पद्यो की प्रधान विशेषताएँ है। इन गीतो की सख्या सौ से अधिक है। कुछ गीतों मे अतरग अन्त्यनुप्रास मिलता है जो गेय तत्व को प्रधान बनाने मे सहायक हुआ है।

चूदवणं पफुल्लतिलकं कुरवकसहिद
चचलसारसछप्पदं कुसुमसमुदिदं। ना० शा० ३२.३१६।

यह नरम गीत वर्णवृत्तों मे है, प्राकृत छद प्राय मात्रिक ही मिलते हैं। सस्कृत छदशास्त्र के अनुकूल प्रत्येक चरण मे समान वर्ण सख्या होनी चाहिये किन्तु कुछ ध्रुवागीतो मे नाटचशास्त्र के 'चतुरस्र विवर्धिता' नियम के अनुसार सपूर्ण पद्य मे छ वर्ण अधिक मिलते है। यथा अनुष्टुप छद मे इस क्रम मे छ वर्ण अधिक मिलेंगे, ८, ९, १०, ११=३८ वर्ण।

ध्रुवागीतो का रचनाकाल नाटचशास्त्र के रचनाकाल के साथ सबद्ध है जो ई० पू० २०० से २०० ई० तक के बीच हो सकता है।

ध्वन्यालोक :

आनन्दवर्धन (९०० ई०) ने अपनी कृति मे ४५ के लगभग पद्य उद्धृत

---

१. दे० मनमोहन घोष : इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग ८, सप्लीमेंट, १९३२।

२. भाषा तु शूरसेनी स्यात् ध्रुवाणां सम्प्रयोजयेत्, अध्याय ३२.४०८, काशी संस्कृत सीरीज ६०, बनारस १९८५।

३. दे० घोष का उपर्युक्त लेख, पृ० ९-१३।

किए है जिनमे से १९ के लगभग पद्यो के मूल आधारो का पता नही है। एक पद्य मे अपभ्रंश की विशेषताएँ भी मिलती हैं[1], यह सभी पद्य स्वतंत्र मुक्तक हैं और इनका प्रधान स्वर शृंगारात्मक है। कुछ पद्यो के आधार ग्रन्थो का भी उल्लेख किया गया है किन्तु वे ग्रन्थ भी अनुपलब्ध है। बहुसख्यक पद्य बडी ही सरस, कोमल कल्पना से युक्त और कुछ गीति के उत्तम उदाहरण हैं[1]। ध्वन्यालोक के व्याख्याकार (लोचनकार) अभिनव गुप्त ने भी दो प्राकृत पद्य उद्धृत किए हैं, किन्तु उनके आधार ग्रन्थो का कोई उल्लेख नही किया है। सभी पद्यो की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है।

भोज (११ वी शती ई०) के सरस्वती कठाभरण[2] मे ३५० प्राकृत पद्य उपलब्ध होते है। कुछ के आधार ग्रन्थ गाथा सप्तशती, सेतुबन्ध, गौडवहो, कर्पूर-मजरी आदि ग्रथ हैं। इसके अतिरिक्त लगभग १७० पद्यो के मूल स्रोतो का पता नही है। पद्य प्राय अपने आप मे पूर्ण हैं किन्तु कुछ मे ऐसे संकेत मिलते है जिनसे प्रतीत होता है कि वे किन्ही प्रबधकाव्यो मे से लिए गए है।[3] बहुत से पद्यो मे शृगार की कोमल कल्पना मिलती है जिनमे समाज के सभी वर्गों के नायक नायिकाओ को स्थान मिला है, किन्तु हालिक युवक और युवती का प्राधान्य है।

हेमचन्द्र (११४५-१२२९ वि०) के काव्यानुशासन और स्व-रचित उसकी वृत्ति मे लगभग ८० प्राकृत पद्य उपलब्ध होते हैं। कुछ ही पद्य नवीन हैं, शेष अन्य कृतियो मे भी मिलते है। शृगार रस से सबधित कल्पना का जैनाचार्य द्वारा ग्रहीत पद्यो मे भी प्राधान्य है।

दशरूपक के अवलोक मे धनिक ने भी २६ इसी प्रकार के प्राकृत पद्य उद्धृत किए हैं जिनमे से १० पद्य नवीन हैं।

इन कृतियो के अतिरिक्त रुद्रट के काव्यालकार, स्वयभू के स्वयभू छद, विश्वनाथ के साहित्य दर्पण, तथा प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध सग्रह, पडितराज जगन्नाथ के रस गगाधर आदि अनेक ग्रन्थो मे प्राकृत पद्य व्यवहृत हुए मिलते है। स्वयभू छद[4] मे अनेक नवीन प्राकृत कवियो के

---

१. ध्वन्यालोक, काव्यमाला संस्करण, १९३५, पृ० ३०६।

२. निर्णयसागर प्रेस, बंबई १९२५ ई०।

३. एक पद्य मे इंद्र को कृष्ण की मित्रता का इच्छुक बताया गया है और पारिजात को यादवो को देने की इच्छा प्रकट की गई है, वही पृ० ४७०।

४, जर्नल, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बाबे ब्राच १९३५, पृ० '१८-५८।

नाम मिलते हैं तथा अनेक नवीन पद्य भी उद्धृत हुए है जिनमे से अनेक उक्ति चमत्कार, मौलिकता और सरसता की दृष्टि से सुन्दर हैं। विस्मृतप्राय और बहुत ही कम प्रसिद्ध इस कृति से दो पद्य देखे जा सकते है। किसी कालिदास नामक कवि का एक पद्य इस प्रकार है

> अवणअविटपो णईपलासो पवणवसा धुणिएक्कपण्णहत्थो ।
> दवदहुण विवण्ण जीविआणं सलिलमिवेए दएह पाअवाणम् । २.१८ ।

'नदी मे झुका हुआ पलाश विटप पवनवशात् एक पर्णरूपी हाथ से वार वार दावाग्नि से दग्ध विवर्ण जीवित पादपो को मानो जलाजलि दे रहा है।'

नीचे के पद्य मे लय, गेय तत्व द्रष्टव्य है

> मत्तकरिन्द कवोल मओज्झर पंक पसाहण सामलिआ ।
> दाहिणमारुअ मैलविआ मअमेम्मलिआ मसलावलिया । इत्यादि
> १.१२० ।

काव्य शास्त्र तथा अन्य साहित्यिक कृतियो मे जो इस प्रकार के प्राकृत पद्य मिलते हैं उनसे कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं—प्राकृत साहित्य के प्रसार की इस प्रकार के साहित्य से सूचना मिलती है। सस्कृत साहित्य के विभिन्न अगो का विवेचन करने वाले पडितो ने अपनी समीक्षाकृतियो मे श्रेष्ठ काव्य, ध्वनि आदि के उदाहरणो के लिये प्राकृत के पद्यो को ही चुना है इससे प्राकृत साहित्य के महत्व की सूचना मिलती है। सुभाषितो, लोकोक्तियो, प्रेम की रसपूर्ण वचन–विदग्धतापूर्ण उक्ति चातुर्य से आप्लावित उक्तियो के लिए काव्य रसिको का ध्यान प्राकृत पद्यो की ही ओर गया है, इससे ऐसा लगता है कि समस्त उत्तरी भारत मे प्राकृत कुछ बातो मे सस्कृत से भी अधिक प्रिय और समादृत थी। पडित वर्ग द्वारा समादृत इस विपुल प्राकृत साहित्य का शताब्दियो तक प्रभाव रहा होगा। और निश्चित रूप से समस्त भारतीय मुक्तक साहित्य को प्राकृत के इस सरस मुक्तक साहित्य ने प्रभावित किया होगा। प्राकृत साहित्य की यह मुक्तक धारा बहुत महत्वपूर्ण है, उसमे भारतीय जीवन और प्रकृति तथा प्राकृत भाषा के सहज स्वरूप के दर्शन होते हैं।

आ प्रबन्धात्मक साहित्य

मुक्तक साहित्य के समान प्राकृत प्रबन्धकाव्यो की भी धारा कई शतियो तक अविच्छिन्न रूप मे प्रवाहित होती रही। जैसा कि आगे उल्लेख किया जाएगा।

तथा बांबे यूनीवर्सिटी जर्नल नवंबर १९३६ पृ० ७२-९३ ।

कदाचित् उपेक्षा के कारण अनेक इस प्रकार के काव्य आज अनुपलब्ध हो गए है। जो भी प्रबन्धात्मक रचनाएँ आज उपलब्ध है वे यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि सस्कृत के समान ही अनेक प्रतिभाशाली कवियो ने अपनी प्रबन्धपटुता दिखाने के लिये प्राकृत को भी चुना। इन काव्यो मे से कुछ काव्य बहुत ही उत्कृष्ट है। बहुसख्यक काव्य राम और कृष्ण की कथा से सबधित है केवल गौडवध एक लौकिक चरित्र को लेकर लिखा गया प्रबन्धात्मक प्रयास है। शैली की दृष्टि से इन कृतियो मे से गौडवध मे कुछ मौलिक ढग अपनाया गया है, शेष कृतियों मे सस्कृत काव्यशैली, कवि-कल्पना का प्रभाव अत्यत स्पष्ट है। भाषा, इन सभी काव्यग्रन्थो की महाराष्ट्री प्राकृत है। छदो के प्रयोग मे भी विविधता के दर्शन इनमे नही होते। नीचे इन काव्यो का सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रवरसेन :

पन्द्रह आश्वासो (अध्यायो) मे विभक्त १२९१ पद्यो मे समाप्त प्रवरसेन का महाकाव्य सेतुबन्ध या रावणवध[1] उच्च से उच्च महाकाव्यो मे स्थान पा सकता है। सेतुबन्ध की कथा बहुत सक्षिप्त है, कवि ने सीता के विरह मे सतप्त राम को वर्षाऋतु के बीत जाने की प्रतीक्षा करते हुए चित्रित किया है। हनुमत् सीता का समाचार लाते है। राम कपिसेना सहित लका की ओर प्रस्थान करते है, किन्तु समुद्र को मार्ग मे बाधक पाकर क्षुब्ध होते है। विभीषण राम की शरण मे आता है और राम उसका अभिषेक करते है। आगे बडे विस्तार से समुद्र पर सेतु बाँधे जाने की कथा है। समुद्र को पार करके सेनासहित सुवेल पर्वत पर राम पहुँचते है। राम की सेना के आने का समाचार पाकर रावण चिन्तित होता है। आगे रावण के कारण त्रस्त सीता का भी कवि ने चित्रण किया है। कवि ने दोनो सेनाओ का विस्तृत वर्णन किया है और अन्त मे युद्ध का वर्णन करके रावण, कुम्भकर्ण की पराजय और अवसान दिखाया है। सीता सहित राम-लक्ष्मण

---

१. ग्रथ के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, प्रथम मूल तथा जर्मन भाषा मे अनुवाद सहित स्ट्रास्बुर्ग से सीगफ्रीड गोल्डस्मिट द्वारा संपादित हो कर १८८० ई० मे प्रकाशित हुआ था। दूसरा सस्करण निर्णयसागर प्रेस से काव्यमाला मे रामदासभूपति की संस्कृत टीका सहित प्रकाशित हुआ था, द्वितीयावृत्ति १९३५ ई०। एक नवीन टीका सहित कृति का नया तथा बहुत महँगा संस्करण कलकत्ता से निकला है, संपादक डॉ० रा० गो० बसक हैं, कलकत्ता संस्कृत कालेज, १९६०।-

अयोध्या लौटते है और भरत के अनुराग को पूरा करते है।

कृति के आधे से अधिक भाग (१-८ आश्वास) मे सेतुवध की घटना प्रधान है तथा अन्तिम भाग मे रावण वध का प्रसग मुख्य है।[१] कृति मे कथा बहुत धीरे धीरे बढती है विशेष करके कृति के प्रथम भाग मे। सेतुबन्ध उत्कृष्ट कवि-कल्पना प्रधान वर्णनो से युक्त एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। भव्य वर्णन कृति की अद्वितीय विशेषता है। प्रकृति के सूक्ष्म, संश्लिष्ट वर्णनो की ओर ही कवि ने अधिक उत्साह दिखाया है, मानव सौंदर्य (नख-शिख) वर्णन की ओर कवि ने ध्यान नही दिया, कदाचित् कृति मे उसका अवसर भी न था। प्रस्तुत कृति की भाषा साहित्यिक, मंजी हुई महाराष्ट्री प्राकृत है और सपूर्ण कृति मे उच्च साहित्यिक शैली का प्रयोग मिलता है। सपूर्ण कृति मे एक ही प्रकार के छंद का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त मे भिन्न छद का प्रयोग नही मिलता जो संस्कृत महाकाव्यो के लिए एक नियम सा है।

सेतुबन्ध का रचना-काल तथा उसके रचयिता के सबध मे पर्याप्त विवाद है। कृति के मूल भाग मे कही भी रचयिता ने नामोल्लेख या अन्य सकेत नही दिया है। आश्वासो के अत मे दी हुई पुष्पिकाओ मे ग्रन्थ के रचयिता के रूप मे कही प्रवरसेन का उल्लेख है, कही किसी का भी नाम नही मिलता तथा कही प्रवरसेन के साथ कालिदास का भी नाम मिलता है।[२] सेतु रचयिता के रूप मे प्रवरसेन का नाम बाण के हर्ष चरित मे सबसे पहिले मिलता है।[३] बाण ने कालिदासादि

---

१ कृति के सेतुबंध और रावणवध दोनो ही नाम मिलते हैं। आश्वासो की समाप्ति पर पुष्पिका में कृति का नाम दसमुखवध (दसमुहवह) मिलता है, कवि ने कृति के प्रारंभ तथा अंत मे यही नाम दिया है, दे० पद्य १.१२ तथा १५.९५; कथा की परिणति भी रावणवध मे ही होती है। अतः 'रावणवध' भी कृति का उपयुक्त नाम है। किन्तु दंडी (काव्यादर्श १.३४) बाण (हर्षचरित १ १४) आदि 'सेतुबन्ध और सेतु' नाम दिया है।

२ गोल्डस्मिट के सस्करण के आश्वास ५, १०, ११ और १३ के अत मे रचयिता का नाम नहीं मिलता, आश्वास २, ३ तथा १५ के अंत मे 'प्रवरसेन विचरिते कालिदासकृते' मिलता है और शेष आश्वासो के अत मे केवल प्रवरसेन का नाम मिलता है। काव्यमाला सस्करण मे केवल १,२ आश्वास के साथ अकेले 'प्रवरसेन' का नाम मिलता है। अन्य सभी आश्वासो के साथ 'प्रवरसेन विरोचिते कालिदास कृते' मिलता है।

३. हर्षचरित, उच्छ्वास १.१४।

अन्य कवियो का भी उल्लेख किया है। वाण के इस उल्लेख से इतना स्पष्ट है कि उनके (समय ७०० ई०) तक सेतुबन्ध के साथ कालिदास का रचयिता के रूप में सबध स्थापित नही हो पाया था। इसके पश्चात् क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचार चर्चा[1] मे प्रवरसेन कृत दो पद्य उद्धृत किए है जो सेतुबन्ध मे मिलते हैं।[2] प्रत्येक आश्वास के अन्तिम पद्य मे कृति के रचयिता ने 'अनुराग' शब्द का प्रयोग किया है जो सभव है उसका चिह्न हो, किन्तु कालिदास की कृतियो मे ऐसे किसी विशेष शब्द का प्रयोग नही मिलता। कृति के दक्षिण भारतीय सस्करण के एक टीकाकार श्रीकृष्ण ने कृति को प्रवरसेन रचित ही कहा है।[3] उत्तर भारतीय सस्करण के टीकाकार रामदास (स० १६५२ वि०) ने अपनी टीका रामसेतुप्रदीप मे कृति को विक्रमादित्य की आज्ञा से प्रवरसेन के लिये कालिदास द्वारा प्रणीत कहा है।[4] निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र के समय से बहुत पीछे कभी प्रस्तुत कृति के रचयिता के साथ कालिदास का भी नाम रचयिता के रूप मे चल पडा और उसी आधार पर रामदास तथा अन्य लिपिकारो ने कृति को कालिदास कृत मान लिया। इसके मूल लेखक प्रवरसेन ही हैं जैसा कि दडी ने उल्लेख किया है। कृति की उत्कृष्टता के कारण पीछे कभी कालिदास का नाम भी जुड गया। काश्मीर के राजा प्रवरसेन का समय ई० सन् १२३ से १८३ ई० तक है, उन्हे ही इस कृति का रचयिता होना चाहिए।[5]

---

१. काव्यमाला, प्रथमगुच्छ, पृ० १२७ तथा १३५, तृतीय संस्करण १९२६ ई०।

२. एक पद्य प्रथम आश्वास का दूसरा पद्य है, दूसरा चतुर्थ आश्वास का २०वाँ पद्य है, काव्यमाला संस्करण।

३. गोल्डस्मिट के संस्करण की प्रस्तावना पृ० ११ 'भाव. प्रवरसेनस्य गहनो नहि शक्यते'—इत्यादि।

४. काव्यमाला संस्करण पृ० ।३।

५ प्रवरसेन नामक दो राजा काश्मीर के गोनंद वश मे हुए है, दे० सी० वी० वैद्य कृत हिस्ट्री अव् मे० हि० इं० पृ० ४५-४६ तथा कल्हण राजतरंगिणी, आर० सी०, पडित का अनुवाद प्रयाग १९३५ ई० पृ० ५८२, प्रथम प्रवरसेन का समय ५८ ई० पू० से ८८ ई० तक है, दूसरे का ई० १२३ से १८३ ई० तक है। वाकाटक वंश में भी दो प्रवरसेन नामक राजा हुए हैं, प्रथम का समय ३०० से ३३० ई० है तथा दूसरे

सेतुवन्ध जैसी उत्कृष्ट रचना का आगे के कवियो पर अवश्य प्रभाव पडा होगा और संभव है उसके अनुकरण पर ही रावणवध, गौड वध, शिशुपालवध, रावणवध (भट्टि काव्य) और कसवध जैसे नाम रखे गए हो।

वाक्पतिराज :

गौडवध (गौडव हो)[1] महाराष्ट्री प्राकृत मे रचित वाक्पतिराज की प्रबन्धात्मक कृति है। प्रारभ मे देवादि वदना तथा अनेक प्रसगो से युक्त लबी भूमिका है। शरदागमन पर यशोवर्मा (कन्नौज के राजा) की विजय-यात्रा की तैयारी का वर्णन किया गया है। इस विजय-यात्रा मे पडने वाले देशो का वर्णन, कालानुसार ऋतुओ का वर्णन कवि ने किया है। यशोवर्मा के विन्ध्यपर्वत पर पहुँचने का समाचार सुनकर मगधाधिप भाग जाता है किन्तु अत मे वह रण मे मारा जाता है। गौडनृपवध के पश्चात् राजा अनेक राजाओ को विजित करता हुआ लौट आता है। इसके पश्चात् कवि ने फिर मानो काव्य प्रारम्भ किया है, अनेक प्राचीन कवियो का स्मरण किया है, यशोवर्मा का चरित्र सुनाने की कवि प्रतिज्ञा भी करता है और

का ३९५ से ४२० ई० माना जाता है। कुछ इतिहासज्ञ इन तिथियो को अधिक प्राचीन मानते हैं, और प्रवरसेनों का समय बहुत पीछे मानते हैं दे० हिस्टारिकल इंस्क्रिप्शंन्स अव साउथ इंडिया पृ० ३९८, एस० के० अयंगर, मद्रास, १९३२। वाकाटक वंशीय प्रवरसेन यदि सेतुबंध के रचयिता होते तो दंडी, बाण तक उनका यश नहीं पहुँच सकता था। प्रवरसेन और कालिदास का संबंध भी इसका समर्थन नहीं करता। काश्मीर के राजा मातृगुप्त तथा उज्जयिनी के प्रतापशाली राजा शकारि विक्रमादित्य के संबंध के अनेक वर्णन मिलते हैं। (राजातरंगिणी तरंग ३, पद्य १२९ और आगे) मातृगुप्त के पश्चात् ही प्रवरसेन द्वितीय काश्मीर के राजा हुए जिन्होंने वितस्ता पर सेतु रचना की। संभव है इस सेतु रचना को ही स्मारक रूप मे सेतुबंध काव्य का आधार बनाया हो। मातृगुप्त और विक्रमादित्य की कथा को ही पीछे कुछ नया रूप मिला होगा और कालिदास को इसी घटना के आधार पर सेतुबन्ध का रचयिता माना गया होगा। कालिदास की कला के परिचायक क्रम स्थल सेतु बन्ध में मिलते हैं। वा० वि० मीराशी : दे० कालिदास पृ० १५२।

१. शं० पा० पंडित द्वारा संपादित, बंबई १८८७ ई०।

श्रोताओ को वह चरित्र सुनने के लिए सावधान करता है।[1] कृति यही तक मिलती है।

१२९० पद्यो की इस कृति मे गौडेश वध का प्रसग केवल तीन पद्यो मे है,[2] गौडेश वध के पूर्व के काव्यमय वर्णन तो उचित भूमिका कहे जा सकते है किन्तु उसके पश्चात् शेष कृति मे जो अनेक वर्णन है वे प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से उचित नही कहे जा सकते। गौडेशवध कृति मे एक गौण प्रसग है, कदाचित् रावणवध के अनुकरण पर गौडवध नाम रख दिया गया है। कृति के अनेक वर्णन एक हल्की सी शृखला द्वारा प्रमुख प्रसग से सबद्ध कहे जा सकते है अन्यथा अनेक वर्णन अप्रासगिक है।[3] जिस रूप मे गौडवध कृति मिलती है वह किसी प्रारम्भ होने वाले काव्य की भूमिका सी लगती है जैसा कवि ने स्वय सूचित भी किया है। सभव है कवि उसे किसी कारण वश पूरा न कर सका हो। अपने इस रूप मे कृति वर्णनो का एक सग्रह-ग्रथ लगती है यद्यपि उसकी वर्णन शैली महाकाव्यो के समान है।

कृति की कथा अध्यायो या विभागो मे विभक्त नही है। विभिन्न वर्णन कही कही कुलको[4] मे एकत्रित किए मिलते है। सबसे बडा कुलक १५० पद्यो का है और छोटे कुलक पाँच पाँच पद्यो के मिलते हैं।[5] गौडवध के वर्णनो मे बडी सजीवता और नवीनता है। परपरा से चले आते हुए रमणीय व्यापारो के अतिरिक्त सामान्य जीवन के भी प्रति कवि की सजगता का परिचय इन वर्णनो मे मिलता

---

१. प्रतिज्ञा द्रष्टव्य है, तहवि णिसामेह णराहिवस्स भुय दप्प दप्पण एयं।
रयणि विरमम्मि णवर पुरुमिल्ल णरिन्द णिट्ठवणं.।
साहिज्जइ गउडवहो एस मए संपयं महारम्भो।
णिसुए सुयन्ति दणां जम्मि णरिंदा कइन्दा य।
१०७३-७४.
और आगे कवि चरित्र प्रारंभ करना ही चाहता है, वह कृति के अंतिम पद्य में कहता है, 'उस नराधिप के पवित्र करने वाले अभिनव, चित्त को विस्मित कर देने वाले शिक्षाप्रद नवीन चरित्र को सुनो'।

२. गौडवध, पद्य ४१४-१७।

३. यथा, प्रारंभ मे देवताओ की विस्तृत नामावली १-६१, प्रलय वर्णन १६७-१८१, रावण वर्णन ४३१-४३९,।

४. एक ही वर्णन से संबंधित पद्यो का समह जो एक पूर्ण वाक्य होता है।

५. वही, कुलक ८५७-१००६ पद्यो का।

है। ग्राम्य जीवन के उत्सवों[1], ऊजड़ ग्राम की दयनीय दशा[2] आदि अनेक इस प्रकार के समवेदना जगाने वाले वर्णन हैं। अपनी कृति मे वाक्पति ने जो उल्लेख किए हैं उनसे ज्ञात होता है कि वे यशोवर्मा के प्रिय कवि और मित्र थे।[3] कमलायुध नामक किसी कवि के यह स्नेह पात्र थे।[4] भवभूति की कृतियों का कवि ने अच्छा अध्ययन किया था तथा अन्य कवियों की कृतियाँ भी उन्हें प्रिय थीं।[5] यशोवर्मा के समकालीन मानने से वाक्पतिराज का समय सन् ईसवी की सातवीं शती का अंतिम भाग और आठवीं का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिए। कुछ पद्यों मे इस प्रकार की क्रियाओं के प्रयोग हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यशोवर्मा की मृत्यु के पश्चात् कवि ने कृति की रचना की।[6] मधुमथ विजय नामक अपनी एक अन्य रचना का कवि ने उल्लेख किया है,[7] जिसकी तुलना में गौडवध को वनलता के पीछे का पुष्प कहा है और इस प्रकार कवि ने अपनी प्रथम कृति की प्रशंसा की है। गौडवध कवि की अन्तिम और कदाचित् अपूर्ण कृति है।

कौतूहल गोदावरी तट पर स्थित प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन[8] और

---

१. गौडवध, पद्य ५९८।
२. वही, पद्य ६०८-६०९।
३. यशोवर्मा कन्नौज के राजा थे, उनका समय ई० सन् की सातवीं शती का अंतिम भाग और आठवीं शती का प्रारंभ माना जाता है और वाक्पति यशोवर्मा के यहाँ कवि थे। दे० १. सी० एम० डफ, क्रॉनोलजी पृ० ६२ यशोवर्मा का समय सन् ७२६-७६० दिया है (२) गौडवध की पण्डित लिखित भूमिका पृ० २५-२६। तथा, गौडवध पद्य ७९७ जिसमें कवि ने अपने को राजा का मित्र और कविराज कहा है।
४. वही, पद्य ,७९८।
५ राजतरंगिणी तरंग ४, पद्य १३४ तथा आगे। इनमें कहा गया है कि ललितादित्य ने यशोवर्मा के गर्व को नष्ट किया था तथा यशोवर्मा के आश्रय में भवभूति और वाक्पति कवि थे। यदि यह ठीक है तो वाक्पति ने भवभूति को देखा होगा कदाचित् इसी कारण कवि ने भवभूति के सम्बन्ध मे प्रशंसात्मक उल्लेख किए हैं।
६. वही, पद्य ७९७, ८०४, ८४४ इत्यादि।
७ वही, पद्य ६९।
८. कृति मे सालवाहण, साल्लाहण आदि नाम मिलते हैं।

सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती के परिणय की सुन्दर काव्यमय प्रेम-कथा का चित्रण कौतूहल ने अपनी गाथाबद्ध[1] रचना लीलावतीकथा[2] में किया है। सातवाहन और लीलावती के परिणय के साथ अन्य अनेक शापादि द्वारा वियुक्त प्रेमी प्रेमिकाएँ भी मिल जाते हैं। एक विरक्त राजर्षि और अप्सरा रम्भा की पुत्री कुवलयावली अपने गन्धर्व पति, जो कुवलयावली के ऋषि पिता के शाप से भीषणानन राक्षस हो गया था और जिसकी सातवाहन के प्रहार से शाप से मुक्ति होती है, से मिलती है। इसी अवसर पर यक्ष राजा नल-कूबर की पुत्री महानुमती का परिणय मलय पर्वत के सिद्ध राजा के पुत्र माधवा-निल से होता है। कवि ने सातवाहन और लीलावती के प्रेम प्रसग वर्णन को प्रधान स्थान दिया है। लीलावती चित्रशाला में सातवाहन के चित्र को देखकर तथा उसे स्वप्न में देखकर उस पर अनुरक्त हो जाती है। उसके माता पिता उसकी इच्छा समझकर उसे आदर पूर्वक हालसातवाहन के पास भेज देने की आज्ञा देते हैं। उसका दल मार्ग में आकर गोदावरी के तट पर ठहरता है जहाँ महानुमती और कुवलयावली तपस्विनी रूप में रह रही थी। लीलावती यहाँ ठहरकर भवानी की पूजा करती है और सब से परिचय प्राप्त करती है। राजा सातवाहन का सेना-पति विजयानन्द भी यही ठहरा था। वह पहिले से ही प्रयत्न कर रहा था कि सिंहल और प्रतिष्ठान के राज परिवारो में वैवाहिक संबंध हो सके और सातवाहन के आधिपत्य को धक्का न पहुँचे। विजयानन्द दोनो के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। अन्त में सेना लेकर हाल गोदावरी के उस तट पर सप्त गोदावरी भीम, जाता है और भीषणानन को पराजित कर शाप मुक्त करता है, और लीलावती के पास समाचार पहुँचाता है। इस अवसर पर सिद्ध, गधर्व, यक्ष आते हैं, सिंहल से शिला-मेघ अपनी रानी शरदश्री सहित आता है। सिद्धादि राजाओं ने सातवाहन को अंतर्द्धान, अक्षय कोश, आकाश सचारिणी 'दिविगमन' आदि अनेक सिद्धियाँ विवाह के अवसर पर भेंट स्वरूप दी।

लीलावती कथा को कवि ने 'दिव्य मानुषी' कथा कहा है।[3] कवि ने अपनी

---

१. प्रधान छंद गाथा हैं, कृति के १३३३ पद्यो में बहुत ही कम पद्य भिन्न छंदो में हैं। यथा, पद्य २४,६६८, शार्दूल विक्रीडित है, पद्य ११७० पृथ्वी है।

२ डा० आ० ने उपाध्ये द्वारा संपादित भारतीय विद्याभवन, बंबई से प्रकाशित १९४९ ई०।

३. कथा और आख्यायिका के संबध में दे० एस० के० दे 'द आख्यायिका

स्त्री के मुख से 'दिव्य मानुषी' कथा की सरसता की प्रशंसा कराई है, फलस्वरूप कृति मे देवता और मनुष्य दोनो वर्गो के पात्र परस्पर मिलते हैं और ईर्ष्या कलह न करके सातवाहन पर प्रसन्न हो कर उसे सिद्धियाँ भी प्रदान करते हैं। कथा मे प्रेमी प्रेमिकाओ के प्रेम की कवि ने पूरी परीक्षा की है। महानुमती, या कुवलयावली अपने प्रेमियो के लिए जन्म भर तपस्या कर सकती है। विजयानन्द युवतियो की इस तपश्चर्या को देखकर आश्चर्य मे पड जाता है। लीलावती भी हाल के लिये दृढ थी। और हाल भी उसके लिये पाताल जाता है, भीषणानन से युद्ध करता है।

अपनी कथा को कवि ने यथाशक्ति खूब काव्यमय वर्णनो से सजाया है नगर[1], राजाओ[2], ऋतुओ[3], पर्वतो, दृश्यो आदि के अनेक सुन्दर वाक्वैभव से पूर्ण वर्णन हैं। कृति का प्रारंभिक भाग तो मानो राजाओ के जीवन का एक चित्र प्रस्तुत करने के लिये ही लिखा गया है जिसमे सातवाहन की दिनचर्या का विस्तृत वर्णन है।[4] समस्त कृति अलकृत काव्यमय शैली मे लिखी गई है। कृति की कथा उलझी हुई है। एक कथा के भीतर और कथा कहने की शैली का प्रस्तुत कथा मे अनुसरण किया गया है। अनेक पात्रो की कथाओ को सुसबद्ध एक कथा के रूप मे प्रस्तुत करने मे कृतिकार ने बडा ही कौशल दिखाया है। प्रेम का बडा ही सतुलित रूप लीलावती कथा मे मिलता है।

कृति की भाषा साहित्यिक महाराष्ट्री प्राकृत है, कवि ने स्वय अपनी कृति को 'मरहट्ट देसि भासा' रचित कहा है। सभव है कवि महाराष्ट्र निवासी हो और अपनी भाषा के साहित्यिक प्राकृत रूप को उसने यह नाम दिया हो।"[5]

एड कथा इन क्लासिकल संस्कृत' बुलेटिन अव् द स्कूल अव् ओरिएंटल स्टडीज ३.३.५०७-१७। प्रस्तुत कृति सर्ग, खंड आदि में विभक्त नहीं है, प्रारभ में कवि परिचय, सज्जन, दुर्जन स्मरण प्रसंग हैं।

१ प्रतिष्ठान वर्णन : पद्य ५२-६३। मेरु पर्वत का वर्णन, २७४-८०, मलय पर्वत का वर्णन, ३४१-५७।

२. हाल का वर्णन, वही, ६४-७२।

३ वसत, वही, पद्य ७३-८८, सूर्योदय ४३६-५७, चद्रोदय ५१६-५२९।

४. लीलावती कथा, पद्य ८८-१३० इत्यादि।

५ वही, भूमिका, पृ० ८५-८६।

उसी प्रकार का श्रीकृष्णलीलाशुक का श्री चिह्नकाव्य (सिरि चिंध कव्व)[१] प्राकृत काव्य है। बारह सर्गो की इस गाथाबद्ध कृति मे श्रीकृष्ण की लीला-वर्णन के साथ साथ त्रिविक्रम देव के प्राकृत सूत्रो की व्याख्या की गई है। इस प्रकार के प्रयास मे स्वच्छंद प्रवाह, प्रबंधात्मकता मे त्रुटियाँ स्वाभाविक ही है। श्रीकृष्णलीलाशुक द्वारा कृति के आठ सर्गो की रचना हुई है, अन्तिम चार सर्ग उनके शिष्य दुर्गा प्रसाद की रचना है। श्रीकृष्णलीलाशुक का समय त्रिविक्रम (१३वी शती ई०) के पश्चात् होना चाहिए।

प्राकृत व्याकरण के अध्ययन के फलस्वरूप दक्षिण भारत मे अठारहवी शती तक प्राकृत काव्यो की रचना होती रही। कृष्ण के चरित से सबधित दक्षिण भारत मे रचित इस प्रकार की तीन परवर्ती प्राकृत रचनाएँ उपलब्ध हुई है। श्री कठ-रचित शौरि चरित्र (सौरि चरित्र)[२] तथा रामपाणिवाद की उषानिरुद्ध (उसाणिरुद्ध)[३] और कंस वध (कसवहो)।[४] श्री कठ की कृति यमक काव्य है अत दुरुह है, सस्कृत काव्य-शैली से प्रभावित है। श्रीकठ का समय अठारहवी शती ई० का उत्तरार्द्ध माना जाता है, वे मालाबार की वारियर जाति के थे।

रामपाणिवाद की दोनो कृतियो की कथा का आधार पौराणिक घटनाएँ है। उषानिरुद्ध चार सर्गो की छोटी सी कृति है, कृति के २८० पद्यो मे सस्कृत के विभिन्न छदो का प्रयोग हुआ है। कसवध भी इसी प्रकार की कृति है, चार सर्ग तथा सब २३३ पद्य है, जो सस्कृत छदो मे है। कवि की प्राकृत, व्याकरण सम्मत प्राकृत है[५] जिस पर सस्कृत काव्यशैली का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

---

१ दे० डा० उपाध्ये · भारतीय विद्या, भाग ३, अंक १, १९४१ ई०, पृ० ६ और आगे।

२ डा० उपाध्ये द्वारा प्रथम सर्ग सपादित हुआ है। दे० जर्नल अव् द यूनिवर्सिटी अव् बंबई, सितबर १९४३।

३ डा० उपाध्ये द्वारा सपादित, जर्नल यूनीवर्सिटी अव बबई १९४१-४२। पृ० १५०–१९४।
तथा अड्यार, मद्रास, १९४३ ई० सपा० डा० कुन्हन राजा इत्यादि

४ डा० उपाध्ये द्वारा संपादित, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई १९४० ई०।

५ रामपाणिवाद ने वररुचि के प्राकृत सूत्रो पर एक वृत्ति भी लिखी है, डा० सी० कुजन राजा द्वारा सपादित, मद्रास १९४६ ई०।

रामपाणिवाद ने सस्कृत, प्राकृत और मलयाली मे रचनाएँ लिखी है।[1] कमवध मे कवि ने रचयिता के रूप मे अपना नाम दिया है, उषानिरुद्ध मे इस प्रकार का कोई उल्लेख नही है। शैली एव भाषा के साम्य से कृति के रचयिता रामपाणिवाद ही ठहरते है। रचनाशैली के आधार पर उपानिरुद्ध कसवध से पहिले की रचना जान पडती है।

रामपाणिवाद केरल देशवामी थे। उनका जन्म सन् १७०७ ई० के लगभग हुआ था। अनेक राजाओ के आश्रय मे रहकर उन्होने काव्य रचना की और १७७५ ई० के लगभग मृत्यु को प्राप्त हुए।[2]

प्राकृत मे प्राप्त प्रबन्धात्मक कृतियो का मक्षेप मे यही इतिहास है। वास्तव मे प्राकृत के विशाल माहित्य मे से शेष बची कृतियो का यह विवरण है। अनेक कृतियो के आज नाममात्र ही शेष रह गए है, रीति ग्रथकारो ने उदाहरण के रूप मे उनका उल्लेख किया है अत उनकी उत्कृष्टता निर्विवाद है। प्राप्त कृतियो मे मे, जो प्राचीन है, सेतुबन्ध का रीति ग्रन्थकारो ने उल्लेख किया है और वह कृति इस योग्य है, रीति ग्रन्थकारो के उल्लेखो द्वारा निम्न प्राकृत काव्यो का पता चलता है

वाक्पतिराज ने गौडवध मे अपनी स्वरचित कृति मधुमथ विजय का उल्लेख किया है।[3] इस कृति से एक पद्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोकलोचन मे उद्धृत किया है।[4] वाक्पति के दो पद्य मार्कण्डेय ने अपने प्राकृत व्याकरण मे उद्धृत किए है[5] जो गौडवध मे नही मिलते, सभव है वे मधुमथविजय से लिए गए हो। इस महत्वपूर्ण कृति का उल्लेख आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, भोज, तथा मार्कण्डेय ने किया है। इन उल्लेखो से कृति के महत्व की सूचना मिलती है। प्राप्त पद्यो से प्रतीत होता है कि कृति मे कृष्ण का चरित्र होगा।

आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक मे अपनी कृति विषमबाण लीला का उल्लेख किया है और उसमे से तीन प्राकृत पद्य भी उद्धृत किए है जो शृगार रस से सबधित है। एक पद्य इसी कृति मे से कृति की टीका 'लोचन' मे उद्धृत किया गया

---

१. कसवध की भूमिका पृ० १४ और आगे।
२. वही, पृ० १५-१८।
३. गोडवध, पद्य ६९।
४. काव्यमाला संस्करण, बवई, १९३५ ई०, पृ० १८८।
५ प्राकृत सर्वस्व, पृ० ५० तथा ६१।

है।[1] देवीशतक के अन्तिम पद्य की टीका मे कैयट ने भी इस कृति का उल्लेख किया है।[2] इन पद्यो के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि कृति मुक्तक पद्यो का सग्रह होगी।

हरिविजय नामक कृति से ध्वन्यालोक मे एक पद्य उद्धृत किया गया है[3] तथा हेमचद्र ने अनेक काव्यगुणो से युक्त इसे बताया है, रचयिता का नाम हेमचन्द्र ने सर्वसेन दिया है।[4]

रावणविजय महाकाव्य से हेमचन्द्र ने एक प्राकृत पद्य काव्यानुशासन मे उद्धृत किया है[5]। हेमचन्द्र ने अनेक प्रकार के वर्णनो से युक्त उदाहरण के रूप मे कृति का नामोल्लेख किया है।

कुवलयाश्वचरित को स्वरचित महा 'प्राकृत' काव्य बताते हुए विश्वनाथ (१४ वी शती ई०) ने साहित्यदर्पण मे एक पद्य उद्धृत किया है।[6] उनके अनुसार यह कृति आश्वासको मे विभक्त तथा स्कधक और गलितक छद बद्ध होनी चाहिये। उद्धृत पद्य स्कधक ही है। विश्वनाथ का आदर्श सेतुबन्ध रहा होगा। इसी नाम के एक ग्रन्थ का उल्लेख हेमचन्द्र ने भी किया है।[7] ध्वन्यालोक लोचन मे अभिनवगुप्त ने एक पद्य अपने उपाध्याय भट्ट इन्दुराज का उद्धृत किया है।[8] जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि भट्ट इन्दुराज ने भी किसी प्राकृत कृति की रचना की थी।

नायक नायिका भेद के विवेचन से युक्त एक मदन मुकुट नामक प्राकृत कृति के ८१ गाथा प्राप्त हुए है, कृति परिच्छेदो मे विभक्त है। प्रथम परिच्छेद मे पद्मिनी आदि चार प्रकार की नायिकाओ का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद मे चन्द्रकलादि नायको के लक्षणो के उल्लेख है। कृति के रचयिता सिधुतट पर-

१. ध्वन्यालोक, काव्यमाला, १९३५, पृ० ७६,१३६,१८८ तथा ३०३।
२. काव्यमाला, १८९३ ई० पृ० ३०।
३. ध्वन्यालोक पृ० १५६.।
४ काव्यानुशासन, काव्यमाला १९३४ ई० पृ० ४०५, विवेक पृ० ४०३, ४०४।
५. काव्यानुशासन, विवेक, पृ० ४०१, ४०५।
६ साहित्यदर्पण, निर्णयसागर सस्करण, १९३६, पृ० ३७५।
७ का० नु०, पृ० ४०५, विवेक, पृ० ४०२,४०४।
८ ध्वन्यालोक, पृ० २७९।

स्थित माणिकपुर महापुरी के निवासी कोई गोसल विप्र थे। कृति महाराष्ट्री प्राकृत मे प्रतीत होती है, कृति के रचनाकाल आदि का कुछ पता नही है। विषय की दृष्टि से कृति महत्वपूर्ण है।[1]

नाटको की प्राकृत :

सस्कृत के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र विशारदो ने रूपकादि मे प्राकृतो के प्रयोग का भी विधान वनाया है। रूपकादि मे प्राकृतो का प्रयोग पहिले होने लगा था या विधान वनने के पश्चात् प्राकृतो का प्रयोग प्रारम्भ हुआ यह स्पष्ट नही है। किन्तु, समव ऐसा लगता है कि विधान की सृष्टि पीछे हुई।[2] नाट्यशास्त्र मे विभिन्न पात्रो द्वारा सात भाषाओ के प्रयोग का उल्लेख है। मागधी, अवन्ती, प्राच्या, सूरशेनी, अर्ध मागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या।[3] इनके अतिरिक्त शबरादि जाति के लोगो के लिये विभाषाओ के प्रयोग का नियम वनाया है।[4] दशरूपकादि परवर्ती नाट्य विधान सवधी कृतियो मे भारतीय नाट्य शास्त्र के नियमो का अनुगमन किया गया है। शारदातनय ने भाव प्रकाशन मे सभी मतो का सग्रह किया है और नाटकोपयोगी भाषाओ मे उन्होंने पाँच, छ या सात भाषाओ को माना है। वे क्रमश सस्कृत, प्राकृत, पैशाची, मागधी, शौरसेनी तथा अपभ्रश सहित छ और अपभ्र श से सवधित भाषाओ सहित सात भाषाएँ हैं।[5] इसके अतिरिक्त अठारह देशभाषाओ तथा सात वैभाषिको के लिये विभाषाओ का उल्लेख किया है।[6]

भरत के परवर्ती समस्त रूपककारो ने नियमानुकूल प्राकृतो का प्रयोग किया है। भरत के समसामयिक या पूर्ववर्ती अश्वघोष की नाट्य रचनाओ के प्राप्त अशो मे सस्कृत और प्राकृतो के प्रयोग मिलते है। इन प्राकृतो मे कुछ विशेषताएँ है अत उसको विशेषज्ञो ने 'प्राचीन मागधी, प्राचीन अर्ध मागधी और प्राचीन शौरसेनी, कहा है। प्राकृत काव्य की दृष्टि से यह अश महत्वपूर्ण नही है किन्तु प्राकृत भाषा की दृष्टि से, उसके प्रयोग की दृष्टि से ई० पूर्व के यह प्रयोग महत्त्वपूर्ण

---

१. भारतीय विद्या, मार्च १९४२, श्री अगरचद नाहटा का लेख. पृ० १९२।
२ कीथ · संस्कृत ड्रामा, पृ० २९२।
३. नाट्यशास्त्र, अध्याय १८, ३५, ३६, चौखभा संस्करण, काशी।
४. वही, १८-४१-४९।
५ भावप्रकाशन (वड़ौदा १९३० ई०), दशम अधिकार, पृ० ३१०, १५-२०।
६ वही, पृ० ३११- १२ और आगे।

है।[1] भास और कालिदास की नाटचकृतियो मे भी नियमानुकूल प्राकृतो के प्रयोग मिलते हैं। दूतवाक्य के अतिरिक्त भास की सभी कृतियो मे प्राकृत के प्रयोग मिलते हे। शौरसेनी का प्राधान्य है। कर्णभार तथा बालचरित मे मागधी के भी प्रयोग मिले हे।[2] कालिदास की कृतियो मे गद्य के लिये शौरसेनी तथा स्त्रियो के गीतो मे महाराष्ट्री का प्रयोग सामान्य रूप से हुआ है। अभिज्ञान शाकुन्तल मे मछुए मागधी मे बोलते है। विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अक मे प्रयुक्त अपभ्र श के पद्यो के सबध मे कालिदास कृत होने मे सदेह है। शूद्रक का मृच्छकटिक प्राकृत के प्रयोगो की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पात्र नाट्यशास्त्र द्वारा निर्धारित नियमो के अनुकूल ही प्राकृत का प्रयोग करते है, शौरसेनी, आवन्ती, प्राच्या, मागधी, ढक्की, इन सभी प्राकृत भेदो को शौरसेनी, मागधी और ढक्की के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[3] आगे की सभी नाट्य-कृतियो मे कृत्रिम रूप मे प्राकृत का व्यवहार नियमानुकूल होता रहा। सस्कृत शब्दावली का प्राकृत रूपान्तर करके कदाचित् प्राकृत लिखी जाती रही होगी।[4] इस रूढि की पुष्टि तेरहवी शती की हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराज पराजय[5] जैसी रचनाओ मे पैशाची के प्रयोगो से भी होती है। नाटको मे प्राकृत के आशिक प्रयोगो के अतिरिक्त कुछ सट्टक मिलते हैं जो प्राकृत मे ही हैं। सब मे प्राचीन उपलब्ध सट्टक राजशेखर (८८०-९२० ई०) की कर्पूरमजरी[6] हे। इसमे आद्योपान्त शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। कर्पूरमजरी के आधार पर कदाचित् अनेक सट्टको की रचना पीछे होती रही, कुछ रचनाएं निम्न है .

---

१. एच० ल्युडर्स . ब्रुखश्टुके बुधिष्टिशेर ड्रामेन, बर्लिन १९११ ई०।
२ कीथ सस्कृत ड्रामा, पृ० १२१ डब्ल्यू० प्रिज, भासाज प्राकृत, १९२१ई०।
३. कीथ स० ड्रामा, पृ० १४१-१४२, पीशेल ग्रामाटिक परिच्छेद २५ तथा आगे।
४. नाटको मे प्रयुक्त प्राकृत का अध्ययन तो प्राय सस्कृत अनुवाद द्वारा ही होता है।
५. गायकवाड्ज ओरिएटल सीरीज, बड़ौदा, १९२० ई० और १९१८ ई० मे प्रकाशित।
६. इसके दो संस्करण हुए हैं दोनो संपादको द्वारा इसकी भाषा का तथा अन्य विशेषताओ का अध्ययन किया गया है, कोनो, हरवर्ड ओरिएंटल सीरीज १९०१ तथा डा० मनमोहन घोष, कलकत्ता विश्वविद्यालय कलकत्ता, १९३९ ई०।

१ नयचंद्र कृत रम्भामंजरी[1] की रचना ई० की १५वीं शती में हुई होगी।[2] इस कृति में नयचंद्र ने संस्कृत तथा मराठी का भी प्रयोग किया है।[3]

२ प्राकृत वैयाकरण मार्कण्डेय (१७वीं शती ई०) ने अपनी व्याकरण-कृति प्राकृत सर्वस्व में स्वरचित विलासवती सट्टक की चर्चा की है। एक पद्य उद्धृत किया है, कृति अनुपलब्ध है।[4]

३ रुद्रदास (१७वीं शती ई०), जो मालावार प्रदेश के निवासी थे, ने चंद्रलेखा सट्टक की प्राकृत में रचना की है।

४ विश्वेश्वर (१८ वीं शती ई०) की कृति शृंगारमंजरी सट्टक की हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इस कृति में आद्योपान्त प्राकृत का प्रयोग हुआ है।[5]

५ घनश्याम (१७००-१७५० ई०) कृत आनन्दसुन्दरी सट्टक भी प्राकृत में है।[6] घनश्याम ने आनन्दसुन्दरी, वैकुण्ठ चरित तथा एक अन्य सट्टक की रचना की थी। कथावस्तु, शैली सभी दृष्टियों से उपर्युक्त सभी उपलब्ध सट्टक कृतियाँ कर्पूरमंजरी से प्रभावित हैं। भाषा में जो देशी शब्दों के स्वतन्त्र प्रयोग, सुभाषित तथा प्रवाह कर्पूरमंजरी में मिलता है वह अन्य सट्टकों में नहीं।

नाटक-साहित्य में प्राप्त प्राकृत, प्राकृत-साहित्य की महत्वपूर्ण धारा है जो अविच्छिन्न रूप में ई० पू० की शताब्दियों से १८वीं शती ई० तक मिलती है। पाँचवीं, छठवीं शती तक प्राकृत के प्रयोगों में प्राकृत भाषा की स्वाभाविकता हो सकती है, इसके पीछे की शतियों में केवल परंपरा का पालन हुआ होगा। कालिदास जैसे कलाकार के हाथ में प्राकृत भी संस्कृत के समान कोमल सूक्ष्म कल्पना को व्यक्त करने वाली हो गई है यथा अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रथम गीत देखा जा

---

१ कीर्तने, बंबई, १८७९ ई०, इस समय अप्राप्य है।

२ चंद्रलेखा सट्टक भारतीय विद्या भवन से प्रकाशित, डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा संपादित, बंबई १९४५ ई०, भूमिका पृ० ३५-३६।

३. ओडीसा में भी कुछ ऐसी संस्कृत नाट्य कृतियाँ मिलती हैं जिनमें ओड़िया भाषा के प्रयोग मिलते हैं।

४ चं० ले० सट्टक भूमिका पृ० ४३।

५ चं० ले० भूमिका पृ० ४३-४८।

६ डा० उपाध्ये द्वारा संपादित होकर बनारस से प्रकाशित, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस १९५५ ई० भूमिका पृ० ४८-४९, और आगे।

सकता है 'ईसीसिचुम्बिआइं ममरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं । ऐसे कवियो की सस्कृत और प्राकृत मे व्यक्त भाव और कल्पना मे कोई अन्तर नही मिलता। प्राकृतो का प्रयोग नाटको मे विभिन्न पात्र पात्रियो की वोली की स्वाभाविकता प्रकट करने के लिये प्रारम्भ किया गया होगा, आगे इस नियम का रूढि रूप से पालन होता रहा, प्राकृत जव वोलचाल की भाषा न रह गई तो भी उसका प्रयोग होता रहा अन्यथा उसके स्थान पर अन्य बोलियो का प्रयोग होना चाहिए था। प्राकृत के मृतभाषा या साहित्य की भाषा मात्र रह जाने पर सस्कृत छाया अनिवार्य रूप से रहने लगी और कही कही केवल छाया ही रह गई जो प्राकृतो के अज्ञान के कारण है।

उत्तर-पश्चिमी प्राकृत :

मो०, डूत्रल द र्‌ह ने सन् १८९२ ई० मे खोटान मे खरोष्ठी लिपि मे लिखित धम्मपद के कुछ पत्र प्राप्त किए जो प्राकृत मे थे। खरोष्टी लिपि मे होने के कारण विद्वानो ने इसको 'खरोष्ठी धम्मपद' नाम दिया[1] तथा कुछ ने 'प्राकृत धम्मपद'।[2] विद्वानो ने इसकी भाषा को उत्तर पश्चिम देश की वोली का रूप वताया है।[3] सर औरेल स्टाईन ने चीनी तुर्किस्तान की यात्राओ (१९००-१, १९०६-७, १९१३-१४ ई०) मे अनेक खरोष्ठी लेख प्राप्त किए जिनका अध्ययन श्रोडर, राप्सन, सेनार्त ने किया और क्रमश १९२० ई०, १९२७ ई० तथा १९२९ ई० मे 'खरोष्ठी इस्क्रिप्शन्ज' के नाम से प्रकाशित कराया।[4] उत्तर सीमान्त प्रदेश की प्राकृत के अध्ययन के लिये ये सग्रह महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इनमे से अधिक अशो के निय स्थान मे प्राप्त होने के कारण इनकी प्राकृत को निय-प्राकृत कहा जाता है।[5] इनका समय ई० की तीसरी शती विद्वानो ने अनुमित किया है।[6] धम्मपद की गाथाओ मे कही कही कुछ सरल कल्पना मिल सकती है अन्यथा इस प्राकृत साहित्य मे साहित्यिक कल्पना या भावात्मकता नही मिलती। साहित्य की दृष्टि से कम भाषा की दृष्टि से इस साहित्य का महत्व अधिक है।

---

१. एमील सेनार्त : खरोष्ठी धम्मपद, १८९७ ई०।

२. शैलेन्द्रनाथ मित्र तथा वेनीमाधव वरुआ : प्राकृत धम्मपद, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

३. कात्रे : प्राकृत लैंग्वेजेज एन्ड देयर कन्ट्रीव्यूशन टु इंडियन कल्चर।

४. वही पृ० ३४।

५ वही, पृ० ३५।

६. वही, पृ० २५।

प्राकृत के प्रयोग और उसके प्रसार क्षेत्र की विशालता की सूचना नियप्राकृत के अश देते हैं।

शिलालेखो की प्राकृत :

प्राकृत मे प्राप्त सबसे प्राचीन शिलालेख अशोक के हैं। शाहबाजगढी और मनसेहरा के लेख खरोष्ठी लिपि मे है, ब्राह्मी लिपि मे उत्कीर्ण लेख भारत के विभिन्न भागो मे मिलते है। विभिन्न प्रान्तो के अनुसार इन शिलालेखो की भाषा मे भी कुछ भेद मिलते है, पैशाची, महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राचीन मागधी, और अर्धमागधी सभी की विशेषताएँ देश भेदो के अनुसार इन लेखो मे मिलती हैं।[1] इन लेखो मे सरल धर्मोपदेश है। भाषा के अध्ययन की दृष्टि से ये शिलालेख अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है, साहित्यिकता उनमे नही है। अशोक की धर्मलिपियो का जिस प्रकार अध्ययन हुआ है उस प्रकार प्राकृत मे प्राप्त अन्य शिलालेखो का नही हुआ, न उनकी कोई सूची या सग्रह ही अलग हुआ है। सन् ईसवी के पूर्व की कुछ शतियो से लेकर ईसा की पाँचवी शती तक के अनेक प्राकृत शिलालेख मिलते हैं जो पर्वतो की चट्टानो, गुहाओ, बर्तनो और सिक्को पर उत्कीर्णित हुए मिलते है। प्राचीन शिलालेखो की प्राकृत प्रायः सस्कृत से प्रभावित प्रतीत नही होती, कही कही सस्कृत शैली का प्रभाव मिलता है,[2] काव्य गुण इस प्राकृत मे नही मिलते, कही कही गीति तत्व या सस्कृत पदावली का अनुकरण करती हुई वाक्यावली मिलती है।[3] परवर्त्तीकाल मे प्राकृत पद्य-बद्ध

---

१. डा० बेनीमाधव बरुआ : अशोक एन्ड हिज इन्स्क्रिप्शान्ज, भाग २, कलकत्ता १९४६ पृ० ४८-६१।
तथा एम० ए० मेहेण्डले : हिस्टारिकल ग्रैमर अव् इंस्क्रिप्शनल प्राकृत्स, पृ० २६९ और आगे, पूना १९४८।

२. सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्ज बेयरिंग आन इंडियन हिस्ट्री एन्ड सिविलिजेशन, प्रथम भाग, डा० डी० सी० सरकार द्वारा संपादित, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता १९४२ ई०, शिलालेख सं० २० पृ० २८७, तथा सं० ५७ पृ० ४००।

३. सीताबेंगा तथा जोगीमारा गुहाओ के शिलालेखो मे कुछ गीतिपद्य मिलते हैं तथा नासिक के प्राकृत शिलालेखों पर स्पष्ट ही संस्कृत की काव्य शैली का प्रभाव लक्षित होता है। कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० ५४, ८६,८९।

शिलालेख भी मिलते हैं।[1] काव्य की विभिन्न विशेषताओं, मानव भावनाओ, काव्यरूपो, सामाजिक चेतनाओ आदि का दर्शन शिलालेखो की भाषा मे नहीं मिल सकता। उनके लिये स्थान कम रहता है, यह भिन्न बात है कि कहीं कहीं समस्त कृतियाँ पत्थरो पर खुदी हुई मिलती हैं। इतिहास और भाषा की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है। सभी प्रकार की प्राकृतो के अध्ययन के लिये शिलालेखो मे विपुल सामग्री मिलती है।

इन समस्त प्राकृत साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध और जैनो द्वारा लिखित कुछ सस्कृत कृतियाँ मिलती हैं जिन पर प्राकृत का प्रभाव है। इन कृतियो मे शब्दो के रूप इस प्रकार बनाए गए हैं कि सस्कृत व्याकरण की दृष्टि से तो वे अशुद्ध हैं ही प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से भी कदाचित् ही वे शुद्ध कहे जा सकते है। बौद्ध साहित्य मे महायान शाखा की रचनाएँ महावस्तु, सद्धर्मपुडरीक, ललितविस्तर, जातकमाला, अवदानशतक ग्रंथो की भाषा इसी प्रकार की है जिसे 'गाथा डाइलेक्ट या मिश्र सस्कृत' कहा गया है।[2] इसी प्रकार जैन सप्रदाय की कुछ कृतियो वराग चरित[3], चित्रसेन पद्मावती चरित्र, प्रबन्ध चिन्तामणि,[4] हरिषेणाचार्य कृत कथाकोष[5], आदि कृतियो मे जहाँ तहाँ प्राकृताभास मिलता है। इनके अतिरिक्त तत्र और शैव संप्रदाय के ग्रथ भी प्राकृत या अशुद्ध सस्कृत मे लिखे गए हैं। साधनमाला जैसी तांत्रिक कृतियो मे प्राकृत के पद्य मिलते हैं तथा शैव सप्रदाय के ग्रथ महार्थमजरी मे प्राकृत को सप्रदाय की भाषा ही कहा गया है।[6] कौल ज्ञान निर्णय की भूमिका मे अशुद्ध प्रयोगो के सबध मे एक

---

१. एपिग्रैफिका इंडिका, भाग ८, पृ० २४१ और आगे। धार मे प्राप्त शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ जिनमें गाथाबद्ध भोजकृत कही जाने वाली दो प्राकृत कविताएँ उत्कीर्णित मिली हैं।

२. एम० विंटरनित्स : हिस्टरी अव् इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० २२६, ४०१।

३. भूमिका : डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा लिखित, माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला, बंबई।

४. सिंघी जैन ग्रंथमाला में प्रकाशित।

५. सिंघी जैन ग्रंथमाला में डा० उपाध्ये द्वारा संपादित होकर प्रकाशित।

६. 'प्राकृतभाषाविशेषत्वाच्च यथा सम्प्रदाय व्यवहार इत्युपदेश.' महार्थमंजरी (त्रिवेन्द्रम् १९१९ ई०, सं० त० गणपति शास्त्री) पृ० १९२-१९३।

मनोरंजक उद्धरण मिलता है, जिसमे कहा गया है कि 'साधु शब्द प्रयोग के अभिमान का नाश करने के लिये जान बूझ कर ऐसे भ्रष्ट प्रयोग किए गए हैं।'[1]

ऊपर के पृष्ठो मे प्राकृत साहित्य की एक सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जो प्राकृत साहित्य की सीमाएँ स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है। प्राकृतो का प्रयोग समस्त भारत तथा उससे सलग्न प्रदेशो मे समझा जाता था, ई० पू० तीसरी शती से लेकर १८ वी शती ई० तक उसमे भारत मे कही न कही रचना होती रही। गद्य, पद्य, कथा, गीति, मुक्तक, प्रबन्ध, नाटक सभी प्रकार की रचनाएँ प्राकृत मे उपलब्ध होती हैं। प्रबन्ध, कथा, मुक्तक प्राकृत में अत्यन्त उच्चकोटि के मिलते हैं। निस्सन्देह इस मनोरम साहित्य का रस लेने वाले, समझने वाले प्राकृत काव्य मर्मज्ञ भी किसी समय अनेक रहे होगे और उन्हीं को सामने रखकर अनेक कवियों ने प्राकृत काव्य की सृष्टि की होगी। भारतीय जीवन और भारतीय साहित्य को इस साहित्य ने इस प्रकार अवश्य ही प्रभावित किया होगा। प्राकृत मे प्राप्त गीति मुक्तको मे जो मौलिक धारा मिलती है[2], उससे सस्कृत साहित्य, अपभ्रश और फिर क्रमश हिन्दी साहित्य अवश्य प्रभावित हुए हैं। अद्वितीय कथाग्रथ गुणाढ्य कृत वृ ... यदि वास्तव मे पैशाची प्राकृत मे थी तो यह कहने मे किसे सदेह हो ... सज्ञा दी है जो ...ीय कथा साहित्य प्राकृत से प्रभावित नही हुआ। सस्कृत

स्पष्ट हो जाता

१. भी होने लगी वादिनां सुशब्दग्रहविनाशाय अर्थशरणतामाश्रित्य क्वचित् वृ...द् सबसे ...एवं टीकायाम् अपि सुशब्दाभिमाननाशाय लिखितव्यं मया ... रणतामाश्रित्य इति, कौलज्ञाननिर्णय, कलकत्ता १९३४ ई० प्रिफेस, पृ० ५-६।

२. गाथा सप्तशती के कुछ प्राचीन संस्करणो मे पदो के रचयिताओ के नाम मिलते हैं। स्वयंभू छंद जैसी कृतियों में प्राप्त उद्धरणो के साथ भी कवियो के नाम दिए हैं। निश्चय ही इन कवियों ने एक दो पद्य ही नहीं रचे होगें। इनकी अनेक रचनाएं होंगी और मुक्तक साहित्य प्राकृत मे इस प्रकार विपुल परिमाण में रहा होगा। यह मुक्तक गीति लोक जीवन से प्रभावित हैं किन्तु रचना कौशल उनमें साहित्यिक है। गाथा मे प्राप्त नामो के लिए दे० वेबर का सस्करण भूमिका, इ० हि० क्वार्टली १९४७, पृ० ३००-१० प्रो० वी० वी० मीराशी का लेख "द डेट अव् गाथा सप्तशती।"

३. लाकोत, एसाइ सुर गुणाढ्य ए ला बृहत्कथा, पारी, १९०८।

काव्य मे जो विविधता मिलती है वही कुछ सीमित ढंग से प्राकृत मे मिलती है, जो शैली, काव्यरूप, छद सस्कृत मे मिलते हैं वे प्राकृत मे भी मिल जाते है और इन सब के अतिरिक्त प्राकृत मे अपनी एक मौलिकता भी है, गाथा, स्कधक आदि छद उसके अपने हैं।[1] इस प्रकार प्राकृत मे दो धाराएँ मिलती है, एक उन लेखको की परपरा है जिन्होने सस्कृत काव्य की अनेक परपराओ, शैलियो से प्रभावित होकर रचनाएँ की दूसरी धारा-प्राकृतके मौलिक लेखको की है जिन्होने प्राकृत के छदो, सीधे जीवन से सबधित दृश्यो को अपनाया। गाथा सप्तशती, वज्जालग्ग, तथा अन्य स्फुट पद्यो मे जो मुक्तक धारा मिलती है उसमे कला का अत्यन्त निखरा रूप, मर्यादा से कुछ दूर स्वतत्र काव्योक्तियाँ और सक्षेप मे अधिक कहने का प्रयास और अद्वितीय सरसता सब विशेषताएँ मिलती हैं, यह धारा क्रमश अपभ्रश मे भी चलती रही भले ही वह सस्कृत के माध्यम से आई हो। हिंदी मे भी वह प्राकृत के मूलस्रोत से ही आई। इसी प्रकार अन्य प्राकृत काव्य धाराओ का भी भारतीय साहित्य पर प्रभाव अवश्य पड़ा होगा किंतु पूरे साहित्य के न मिलने से निश्चित शृखला आज उपलब्ध नही हो रही है।

कृत या अशुद्ध
कृत के पद्य मि
की भाषा ही
के सबध

---

१. कुछ प्राकृत कृतियों में अनेक छंदों के प्रयोग हुए हैं जिनका नाम किसी छंद शास्त्र विषयक कृति में नहीं मिलता। यथा अजित शांतिस्तवन जैन संप्रदाय की एक छोटी सी रचना में खिज्जययं, भाभुरयं जैसे छंद मिलते हैं। कृति की एक प्रतिलिपि प्रस्तुत लेखक के पास है।

२

अपभ्रंश भाषा

प्रारम्भिक—सस्कृत के साधुशब्दो के अतिरिक्त शब्द रूपो को पतजलि ने महाभाष्य मे 'अपशब्द' या 'अपभ्र श' (पतित) सज्ञा दी है।[1] आगे जिस साहित्यिक या बोली की भाषा का 'अपभ्र श' नाम पडा उस भाषा से पतजलि के उल्लेख का कोई सीधा सबध नही प्रतीत होता। 'गावी', 'गोणी' आदि जो अपशब्दो के उदाहरण उन्होने उद्धृत किये हैं वे प्राकृतो मे मिलते हैं। शब्दो के विकृत रूप मात्र को व्यापक अर्थ मे 'अपभ्रष्ट' कहा गया है। भरतमुनि ने ऐसे शब्दो को 'विभ्रष्ट' सज्ञा दी है जो 'अपभ्रष्ट' की समानार्थी है? भरतमुनि के उल्लेख से इतना स्पष्ट हो जाता है कि उनके समय मे विभ्रष्ट शब्दावली से युक्त काव्य रचना भी होने लगी थी।[2]

भामह सबसे प्राचीन व्यक्ति हैं जिन्होने अपभ्र श का साहित्यिक भाषा के रूप मे स्पष्ट उल्लेख किया है।[3] भामह के उल्लेख में, 'अपभ्रष्ट' शब्द मे जो अनादर की भावना प्रतीत होती है, वह नही मिलती। अपभ्र श भाषा के स्वरूप की भामह ने व्याख्या नही की है। दडी ने पतजलि और भामह दोनो के मतो का समावेश कर दिया है। अपभ्र श को वाङ्मय की एक भाषा बताते हुए उन्होने

---

१. भूयासोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः, तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशः, महाभाष्य, निर्णयसागर संस्करण, १९३८ ई०, पृ० ३१।

२. दे० नाट्यशास्त्र, गायकवाड्स ओरिएंटल सिरीज बड़ौदा, भाग २, अध्याय १७.३।

३. संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा, काव्यालंकार, चौखम्बा संस्करण, काशी, १९८५ वि०, १.१६ तथा १.२८।

कहा है कि काव्य मे आभीरादि की भापा अपभ्र श है और शास्त्रानुसार सस्कृत के अतिरिक्त सभी भापाएँ अपभ्र श हैं।[१] दडी का अपभ्र श के साथ आभीरो के सबध का उल्लेख महत्वपूर्ण है। भरत ने आभीरो की बोली को एक विभापा माना है।[२] पाणिनि ने 'विभापा' का प्रयोग बोली के अर्थ मे किया है।[३] दडी द्वारा उल्लिखित 'आसारबन्ध'[४] अपभ्र श काव्य तो उपलब्ध नही हुए किन्तु इससे यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उनके समय के बहुत पहले से ही अपभ्र श मे साहित्य रचना होने लगी थी। अपभ्रंश भापा के स्वरूप, उसके भेदो आदि के सबध मे दडी भी मौन हैं। काव्यालकार के रचयिता रुद्रट और टीकाकार नमिसाधु (१०६९ ई०) ने अपभ्र श के सबध मे कुछ अधिक विस्तृत उल्लेख किए हैं। देशभेदो के अनुसार रुद्रट ने अपभ्र श के अनेक भेद होने का सकेत किया है। टीकाकार ने उपनागर, आभीर, और ग्राम्यत्व तीन भेदो का उल्लेख किया है। विशेप लक्षणो के लिए अपने समय के समाज की ओर सकेत किया है। नमिसाधु के उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि वे अपभ्र श को प्राकृतो से बहुत भिन्न नही मानते थे,[५] प्राकृत को ही अपभ्र श समझते थे। लोक की बोली मे अपभ्र श के लक्षण देखने का उल्लेख भी महत्व का है। राजशेखर (८८०-९२० ई०) ने अपनी कृतियो मे अपभ्र श के सबध मे जो उल्लेख किए हैं उनसे प्रकट होता है कि उनके समय मे अपभ्र श पतित न समझी जाकर राजसभाओ तथा विद्वत्परिपदो मे भी आदर पाने लगी थी।[६] अनेक बार राजशेखर ने अपभ्र श की प्रशसा की है और बाल रामायण मे अपभ्र श काव्य को 'सुभव्य' कहा है।[७] उन्होने अपभ्र श के भेदादि का उल्लेख नही किया है किन्तु सकल, मरु, टक्क, और भादानकवासी लोगो द्वारा अपभ्र श के बोले जाने का उल्लेख किया है।[८]

---

१. काव्यादर्श भंडा० ओ० रि० इं० पूना १९३८, १.३२, १.३६-३७।
२. नाट्य० १७.५०, बड़ौदा १९३४।
३. अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रो में 'विभाषा' शब्द का प्रयोग हुआ है।
४. काव्यादर्श १.३७।
५. २.१२ तथा टीका, निर्णयसागर, १९२८ ई०।
६. काव्यमीमांसा, बड़ौदा, १९३४ ई०, पृ० ६, १९, ३३, ४८, ५०, ५४-५ पर अपभ्रंश के सबंध मे उल्लेख हैं।
७. बालरामायण १.१०। जिनमे अपभ्रंश को काव्य पुरुष की 'जघन' कहा है तथा राजसभाओं में अपभ्र श के स्थान के संबंध मे उल्लेख है।
८. का० मी० : सापभ्रंशप्रयोगा : सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च, पृ० ५१।

आनन्दवर्धन, मम्मट, भोज, वाग्भट,[1] विष्णुधर्मोत्तर के रचयिता,[2] रामचन्द्र, गुणचन्द्र,[3] जिनदत्त, अमरचन्द्र[4] तथा अनेक कवियो और प्राचीन लेखकों[5] ने अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा के रूप मे उल्लेख किया है और उसमे देशभेदो के अनुसार अन्तर होने के भी संकेत किए है। भोज ने एक विशेष सूचना यह दी है कि अपभ्रंश से गुर्जर तुष्ट होते हैं[6]। हेमचद्र ने अपभ्रंश का विस्तृत व्याकरण लिखा है और अपभ्रंश के छदो का भी विवेचन किया है। अपनी कृति काव्यानुशासन मे अपभ्रंश काव्यग्रन्थो के भी नामोल्लेख किए है।[7] अपने व्याकरण मे हेमचद्र ने अपभ्रंश के भेदो का उल्लेख नही किया है किन्तु उन्होने अनेक वैकल्पिक रूपो को स्वीकार किया है।[8] जिससे प्रतीत होता है कि सामान्य ढग से अपभ्रंश के सभी भेदो का उन्होने विवेचन किया है। काव्यानुशासन मे अपभ्रंश के साथ ग्राम्य अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है, किन्तु उसके लक्षण नही दिये। शारदातनय ने अपभ्रंश तथा उससे उत्पन्न भाषाओ को नाट्योपयोगी भाषा माना है। विशेष व्यवहार के अनुसार नागरक, उपनागरक और ग्राम्य तीन भेदो का उल्लेख किया है।[9] विक्रमोर्वशीय मे प्राप्त विवादग्रस्त अपभ्रंश पद्यो के अतिरिक्त किसी भी नाट्य कृति मे अपभ्रंश का प्रयोग नहीं मिलता। सभव है, शारदातनय

---

१. वाग्भटालंकार : अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम् २.३।
२. अप० काव्यत्रयी, भूमिका, पृ० ९६।
३. देशस्य कुरु मगधादेरुद्देशः प्रकृतत्वं तस्मिन् सति स्वस्वदेशसम्बन्धिनी भाषा निबन्धनीयेति। नाट्यदर्पण, प्रथम भाग, बड़ौदा, १९२९ ई०, पृ० २०९।
४ दे० अप० का० त्र० भूमिका, पृ० १००, तथा ग० वा० तगारे: हिस्टॉरिकल ग्रेमर अव् अपभ्रंश, भूमिका, पृ० ३, पूना, १९४८।
५. वही, भूमिका पृ० ९६-९७।
६. अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः सर० कंठाभरण, पृ० १२२-२३, निर्णय० १९२५ ई०।
७. काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ३९५ तथा ४०५। काव्यमाला, निर्णय सागर, १९३४ ई०।
८. यथा-सिद्धहेम के आठवें अध्याय के चतुर्थ पाद के सूत्र ३४१, ३६०, ३७२, ३९१, आदि में निर्धारित नियम उसी के दूसरे नियमो से मेल नहीं खाते।
९. भावप्रकाशनं, बड़ौदा १९३०, अपभ्रंशात्तथा भाषा सप्तमीमपरे विदुः एता नागरकग्राम्योपनागरक भेदत', पृ० ३१० दशमोधिकारः।

के सम्मुख कुछ ऐसी कृतियाँ होगी जिनमे अपभ्र श का प्रयोग हुआ होगा, अथवा उन्होंने किसी परपरा से प्रचलित मत को सग्रह कर दिया होगा।

हेमचद्र को अपभ्र श काव्य की अतिम सीमा माना जा सकता है। यद्यपि उनके पश्चात् भी अपभ्र श मे कृतियो की रचना होती रही किन्तु कदाचित् व्याकरण के अध्ययन द्वारा। अपभ्र श के सबध मे जो उल्लेख विश्वनाथ आदि पीछे के काव्य समीक्षको ने किए है उनसे ज्ञात होता है कि अपभ्र श की स्वाभाविक धारा विस्मृत हो चुकी थी तथा उसके काव्यरूपो पर सस्कृत का प्रभाव पडने लगा था।[1]

उपर्युक्त उल्लेखो से अपभ्र श के सबध मे निम्न निष्कर्ष निकलते है—

१ पतजलि और भरत के समय तक अपभ्र श का कोई निश्चित स्वरूप नही था। सस्कृत-साधु शब्दो के अतिरिक्त सभी शब्दो को पडितवर्ग विकृत, अपभ्रष्ट, अपभ्र श, विभ्रष्ट या अपशब्द कहता था। इस प्रकार के रूपो को सस्कृत पडित सम्मान की दृष्टि से नही देखते थे। कदाचित् अपभ्र श या अपभ्रष्ट (घृणित, पतित) नाम से भी यही ध्वनि निकलती है।

२ धीरे धीरे इन विभ्रष्ट शब्दो का प्रयोग काव्यो मे भी होने लगा। भामह और दडी (ई० छठी शती का प्रारभ) के समय तक अपभ्रंश मे काव्य रचना होने लगी थी। सस्कृत, प्राकृत के साथ अपभ्र श को काव्य की भाषा के रूप मे मान्यता मिलने लगी थी।

३ आगे, जैसा राजशेखर ने सूचित किया है, अपभ्र श का विद्वन्मडलियो, राजसभाओ मे सम्मान होने लगा था। काव्य की भाषाओ मे अपभ्र श का सम्मान के साथ उल्लेख किया जाने लगा था।

४ आभीर और गुर्जरो से कभी अपभ्र श का सबध रहा होगा और इस अनुश्रुति का बहुत दिनो तक साहित्यिको को स्मरण बना रहा।

५ अपभ्र श के देशानुसार अनेक उपभेद थे। कुछ भेदो मे साहित्य रचना भी होती थी।

उपर्युक्त निष्कर्षों मे से कुछ अस्पष्ट है, जैसे अपभ्र श और आभीर गुर्जरो का सबध तथा अपभ्र श के विभिन्न भेद। इन प्रश्नो पर किंचित् विस्तार से विचार करना उपयुक्त होगा।

---

१. विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे अपभ्रंश महाकाव्यो को 'सर्गबद्ध' बताया है। अपभ्रंश काव्यो का सर्गों मे विभाजन निश्चित ही कृत्रिम और सस्कृत से प्रभावित प्रतीत होता है। वही ६.३२७, निर्णयसागर, १९३६ई०।

आभीर-गुर्जर और अपभ्रंश :

महाभारत,[१] महाभाष्य,[२] कामसूत्र,[३] वायुपुराण,[४] विष्णु पुराण,[५] पउम चरिय,[६] वृहत्सहिता[७], नासिक तथा प्रयाग के शिलालेखो मे आभीरो के उल्लेख मिलते है। उन्हे यवन, म्लेच्छ, दस्यु बताया गया है। वे बडे पराक्रमी थे। उन्होंने अपने पराक्रम से राज्य स्थापित कर लिये थे।[८] अमरकोष मे आभीर शब्द को गोप, गोपाल, गोसख्य, गोधुक् और वल्लव का पर्यायवाची कहा गया है और आभीरी को महाशूद्री एव शूद्रो की भार्या कहा है,[९] एक अन्य स्थल पर गोपालों के ग्राम के लिए 'घोष-आभीर पल्ली' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे आए हुए आभीरों के उल्लेखो से अनुमान किया जा सकता है कि ईस्वी सन् के पूर्व की शतियो या प्रारभ की शतियो मे यह बाहर से आए थे। भिन्न कुल (शक-आभीरगुर्जरकुल) के होने के कारण ही कदाचित् उन्हे म्लेच्छ, वर्णसकर सिद्ध करने का प्रयास किया है।[१०] इनका प्रधान केन्द्र पश्चिम प्रदेश, मयुरादि

---

१. महाभारत मे आभीरो को पारदों की श्रेणी का, वृषल और पापकर्म में रत, लोभोपहृत कहा गया है।
देο सभापर्व ५१.११, आश्वमेधिक पर्व ९९.१५-१६, मौसल पर्व ७.४७ तथा ८.१६।

२. महाभाष्य मे उनको शूद्रों की एक जाति कहा गया है—शूद्राभीरं, महा० १.२.७२।

३. एक आभीर राजा का उल्लेख हुआ है, कामसूत्र ५.५ ३०।

४. वायुपुराण मे यवनादि के साथ आभीरों का उल्लेख हुआ है, भाग २, अध्याय ३७.३५२।

५. आभीर अर्जुन को लूटते हैं, विष्णुपुराण, खंड ५, अध्याय ३८.१४-१५ आदि।

६. आभीर देश का उल्लेख हुआ है, ९८.४६।

७. वृहत्सहिता १४.१२, १८।

८. एपिग्राफिका इंडिका भाग ८, पृष्ठ ८८, तथा आर्केआलाजिकल सर्वे, वेस्ट इंडिया ४.१०३. तथा कोरपुस इस्क्रि० इंडीकेरम भाग ३, पृ० ८। आभीर सेनापति रुद्रभूति का शिलालेख १८१ ई० का है, एपिग्रेफिका इडिका, भाग १६, पृ० २३३ तथा आगे।

९. अमरकोष १८२१, ११००, ६३३ निर्णयसागर, १९४०।

१०. मनुस्मृति में आभीरो को अम्बष्ठ कन्या से उत्पन्न कहा गया है, १०.१५।

रहे हैं, पशुचारण इस जाति का प्रधान जीविका का साधन रहा है। आभीर जाति की प्रधानता के ही कारण उनकी भाषा की ओर भी कदाचित् ध्यान गया होगा। भरत ने आभीरो की बोली को विभाषा कहा है।[1] भरत ने हिमवत्, सिन्धु, सौवीर आदि पश्चिमी प्रदेशों की भाषा को उकार बहुला बताया है,[2] और आभीरो का क्षेत्र पश्चिम के प्रान्त ही रहे हैं अत आभीरो का सबध उकार बहुला बोली से स्थापित किया जा सकता है और अपभ्र श की एक प्रधान विशेषता उकारबहुलता होना भी है। अमरकोष मे आभीरो के पर्यायवाची ऐसे शब्द हैं जिनसे उनके गोचारक होने का सकेत मिलता है, पतजलि ने जिन शब्दो को अपशब्द कहकर उद्धृत किया है वे भी गोचारक जातियो द्वारा व्यवहृत शब्द ही है, ऐसा लगता है कि प्रबल आभीर जाति द्वारा व्यवहृत शब्द ही वे अपभ्र श शब्द है। आभीरो ने सस्कृत या आर्यभाषा का अपने ढग से प्रयोग करके एक नया रूप दिया और पडित-वर्ग ने उसे पतित कहकर अपभ्र श नाम दिया। दडी ने सभवत इसी परपरा का उल्लेख करते हुए आभीरादि की गिरा को अपभ्र श बताया है। आभीर के साथ 'आदि' पदाश का अर्थ टीकाकारो ने गुर्जरादि किया है।[3] और भोज ने भी जो अपभ्र श से गुर्जरो के तुष्ट होने की बात कही है वह निश्चय ही किसी प्राचीन परपरा के आधार पर ही कही होगी।[4]

आभीरो के समान गुर्जर भी घुमक्कड शक कुल की एक जाति है। आभीर, गुर्जर, जाट आदि सभी एक कुल की जातियाँ है। पशुपालन, कृषि करनेवाली इन जातियो का सिंधु देश से मथुरा तक आधिपत्य रहा। इतिहास मे गुर्जरो का प्राचीनतम उल्लेख ईस्वी की छठी शती मे मिलता है जब कि हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन ने उनके विरुद्ध युद्ध किया था। इस प्रबल जाति ने कई राज्य भी स्थापित कर लिए थे। आभीर-गुर्जर कुल से अपभ्रंश के सबध के उल्लेख बड़े ही ऐतिहासिक, अर्थगर्भित और व्यंजक प्रतीत होते हैं। पश्चिम, उत्तर भारत मे फैली हुई ये जातियाँ सस्कृतीय भाषाओ का उच्चारण अपने ढग से करती होगी। लोक मे प्रचलित व्याकरणादि पर भी उनके प्रयोगो का प्रभाव पडा होगा। पडित वर्ग को यह उच्चारण, व्याकरण स्वातन्त्र्य सभी खटकते होंगे और दूसरे कुल के होने के कारण और भी अधिक, इसी कारण आभीर गुर्जरो की भाषा

१,२. ना० शा० १७.५०, ६२।

३. काव्यादर्श : तरुणवाचस्पति की टीका, बिब्लियोथेका संस्करण।

४. सर० कं० २.१३।

को अपभ्रंश नाम दिया होगा। आभीर-गुर्जर अपभ्रंश मे काव्य रचना भी करते होगे और वह सरस तथा अपने ढग का मौलिक साहित्य रहा होगा इसी से अपभ्रंश को साहित्यिक भाषाओ मे स्थान मिल गया।

अपभ्रंश के भेद :

कुछ साहित्यशास्त्र रचयिताओ ने देश विशेष के अनुसार अपभ्रंश के अनेक भेद होने की बात कही है।[1] कुछ ने नागर, उपनागर, आभीर तथा ग्राम्य भेद गिनाए है।[2] इन कृतिकारो ने परपरा के किसी अनुरोध से अपभ्रंश के भेदो का उल्लेख मात्र किया है, उनके विस्तार, क्षेत्र, लक्षण आदि का कोई उल्लेख नही किया है। कुछ प्राकृत वैयाकरणो ने भी कही कही अपभ्रंश का विवेचन करते समय भेदो की चर्चा की है।

पश्चिमी सम्प्रदाय के सबसे प्राचीन वैयाकरण हेमचन्द्र है[3] जिनकी व्याकरण कृति प्राप्त है। सिद्धहेमशब्दानुशासन के आठवें अध्याय के चतुर्थ चरण (सूत्र ३२९-४४६) मे हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का विवेचन किया है। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के भेदो का उल्लेख नही किया है किन्तु हेमचन्द्र के व्याकरण मे विवेचित अपभ्रंश एक ही प्रकार की नही है। सामान्य रूप से अपभ्रंश मात्र का उन्होने विवेचन किया है, इसी कारण अनेक वैकल्पिक नियमो का उल्लेख किया है जो परस्पर विरोधी हैं।[4] उनके नियमो से प्रतीत होता है कि वे प्राकृत (महाराष्ट्री) और शौरसेनी अपभ्रंश के दो आधार मानते थे।[5] हेमचन्द्र के पूर्ववर्ती चड (चौथी शती ई०) ने केवल एक सूत्र मे अपभ्रंश की चर्चा की है।[6] सिंहराज (१३-१५वी

---

१. भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः : काव्यालंकार, २.१२ ।

२. दे० पीछे शारदातनय का मत, साहित्यदर्पण पृ० ४८४, निर्णयसागर १९३६ ई०।

३. डॉ० ग्रियर्सन प्राकृत वैयाकरणों को पूर्वी और पश्चिमी दो वर्गों मे विभक्त करते हैं और उनके मत का समर्थन याकोबी, वैद्य, आदि ने किया है। वाल्मीकि सूत्र बहुत पीछे के हैं। दे० वाल्मीकिसूत्र, ए मिथ, डा० उपाध्ये, भारतीय विद्या, भाग २, खंड २, पृ० १६०-१७६ ।

४. यथा रेफादि के संबंध में उनके नियम द्रष्टव्य हैं। सिद्ध हैम० ८.४, ३९८, ३९९ ।

५. जैसा कि सूत्र ८.४.३२९ की इस वृत्ति से प्रकट होता है—प्रायोग्रहणाद्यस्यापभ्रंशे विशेषो वक्ष्यते तस्यापि क्वचित्प्राकृतवत् शौरसेनीवच्च कार्यं भवति, तथा सूत्र ३९६ तथा ४४५ द्रष्टव्य ।

६. न लोपोऽपभ्रंशेऽधोरेफस्य ३.४१, प्राकृत लक्षण, कलकत्ता १९२३ ई० ।

शती ई०) ने भी एक सूत्र मे 'शौरसेनीवत्' कहकर अपभ्रंश की चर्चा की है।[1] लक्ष्मीधर (१६ वी शती ई०) ने हेमचन्द्र को आधार मानकर अपभ्रंश को प्राकृत का छठवाँ भेद कहकर व्याख्या की है[2] पश्चिमी वर्ग के वैयाकरणो ने प्रायः शौरसेनी को अपभ्रंश का आधार माना है। इस आधार पर कि आभीरो का पश्चिम प्रदेश मे ही आधिपत्य रहा है। आभीरी को पश्चिमी अपभ्रंश, जिसका आधार शौरसेनी है, का पर्यायवाची माना जा सकता है। पश्चिमी वर्ग के वैयाकरणो ने अपभ्रंश के भेदो का उल्लेख नही किया है।

पूर्वीय वर्ग के प्राचीनतम वैयाकरण वररुचि ने अपभ्रंश का कही उल्लेख नही किया है। क्रमदीश्वर (ई० सन् १३ वी शती के पश्चात्) ने छदो के आधार पर अपभ्रंश के भेदो की मनोरंजक व्याख्या की है। उन्होंने व्राचट (व्राचड) को रेफयुक्त उच्चारण वाला बताया है और दोहादि की रचना उसमे होने का उल्लेख किया है, रासकादि मे नागर का प्रयोग होता है। प्राकृत मिश्र गाथादि मे उपनागर के व्यवहृत होने की सूचना दी है। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण मे केवल दोहा छदो को ही उद्धृत किया है, अत क्रमदीश्वर के अनुसार उन्हे व्राचट अपभ्रंश माना जा सकता है। क्रमदीश्वर ने इन भेदो के प्रयोग होने वाले प्रान्तो का उल्लेख नही किया है और छदो के उल्लेख से अनुमित किया जा सकता है कि केवल साहित्यिक अपभ्रंश का ही उन्होंने विवेचन किया है। उनके अनुसार व्राचट और नागर अपभ्रंश के प्रयोग का क्षेत्र पश्चिमी प्रदेश होना चाहिए क्योकि दोहा और रासक छदबद्ध रचनाएँ प्राय पश्चिम प्रदेशो मे ही प्रिय रही हैं।[3]

पुरुषोत्तमदेव[4] (१२वी शती ई०) ने नागरक, व्राचट और उपनागरक अप-

---

१. प्राकृतरूपावतार, रा० ए० सो० १९०९ ई०।

२. षड्भाषाचन्द्रिका : के० पी० त्रिवेदी द्वारा संपादित, बंबई।

३. हेमचंद्र ने अपने व्याकरण मे दोहे ही उद्धृत किए हैं। 'रासक' नामक अनेक रचनाएं पश्चिम में रची गईं। पूर्वीय प्रदेशो में 'रासक' नामक कोई रचना नहीं मिलती। संभव है ये रचनाएं पहिले 'रासक' छंद मे ही रची जाती हो। कुछ रचनाएं एकही प्रकार के छद में रची गई हैं। दे० भविसयत्त कहा (याकोबी) भूमिका, पृ० ७१। भोज ने सरस्वती० मे अपभ्रंश को वस्तुबंध कहा है, पृ० १२५, काव्यमाला १९२५ ई०।

४. एल० नीत्ती दोलची द्वारा संपादित 'ल प्राकृतानुशासन द पुरुषोत्तम', पारी, १९३८ ई० तथा ए ग्रेमर अव् द प्राकृत लैंग्वेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय १९४३ ई०, पृ० १०६ और आगे।

-भ्रंश भेदो की चर्चा की है और नागरक को प्रधान अपभ्रंश माना है। व्राचट को र, ऋ से युक्त होना बताया है तथा उपनागरक के नागरक तथा व्राचट दोनों के साकर्य से बनने का उल्लेख किया है। इन तीन प्रधान भेदो के अतिरिक्त पाचोलादि देशो के नामानुसार पाचाल, वैदर्भी, लाटी, औड्री, कैकेयी, गौडी, ढक्क, बक्कर, कुन्तल, पाड्य, सिंहलादि की भाषाओ के नाम दिए है किन्तु लक्षण नही दिए हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रधान अपभ्रंशो के प्रदेशो का उल्लेख नही किया है और अपभ्रंश को पुरुषोत्तम ने शिष्टो की भाषा कहा है।[1]

रामशर्मतर्कवागीश (१६वी शती ई०) ने प्राकृतकल्पतरु[2] मे २७ प्रकार की अपभ्रंशो के नाम दिए है और सक्षेप मे उनकी विशेषताओ का भी विवेचन किया है। मार्कण्डेय[3] (१७ वी शती ई०) ने नागर, उपनागर और व्राचट को प्रधान मानते हुए अनेक सूक्ष्म भेदो के होने का सकेत किया है और २७ भेदो के नाम दिए हैं। उन्होने नागर अपभ्रंश को मूल माना है,[4] व्राचट का नागर से सिद्ध होना कहते हुए उसे सिन्धु देश की भाषा कहा है[5] और टक्की, मालवी, पाचाली, वैदर्भी आदि को भी व्राचट के अन्तर्गत बताया है। तर्कवागीश और मार्कंडेय ने, सभव है, किसी प्राचीन आधार का सहारा लिया हो किन्तु उसका उन्होने उल्लेख नही किया।

वैयाकरणो द्वारा किए गए अपभ्रंश के विवेचन से प्रतीत होता है कि पश्चिमीय वैयाकरण भेदो का उल्लेख नही करते। हेमचन्द्र ने ग्राम्य का उल्लेख मात्र किया है, किन्तु पूर्वीय वैयाकरणो ने ग्राम्य का कोई सकेत नही किया है। क्रमदीश्वर द्वारा कथित भेदो के लक्षण हेम व्याकरण मे भी मिल जाते हैं। उनके तीन भेदो का हेमचद्र द्वारा विवेचित अपभ्रंश मे समाविष्ट किया जा सकता है, रेफ से युक्त होना भी हेम चद्र ने अपभ्रंश का लक्षण माना है अत हेमचद्र की अपभ्रंश को व्राचट कह सकते है। उपनागर के प्राकृत मिश्र होने का लक्षण हेमचद्र के 'शौरसेनीवत्' (४४४६) मे देखा जा सकता है। क्रमदीश्वर ने व्राचट को प्रधान अपभ्रंश माना है। बहुसख्यक वैयाकरण व्राचट को पश्चिम विशेषकर सिन्धु देश

---

१. "शेषं शिष्टप्रयोगात्," ९० प्राकृतानुशासन।
२. इंडियन एन्टीक्वेरी, भाग ५१, ५२ में ग्रियर्सन द्वारा संपादित।
३. दे० प्राकृत सर्वस्व।
४. अपभ्रंशभाषासुमूलत्वेन प्रथमं नागरमाह, वही।
५. व्राचडो नागरात्सिद्धयेत तथा सिन्धुदेशोद्भवो व्राचडोपभ्रंशः, वही।

की अपभ्रंश मानते है। व्राचट शब्द के संबध मे विद्वानो ने कई प्रकार के अनुमान लगाए है। याकोवी व्राचड के ड को स्वार्थ प्रत्यय मानते हुए व्राच को व्रज का परिवर्तित रूप वताते है और व्रच्च का व्राच को सस्कृताऊ रूप वताते है। व्रज का अर्थ गोप[१] है। लासेन व्राच को व्रात्य[२] का रूपान्तर वताते है[३] और ग्रियर्सन भी इसी से सहमत है।[४] इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है—आभीरो को भी व्रात्य (जातिच्युत) कहा है अत व्रात्य और आभीर एक ही हो सकते है। इन दोनो की भाषाएँ एक ही रही होगी। सभी ने इनकी भाषा को रेफ युक्त वताया है और उसको पश्चिमी प्रदेशो की भाषा भी कहा है। अत व्राचट और आभीरी एक ही भाषा हो सकती है। दडी ने आभीरो की वोली को प्रधानता दी है। आभीरो(=व्रात्यो) के प्रभावशाली होने के कारण व्राचड को प्रधानता मिली और उसमे साहित्य की भी रचना हुई होगी, इससे साहित्य रसिको का उधर ध्यान गया।

नागरक, उपनागरक और ग्राम्य अपभ्रशो के लिए किसी वैयाकरण ने देश विशेष मे प्रयुक्त होने की सूचना नही दी है। सस्कृत काव्य विवेचको ने वृत्तियो के नाम भी कही कही इसी प्रकार के दिए है। सभव है नागर, उपनागर और ग्राम्य विभिन्न श्रेणियो के व्यक्तियो की वोलियो के लिए प्रयुक्त हुए हो। नगर के निवासी या शिष्टजनो की वोली को नागर, नगर की सीमा के लोगो की वोली को उपनागर और सरल ग्रामीणो की वोली को ग्राम्य कहा गया होगा, और फिर पीछे यह प्रयोग रूढि हो गए होगें। क्रमदीश्वर ने नागर और रासक छद का सवंध वताया है। रास या रासक एक प्रकार का लोक-गीत या ग्राम्य नृत्यनाट्य है, नाट्य शास्त्र मे उपरूपक के एक भेद का नाम रासक मिलता है।[५] अभी तक रासक रचनाएँ अपभ्रंश या देशभाषाओ मे ही मिली हैं सभव है इन साहित्यिक कृतियो के आधार पर ही नागर का रासक से सवध जुड गया हो किन्तु यह अधिक संगत प्रतीत नही होता। याकोवी ने नागर को गुर्जर अपभ्रंश कहा है और भविष्यदत्तकथा तथा नेमिनाथचरित की भाषा को गुर्जर अपभ्रंश कहा है।[६] इस प्रकार

१. दे० कामसूत्र, व्रजयोषित. गोपी, पृ० १८४, चौखंभा संस्करण।
२. मनुस्मृति २.३९, व्रात्य=जातिच्युत।
३. भविसयत्त कहा, याकोवी का संस्करण, भूमिका पृ० ७३।
४. आन दमाडर्न इडो एरियन वर्नाक्युलर्स, पृ० ३६।
५. दे० भावप्रकाशनम् वड़ौदा १९३० पृ० २६५।
६. भविसयत्त कहा, भूमिका पृ० ७८, याकोवी संस्करण।

नागर और व्राचड दोनो ही पश्चिमीय प्रदेश की भाषाएँ सिद्ध होती है। उपनागर सापेक्ष शब्द है और सभवत नागर से अतर प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुआ होगा। जो हो उपर्युक्त तीनो नाम पश्चिमीय अपभ्रंश के लिए प्रयुक्त हुए प्रतीत होते हैं।

अपभ्रंश के लिए अपभ्रंश के कवियो ने अन्य नामो का भी प्रयोग किया है। अवहस (अपभ्रंश),[1] अवहट्ट (स० अपभ्रष्ट),[2] प्राकृत,[3] पटमजरी, प्रथम मंजरी या पढमजरी[4] के अतिरिक्त कुछ कवियो ने अपनी काव्य भाषा को देश भाषा या देसिलवयना (देशी वचन),[5] कहा है। इनमे से प्राकृत और पढमजरी नाम भ्रम के कारण दिए गए प्रतीत होते है। पट मजरी एक राग का नाम है[6] और किसी प्रकार की छदबद्ध कविता के उसमे गाए जाने के कारण भ्रमवश पट-मजरी उसकी भाषा मान ली गई होगी। देशी और अपभ्रंश नाम पर्यायवाची नही है। इनका किंचित् विस्तार के साथ विवेचन अप्रासगिक न होगा।

अपभ्रंश और देशी :

भरत ने सर्वप्रथम कदाचित् 'देशभाषा' शब्द का प्रयोग किया है। विभिन्न देशो (प्रान्तो) की बोलियो को उन्होने देशभाषा कहा है।[7] तरगवती के सक्षिप्त-कर्ता ने बताया है कि देशी वचनो की बहुलता के कारण कृति को सब लोग नही

---

१. स्वयभू ने अपनी कृति स्वयंभू छंद में अवहस का अनेक बार उल्लेख किया है, ४.७, ४ १०, ४.३४ आदि। दे० जर्नल अव द् यूनीवर्सिटी अव् वाम्बे, नवबर १९३६, पृ० ७२ और आगे। तथा अप. का. त्रयी भूमिका, पृ० ९७ पर उद्योतनाचार्य के ग्रथ के उद्धरण द्रष्टव्य।

२. विद्यापति ने कीर्तिलता में 'अवहट्ट' का प्रयोग किया है, तथा प्राकृत पैंगलं, पृ०३, कलकत्ता १९००।

३. बौद्धगान के सस्कृत टीकाकार ने मूल पद्यो की भाषा को प्राकृत कहा है।

४. चर्चरी के टीकाकार ने चर्चरी की भाषा को 'प्रथममजरी' कहा है, चर्चरी प्रारंभ, पृ० १।

५. यथा, स्वयंभू ने अपभ्रंश को देशी भाषा कहा है, पउम चरिउ—सक्कय पायय पुलिणालकिय। देसीभासा उभयतडुज्जल। पुष्पदन्त, विद्यापति आदि ने भी इसी प्रकार के उल्लेख किए हैं।

६. बौद्धसिद्धो के कुछ पद्यो का शीर्षक पटमंजरी राग है, दे० आगे सिद्धो का अपभ्रंश साहित्य।

७. ना० शा० १७.४८।

समझ सकते थे, देशी वचनो से तात्पर्य अप्रचलित शब्दो से प्रतीत होता है[१] अपभ्रंश से नही। कामसूत्र मे ६४ कलाओ में से 'देशभाषाविज्ञान' को एक कला माना है,[२] इसी प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र मे भी 'भाषान्तरज्ञ' का उल्लेख मिलता है। दोनो का ही तात्पर्य देश विशेष की बोली से है, अपभ्रंश से नही हो सकता। विक्रमांकदेवचरित मे 'जन्मभाषा'[३] तथा कुवलयमाला कथा(८३५ वि० सं०) मे परिगणित अठारह देशी भाषाओ के उल्लेख भी इसी प्रकार के है।[४] कथासरित्सागर,[५] बृहत्कथामंजरी,[६] कविकंठाभरण[७] आदि मे भी देशभाषा तथा देशभाषा काव्य के उल्लेख मिलते है। इस प्रकार अत्यंत प्राचीन समय से प्रदेश विशेष की बोलियो के लिए देशभाषा शब्द का प्रयोग मिलता है, देशभाषा से उनका तात्पर्य अपभ्रंश कदापि नही था। इन उल्लेखो के अतिरिक्त अपभ्रंश के कवियो ने अपभ्रंश को देशभाषा (=लोक मे व्यवहृत भाषा) कहा है, लेकिन उससे उनका तात्पर्य किसी प्रान्त विशेष की भाषा से नही है। मध्ययुग मे जिस प्रकार कवि अपनी भाषा को 'भाषा' कहते थे[८] उसी प्रकार उन अपभ्रंश कवियो ने अपनी भाषा को देशी भाषा कहा है। क्षेमेन्द्र ने देशोपदेश मे कुछ देशी शब्दो के प्रयोग किए हैं और वे अपभ्रंश के शब्द नही हैं, विशेष प्रदेशो मे प्रयुक्त होने वाले अप्रचलित शब्द है।[९] हेमचद्र ने भी देशी शब्द का लक्षण 'विशेष अर्थ मे प्रचलित, संस्कृत शब्द से न सिद्ध होने वाला' दिया है, जो अपभ्रंश शब्दो—संस्कृत के साधु

---

१. सनत्कुमार चरित, भूमिका, पृ० १८।

२. काम० १.३.१६, १.४.५० चौखम्भा, बनारस १९८६ वि०।

३. विक्रमांकदेवचरित १८.६।

४. अप० का० त्र० भूमिका, पृ० ९१-९३।

५. तरंग ७, १४८ निर्णयसागर १९०३ ई०।

६. बृहत्कथामंजरी १.३.५१ काव्यमाला, बंबई १९०१ ई०।

७. कविकंठा० पृ० १२३ काव्यमाला ४।

८. यथा, कबीर—संसकिरत है कूप जल भासा बहुता नीर।
   तुलसी—भाखा भणिति मोर मति थोरी।
   केशव—भाषा बोलि न जानहीं जिनके घर के दास। रामचंद्रिका।

९. देशोपदेश मे उन्होंने कहा है 'देशभाषापदैर्मित्रमघुनाक्रियते मया' पृ० २३, काश्मीर संस्कृत ग्रंथावलि, श्रीनगर, १९८० वि०, किन्तु देशी शब्द अपभ्रंश शब्द नहीं हैं।

शब्द रूपो के विकृत रूपो—तद्भवो—के लिए प्रयुक्त नही हो सकता।[1] इस सक्षिप्त विवेचन से स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि देशभाषाएँ अपभ्र श से भिन्न प्रान्तीय बोलियाँ थी और प्राचीन साहित्य मे—नाट्यशास्त्र, कामसूत्र, कौटिलीय अर्थशास्त्र इत्यादि—इसी अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अपभ्र श तथा हिन्दी के प्राचीन कवियो ने 'देशभाषा' शब्द का प्रयोग अपभ्र श या अपनी कविता की भाषा के लिए किया है।

अपभ्र श नाम वैयाकरणो का दिया हुआ है और प्रारभ मे निश्चय ही उसमे अनादर का भाव निहित रहा होगा किन्तु अपभ्र श के कवियो को इस नाम से कोई घृणा थी ऐसा प्रत्यक्ष उल्लेख नही मिलता। स्वयभू, राजशेखर, हेमचद्र, विद्यापति आदि ने अपभ्र श की प्रशसा की है। अधिक स्पष्ट करने के लिए अपनी भाषा को कुछ अपभ्र श कवियो ने देश भाषा भी कहा है। अपभ्र श काव्यभाषा के रूप मे छठवी शती विक्रम से ही प्रतिष्ठित हुई मिलती है जैसा कि भामह के उल्लेख से प्रकट होता है।[2] अपने अनेक रूपो के द्वारा किसी समय वह समस्त उत्तर आर्यावर्त की बोली थी और उसकी साहित्यिक भाषा के रूप मे भी प्रतिष्ठा थी। जन बोली से ऊपर उठकर अपभ्र श काव्यभाषा के रूप मे बँध गई और देशभाषा के सरल रूपो ने, जिन्हे परिवर्तनयुगीन रूप कहा जा सकता है, बोली के क्षेत्र मे उसका स्थान ले लिया। अपभ्र श कविता मे इन दोनो रूपो के दर्शन होते है। काव्यभाषा का रूप पुष्पदन्त जैसे कवियो की भाषा मे मिलता है और सरल रूप का आभास हेमचद्र द्वारा सकलित दोहो मे। आगे के पृष्ठो मे अपभ्र श साहित्य का प्रारभ से लेकर उसके उत्कर्ष और उसका स्थान आधुनिक आर्यभाषाओ के लेने तक अत्यन्त सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है जिससे आधुनिक भाषाओ पर उसके प्रभाव तथा उसकी व्यापकता का अनुमान स्पष्टतापूर्वक लग सकेगा। अपभ्र श की उत्पत्ति, विकास और अवसान का इतिहास उत्तरी भारत की आधुनिक भाषाओ के उदय के लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व का इतिहास है।

---

१. दे० देशीनाममाला १.३.४।

२ अपभ्रंश काव्य के प्रारंभकाल को प्राचीन सिद्ध करने के लिए विद्वानो ने प्राय. वलभी के राजा धरसेन द्वितीय के शक स० ४०० के दानपत्र का उल्लेख किया है। शिलालेख में धरसेन के पिता गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश प्रबन्ध रचना में निपुण कहा गया है। इ० ए० अक्टूबर १९८१ पृ० २८४। किन्तु यह शिलालेख जाली है,और ७वीं शती ई० का है, अतः विशेष महत्व का नहीं है। दे० इ० ए० अक्टूबर १८८१, पृ० २७७ आदि।

३

अपभ्रंश साहित्य का वर्गीकरण

प्राकृत धम्मपद के उकारान्त शब्दरूपो,[१] पउमचरिय (तीसरी शती ई०) मे प्राप्त होने वाले कुछ शब्दरूपो,[२] भरत द्वारा विवेचित उकार बहुला भाषा,[३] तथा ध्रुवागीतो मे अपभ्रंश का प्रारंभ देखा जा सकता है। बाण ने भाषा कवि ईशान का उल्लेख किया है।[४] वसुदेव हिंडी (छठी शती वि०) मे अपभ्रंश का प्रभाव मिलता है।[५] कालिदास की विक्रमोर्वशीय के विवादग्रस्त अपभ्रंश पद्य[६] भी अपभ्रंश के पर्याप्त प्राचीन प्रारंभ की सूचना देते है। विक्रम की आठवी शती के पहिले अपभ्रंश मे साहित्य रचा जाने लगा था। इसके निश्चित प्रमाण जिनदास महत्तर कृत नंदिसूत्र की चूर्णि (वि० स० ७३३), कुवलयमाला (वि० स० ८३५) मे प्राप्त अपभ्रंश पद्यो मे मिलते है। आगे शीलांक विरचित सूत्रकृतांगवृत्ति (१० वी शती वि०) मे भी अपभ्रंश के पद्य यही सिद्ध करते है। विक्रम की आठवी, नवी, दशवी शतियाँ अपभ्रंश साहित्य का उत्कर्ष युग कही जा सकती है। चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदन्त, योगीन्द्र तथा बौद्धसिद्ध इसी युग के प्रतिभाशाली कृतिकार है। साथ ही काव्य समीक्षात्मक कृतियो मे भी अपभ्रंश के उद्धरण मिलने लगते है। इस विशाल साहित्य की रचना विदर्भ, गुजरात, राजस्थान, मध्यदेश, मिथिला, मगध मे हुई। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ का विकास अपभ्रंश

---

१. दे० पीछे प्राकृत अध्याय ।
२. दे० परमात्मप्रकाश: भूमिका, पाद टिप्पणी पृ० ५६ ।
३. ना० शा० १७.६१ ।
४. हर्षचरित, निर्णयसागर, बंबई, १९३७, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४१ ।
५. वसुदेव हिंडि, प्रथम खड, पृ० २८, भावनगर, १९३० ई० ।
६. दे० परमात्मप्रकाश: भूमिका, पा० टि० पृ० ५६ ।

से हुआ है) अत प्रत्येक आ० भा० आर्य भाषा की पूर्ववर्ती अपभ्रंश का अस्तित्व रहा होगा किन्तु सभी भाषाओ का प्रतिनिधिस्वरूप अपभ्रंश साहित्य आज उपलब्ध नही है। सभव है सभी को साहित्यिक भाषा के पद पर पहुँचने का गौरव न मिला हो। शौरसेनी अपभ्रंश मे सबसे अधिक साहित्य मिलता है। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, तथा पश्चिम, पूर्व, दक्षिण और मध्यदेश सभी स्थानो के कवियो ने शौरसेनी अपभ्रंश मे साहित्य रचना की है। शौरसेनी अपभ्रंश ही सभवत साहित्यिक भाषा थी, इसी कारण पूर्व के विद्यापति, तथा सिद्धो ने भी उसमे रचना की। बहुत थोडी सी रचनाएँ मागधी अपभ्रंश से भी प्रभावित मिलती है। तथा कुछ काश्मीरी से प्रभावित प्राप्त हुई है। जिन प्रदेशो मे अपभ्रंश साहित्य की रचना हुई उनके आधार पर अपभ्रंश साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

पश्चिमी प्रदेश—(शौरसेनी—हिन्दी और गुजराती का प्रतिनिधित्व करने वाली) कालिदास की विक्रमोर्वशीय के अपभ्रंश पद्य, स्वयभू, योगीन्द्र, देवसेन, रामसिंह, धनपाल, नयनन्दि, भोज, धनजय, जिनदत्त, लक्ष्मणगणि, हरिभद्र, हेमचद्र, सोमप्रभ, अब्दुल रहमान, यशकीर्ति, रयधू, आदि कवि गुजरात, मध्यदेश की अपभ्रंश के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश—(महाराष्ट्री का क्षेत्र)—पुष्पदन्त और कनकामर ने आधुनिक मराठी बोली के समीपवर्ती प्रदेशो मे रहकर अपभ्रंश कृतियो की रचना की। इस कारण उनकी कृतियो मे मराठी के शब्द मिल सकते हैं।[1] यो इनकी भाषा शौरसेनी क्षेत्र के कवियो से मूलत भिन्न नही है।

पूर्वी प्रान्तो की अपभ्रंश—(मागध बोलियो का क्षेत्र—पूर्वी हिन्दी, मैथिली, बगला आदि)—दोहाकोष, चर्यापद, डाकार्णव तत्र तथा कीर्तिलता, कीर्तिपताका, प्राकृत पैंगल के कुछ पद्य तथा सेकोद्देश टीका आदि के बिखरे पद्यो की रचना पूर्वी प्रान्तो मे हुई। इसी कारण दोहाकोष, कीर्तिलता की भाषा यद्यपि शौरसेनी अपभ्रंश है तथापि मागधी के प्रयोग भी उसमे मिल जाते है।

उत्तरी प्रदेशो की अपभ्रंश—(पजाबी, काश्मीरी भाषाओ का क्षेत्र)—गोरखनाथ के कहे जाने वाले कुछ अपभ्रंश पद्य तथा काश्मीर शैवो की अपभ्रंश मिश्रित कृतियो की इस प्रान्त मे रचना हुई जो काश्मीरी से प्रभावित है।

---

१. पुष्पदन्त ने अपनी कृतियो की रचना मान्यखेट में की थी, दे० आगे पुष्पदन्त से संबंधित प्रकरण।

विभिन्न प्रदेशो मे रचित इस विशाल अपभ्र श साहित्य पर शौरसेनी अपभ्र श का वहुत प्रभाव पडा, समवत. वह काव्य की भापा के रूप मे प्रतिष्ठित थी।] सम्प्रदायो को ध्यान मे रखकर अपभ्र श साहित्य का विभाजन जैन, ब्राह्मण, बौद्ध और शैवो की अपभ्र शो मे किया जा सकता है। इनमे से जैन और ब्राह्मण सम्प्रदायो की रचनाओ मे साहित्यिकता मिलती है। वौद्ध तथा शैवो द्वारा रचित अपभ्र श रचनाओ मे साहित्यिक सरसता नही मिलती। सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का ही विवेचन उनमे मुख्य है। उपलब्ध अपभ्र श साहित्य मे सबसे अधिक साहित्य जैन सम्प्रदाय के अनुयायियो द्वारा रचित मिलता है। इस प्रचुर साहित्य का प्रधान स्वर धार्मिक है, उसका वाह्य रूप काव्यमय है। धर्म के साथ-साथ काव्य-रस, समाज और मानव जीवन का चित्रण, कथा का मनोरजकत्व सभी कुछ इसमे मिलता है। प्रदेशो के आधार पर किए गए वर्गीकरण और सम्प्रदायो के आधार पर किए गए वर्गीकरण मे विशेष अतर नही पडता। पश्चिम मध्यदेश, महाराष्ट्र प्रदेशो मे रचित जो अपभ्र श साहित्य मिलता है वह प्रधानत जैनो द्वारा रचित है। उत्तरी प्रदेशो की अपभ्र श शैवो की रचनाएँ है तथा वौद्ध सिद्धो ने पूर्व के प्रदेशो मे रहकर रचना की। भावधारा की दृष्टि से सम्प्रदायो के आधार पर किया गया विवेचन अधिक सगत लगता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से यही वर्गीकरण यहाँ अपनाया गया है। जैन अपभ्र श साहित्य प्राचीन भी है और प्रचुर मात्रा मे प्राप्त भी हुआ है अत पहिले उसी का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

४

जैन अपभ्रंश साहित्य

अपभ्र श भाषा और साहित्य का गभीर अध्ययन आगे और बढने पर अवश्य ही 'जैन प्राकृतों' के समान 'जैन अपभ्र श' की भी विशेषताएँ निश्चित की जा सकेंगी। भावधारा की दृष्टि से साधारणत समस्त जैन साहित्य को—चाहे वह सस्कृत मे हो, प्राकृतो मे हो, अपभ्र श मे या विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ मे—एक श्रेणी मे रखा जा सकता है। समस्त साहित्य मे एक विशिष्ट सम्प्रदायगत धार्मिक वातावरण मिलता है। जैन कवि की अपनी विवशताएँ थी, उसके सामने एक समाज रहा होगा और उसी को ध्यान मे रखकर रचना करने के कारण धार्मिकता ने ही कही कही प्रधान स्थान ले लिया है। विक्रम की आठवी शती से लेकर सोलहवी शती तक जैन कवियो द्वारा निर्मित अपभ्र श साहित्य की अविच्छिन्न धारा मिलती है। इस सुदीर्घ काल मे जो प्रचुर साहित्य रचा गया होगा उसका केवल एक अग इस समय प्रकाश मे आया है। जैसा कि आगे प्रसगानुसार सकेत किया गया है, धर्म और साहित्य का अद्भुत सफल मिश्रण जैन कवियो ने किया है। जिस समय जैन कवि काव्य रस की ओर झुकता है तो उसकी कृति सरस काव्य का रूप धारण कर लेती है और जब धर्मोपदेश का प्रसग आता है तो वह पद्यबद्ध धर्म उपदेशात्मक कृति बन जाती है जो कभी-कभी नीरस भी हो जाती है। इस उपदेश प्रधान साहित्य मे भी भारतीय जीवन के एक विशेष पक्ष के दर्शन होते हैं, और इस दृष्टि से वह महत्वपूर्ण हैं।

जैन अपभ्र श साहित्य मे भी प्राकृत के समान दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। एक प्रकार की विशालकाय वे रचनाएँ जो रामायण, महाभारत या पौराणिक ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन को आधार बना कर रची गई है। इन रचनाओ मे कथा, धर्म, साहित्य सब कुछ मिला हुआ मिलता है। इनमे से कुछ कृतियो मे आदि से अत तक एक कथा शृखला मिलती है और कुछ अनेक कथाओ का

सग्रह कही जा सकती है जैसे पुष्पदन्त का महापुराण। दूसरे प्रकार की इसी धार्मिक साहित्यिक शैली मे रचित छोटी-छोटी कृतियाँ है। धर्म और काव्य दोनो का इनमे भी सम्मिश्रण मिलता है।(इन कृतियो मे किसी एक ही व्यक्ति के चरित्र का चित्रण मिलता है, अत अधिक सुगठित है।)आकार के अतिरिक्त और कोई विशेष भेद इन दो प्रकार की कृतियो मे नही दिखता। दोनो ही प्रकार की रचनाओ मे प्रबन्धात्मकता मिलती है। इन प्रबन्धात्मक रचनाओ के अतिरिक्त किसी तीर्थ या व्रत को लेकर लिखी गई अनेक छोटी छोटी पद्यवद्ध कथाएँ भी मिलती है जिनमे जैन श्रावक के लिए सामान्य उपदेश दिये जाते है। इन उपदेशप्रधान खड काव्यो के अतिरिक्त जैन कवियो की कुछ ऐसी रचनाएँ भी मिलती है जिनमे रहस्यवादी भावधारा के दर्शन होते है। भारतीय रहस्यवादी साधना के इतिहास की दृष्टि से इन रचनाओ का महत्व बहुत अधिक है। जैन धर्म का परिचित धार्मिक वातावरण इन रहस्यवाद प्रधान कृतियो मे एक प्रकार से वहुत कम मिलता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पहिले जैन रहस्यवादी धारा का विवेचन किया जा रहा है, फिर खण्ड-काव्यात्मक का और उसके पश्चात् प्रबन्धात्मक रचनाओ का विवेचन किया गया है।

१ मुक्तक काव्य धारा

अ. रहस्यवादी धारा —

रहस्यवाद से सबधित जो कृतियाँ मिलती है वे सख्या मे कम है किन्तु वहुत ही महत्वपूर्ण है। योगीन्द्र, मुनि रामसिंह, सुप्रभाचार्य इस धारा के प्रमुख कवि है। निश्चित रूप से यह कवि जैन सम्प्रदाय से सबध रखते थे किन्तु इनके द्वारा प्रचारित साधना-पथ उदार और व्यापक है। अन्य रहस्यवादियो मे वह भिन्न नही है। वाह्य आचार, कर्मकाड, तीर्थव्रत, मूर्ति का बहिष्कार, देहरूपी देवालय मे ही ईश्वर की स्थिति वताना, तथा अपनी देह मे स्थित परमात्मा की अनुभूति पाकर परमसमाधि द्वारा सहजसुख प्राप्त करना इनकी साधना के मुख्य स्वर है। इन जैन मतो ने अत्यत सरल, आडवरहीन भाषा और शैली मे अपने साधना पथ तथा उपदेशो को प्रकट किया है। इस धारा के ज्ञात कवियो मे योगीन्द्र सवसे प्राचीन है।

योगीद्र : परमात्मप्रकाश और योगसार[1] दो कृतियाँ योगीन्द्र की प्राप्त हुई

१. डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा संपादित परमश्रुतप्रभावकमंडल बंबई से प्रकाशित १९९३ वि०, योगसार का एक दूसरा संस्करण ब्रह्मचारी सीतल प्रसाद

है। परमात्मप्रकाश दो महाधिकारो मे विभक्त है। यद्यपि विषय दोनो मे एक समान ही है। किसी भट्ट प्रभाकर शिष्य के ईश्वर, आत्मा, मोक्ष विषयक प्रश्नो का उत्तर देने के लिए योगीन्द्र ने कृति की रचना की है। परमात्मा को वे ज्ञान-मय, नित्य, निरजन रूप बताते है, योग, वेद, शास्त्रो से वह अनादि परमात्मा नही जाना जा सकता, वह निर्मल ध्यान का विषय है।[1] वह ब्रह्म देह मे निवास करता है किन्तु मन, इन्द्रियादि के व्यापारो से वह भिन्न है। समाधि द्वारा उस परमात्मा के अनुभव से पूर्वसचित कर्म नष्ट हो जाते है। वह समस्त जगत् मे व्याप्त है किन्तु उसे हरि-हर भी नही जानते। वह निर्लिप्त है।[2]

आत्मा के सबध मे योगीन्द्र ने कहा है कि आत्मा सर्वगत है, जड भी है, चरम शरीर प्रमाण भी है और शून्य भी है।[3] जीव और कर्म दोनो योगीन्द्र के अनु-सार अनादि हैं, कर्मो से आच्छादित जीव अपने शुद्ध स्वभाव को नही जान पाता। दुख, सुख, बन्धन, मोक्ष, जीव के कर्मो से ही उत्पन्न होते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता, वह देह से भिन्न अजर, अमर, ब्रह्मस्वरूप है, आत्मा के ध्यान से ससार का बधन छूट जाता है। आत्मा ही शाश्वत मोक्षपद है, आत्मज्ञान से मिथ्या-दृष्टि दूर हो जाती है। आत्मा को छोडकर न किसी तीर्थ मे जाने की आवश्यकता है न गुरु सेवा की, आत्मा के ध्यान से क्षणभर मे परम पद प्राप्त हो जाता है। इसी परब्रह्म मे मन लगाने से निरजन के दर्शन होते है, यह सुख अनुपम है। रागरजित हृदय मे इस परमसुखरूप शुद्धात्मा का दर्शन नही होता। यह अनन्त-देव न देवालय मे है, न शिला मे, न लिपि मे, न चित्र मे, वह अक्षय है, तथा ज्ञानमय, निरजन, समचित्त को प्राप्त हुए योगियो के मन मे रहता है, यह सम-रसीभाव ही मोक्ष का कारण है।[4]

दूसरे महाधिकार मे तीन प्रश्नो के उत्तर दिए है—मोक्ष क्या है? उसकी प्राप्ति के कारण और फल क्या हैं? योगीन्द्र मोक्षसुख को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं, उसके सर्वोत्तम होने के ही कारण सब प्राणी मोक्ष की कामना करते हैं तथा जिन-

---

के हिंदी अनुवाद सहित सूरत से सन् १९३९ ई० मे प्रकाशित हुआ था। दे० जो इडु एन्ड हिज अपभ्रंश वर्क्स ए० भा० ओ० रि० इ० भाग १२ अक २ पृ० १३२-६३।

१. परमात्मप्रकाश, पद्य ११-२४।

२. वही, पद्य २५-४९।

३. वही, ५०-५८।

४. वही, ६०-१२३।

देव मोक्ष को जाते है। वह तीनो लोको से परे है, हरि-हर, ब्रह्म, जिन आदि परम-निरंजन को मन मे धारण करके मोक्ष का चिन्तन करते है।[१] मोक्ष की प्राप्ति कर्म-क्षय से होती है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र मोक्ष के हेतु हैं। कर्म-क्षय होने पर ज्ञानी पुरुष उपशम भाव को प्राप्त होता है और सासारिक बन्धन नष्ट हो जाते है, वह आत्मस्वरूप मे लीन रहता है, प्रवृत्ति, निवृत्ति तथा पाप-पुण्य दोनो से वह दूर हो जाता है। मन की शुद्धता को योगीन्द्र ने बहुत प्रधानता दी है, शुद्ध जीवो के कर्म क्षीण हो जाते है और आनन्द की प्राप्ति होती है। ज्ञान का भी योगीन्द्र ने बडा महत्व बताया है, किन्तु देह मे बसने वाले परमात्मा को जाने बिना शास्त्र ज्ञान को वे व्यर्थ बताते हैं, इसी तरह तीर्थ-भ्रमण भी व्यर्थ ही है।[२]

योगीन्द्र ने जीवो मे भेद दृष्टि रखने वाले व्यक्तियो को मूढ कहा है। मूढ जीव धर्मादि के बहाने ससार को ग्रहण करता है और शिवपद (=मोक्ष) से पतित हो जाता है। ज्ञानी के लिए सभी जीव समान है। समभाव रखनेवाले निर्मलात्मा शीघ्र ज्ञान प्राप्त करते है। योगीन्द्र ससार के सभी पदार्थो—देवालय, देव, शास्त्र, गुरु, तीर्थ, वेद, काव्य को नाशवान् मानते है। विषय-सुख क्षणिक है, मन चचल है और उसे वश मे करने वाले अभिनन्दनीय हैं।[३] तृष्णा और चिन्ता से मुक्त होने पर ही शिवपद (=मोक्ष) का लाभ प्राप्त होता है। योगीन्द्र आत्मा और परमात्मा मे कोई भेद नही मानते। कर्म विशेष के कारण यह आत्मा पराधीन रहता है, अपने स्वरूप को जान लेने पर आत्मा परमात्मा हो जाता है। आत्मा स्वभाव से ही निर्मल है, शुभाशुभ कर्मों से वह भिन्न है, देह से उसका कोई सबध नही है। क्रोधादि को छोडने के योगीन्द्र ने अनेक उपदेश भी दिए है।[४]

परमसमाधि इस खड का दूसरा आलोच्य विषय है। परमसमाधि मे मग्न होने से ससार के अशुद्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं। समस्त विकल्पो, के विलय को योगीन्द्र ने परमसमाधि कहा है,[५] उसकी प्राप्ति से सब शुभाशुभ भाव छूट जाते हैं। परमसमाधि के बिना गूढ शास्त्र-ज्ञान और घोर तप से भी शिव और शान्ति-पद की प्राप्ति सभव नही है। परमसमाधि को धारण करके भी जो परब्रह्म को नही

---

१. परमात्म प्रकाश, द्वि० (द्वितीय) म० (महाधिकार), पद्य १-१०।
२. वही, द्वि० म० पद्य ११-८५।
३. वही, द्वि० म० पद्य ८६-१५३।
४. वही, द्वि० म० पद्य १५४-१८७।
५. वही, द्वि० म० पद्य १९०।

जानने से नाना दुखों को अनंतकाल तक संसार में सहते हैं तथा उसके विपरीत जो समस्त कर्मों को क्षय कर देता है वह जीव-मोक्ष पद में बसता हुआ अर्हन् हो जाता है तथा समस्त लोकों को जानता है एवं परमानन्दमय हो जाता है। यह केवल ज्ञानमय परमानन्द स्वभाव जीव ही परमपद परमात्मा है।[1]

कृति के अंतिम पद्यों में 'परमात्मप्रकाश' (कृति का नाम भी है) की व्याख्या की है 'समस्त कर्म और दोषों से रहित जिनदेव ही परमात्म प्रकाश है।' मुनि जन उसी जिनदेव को परमात्मा, परमपद, हरि, हर, ब्रह्म, बुद्ध और परमप्रकाश कहते हैं। ध्यान से कर्म क्षय करके मुक्तात्मा ही अनंत जिनदेव तथा महान् सिद्ध कहलाते हैं। कृति की समाप्ति योगीन्द्र ने कृति का माहात्म्य बताते हुए और अपनी त्रुटियों के लिए क्षमायाचना करते हुए की है।[2]

परमात्मप्रकाश में योगीन्द्र ने आध्यात्मिक गूढवाद तथा नैतिक उपदेशों को सहज ढंग से व्यक्त किया है, योगियों को अपने पद्यों में योगीन्द्र ने अनेक बार संबोधित किया है।[3] तथा कहीं कहीं गृह-वास को पाप-निवास भी बताया है[4] किन्तु कुछ गूढवादियों के समान[5] स्त्री-वर्ग या गृहस्थाश्रम के प्रति कटुता का योगीन्द्र के पद्यों में कहीं आभास भी नहीं मिलता। उन के पद्यों में कहीं भी अन्य गूढ-वादियों के समान अस्पष्टता नहीं मिलती।[6] योगीन्द्र के पद्यों में आडम्बरहीन सरल वातावरण मिलता है। सामान्य जीवन के बीच से जैसे दीप, पशु, ऊँट (पद्य २ १३६) उपकरण चुनकर गूढवाद को स्पष्ट किया है। सहज रूप से प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त उनके प्रिय अलंकार कहे जा सकते हैं। योगीन्द्र बड़े ही उदार प्रतीत होते हैं, वे जैन सम्प्रदाय के थे किन्तु कहीं भी जैन सम्प्रदाय के प्रति विशेष आग्रह नहीं दिखता। कुछ स्थलों पर प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के प्रयोगों को छोड़कर[7] सम्पूर्ण कृति में सामान्य साधना का रूप प्राप्त होता है। योगीन्द्र के जिन-देव जैन सम्प्रदाय मात्र के ही देव नहीं हैं, सर्व देव हैं, उनका स्वरूप व्यापक

१. परमात्म प्रकाश, द्वि० म० पद्य १८८-१९७।
२. वही, द्वि० म० पद्य १९८-२१४।
३. वही, प्र० म० पद्य १ ९६ ९९, १०४, तथा २ १४०, १७० आदि।
४ वही, पद्य, १ ८३, २.१११, ११५ इत्यादि।
५. यथा—कबीर आदि संतों का स्त्री समाज के प्रति दृष्टिकोण।
६. कबीर की उलटबासियाँ, बौद्ध सिद्धों के पदों में अस्पष्ट उक्तियाँ मिलती हैं।
७ परमात्म प्रकाश, २.१६-२६ इत्यादि।

है। योगीन्द्र मे भतो के समान कोमलता, विनय, निस्पृहता, तथा उचित वात को कहने की निर्भीकता मिलती है।

परमात्मप्रकाश मे ३४५ पद्य हैं जिनमे पॉच प्राकृत गाथाएँ हैं[1] तथा एक स्रग्धरा वृत्त तथा एक मालिनी वृत्त भी प्राकृत मे है।[2] शेष पद्यो की भाषा सरल अपभ्रंश है। यह सभी पद्य दोहा छद मे हैं।[3]

योगसार[4]—परमात्मप्रकाश के समान ही योगसार का विषय भी अध्यात्म प्रधान है। प्रारभ मे आत्मा के तीन भेदो—परमात्मा, अन्तरात्मा और वहिरात्मा का निरूपण करते हुए परमात्मा के ध्यान करने का आग्रह किया है। आगे पाप-पुण्य दोनो ही प्रकार के कर्मो को त्याग कर आत्मध्यान को मोक्ष प्राप्ति का साधन वताया है। आत्मा का निरूपण करते हुए योगसार मे कहा है कि वह सर्वव्यापक है। उसे देवालय, पत्थर-मूर्तियो, तीर्थो मे खोजना व्यर्थ है, वह देह मे रहता है। शास्त्र-ज्ञान आदि निस्सार है, इसी प्रकार ससार के सभी वन्धन दुखदायी हैं। सासारिक वन्धनो तथा पाप-पुण्यादि को त्याग करने वाले जीव सच्चे ज्ञानी हैं। आत्मस्वरूप मे रमने वाला योगी निर्वाण प्राप्त करता है और मोक्ष प्राप्त करता है। मोक्षसुख का स्वरूप एक पद्य मे इस प्रकार वताया है—

वज्जिय सयल वियप्पहं परम समाहि लहंति।
जं विदहि साणंदु कवि सो सिव सुक्ख भणंति ॥९७॥

'सकल विकल्पो को त्याग कर जो परमसमाधि प्राप्त करते है और आनद का अनुभव करते है उसे मोक्ष-सुख कहते हैं।' आगे योगीन्द्र ने समभाव की व्याख्या की है जो समस्त जीवो को ज्ञानमय समझने तथा रागद्वेष रहित होने पर प्राप्त होता है। हिंसादिक के त्याग, सूक्ष्म चारित्र्य तथा आत्मा की व्यापकता इत्यादि का उल्लेख करके कृति समाप्त हुई है।

योगसार के पद्यो की रचना मोक्ष की कामना करने वालो के आत्मसवोधनार्थ हुई है,[5] अत पद्यो मे कोई क्रमवद्ध विवेचन नही मिलता। अनेक पद्यो मे एक

---

१. परमात्मप्रकाश १ ६५.१, २ ६०, २.१११-२-३, तथा २.११७।
२ वही, २ २१३, २१४।
३. वही, पद्य २.१७४ प्रज्झटिका छंद में है। दोहो के चरणो में क्रमशः १४,१२, १४,१२ मात्राए मिलती हैं।
४. डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा संपादित परमात्मप्रकाश के साथ प्रकाशित।
५. वही, पद्य ३ और १०८ में उल्लेख भी मिलते हैं।

ही भाव की पुनरावृत्ति मिलती है। परमात्मप्रकाश के मोक्षाधिकार तथा योगसार मे विवेचित विषयो मे पर्याप्त समानता मिलती है।

योगीन्द्र की दोनो कृतियो का विषय एक ही है। विचारो की उदारता उनकी दोनो ही कृतियो मे मिलती है। जैन सम्प्रदाय के होने के कारण कुछ पद्यो मे जैन धर्म के प्रति आस्था अवश्य जहाँ तहाँ प्रकट की है[1] लेकिन किसी सम्प्रदाय के प्रति विशेष आग्रह प्रतीत नही होता और न किसी के प्रति कटुता का ही आभास उन्होने दिया है। देवालय, तीर्थ, शास्त्र-ज्ञान के प्रति योगीन्द्र के हृदय मे कोई श्रद्धा नही प्रतीत होती किन्तु उनका खडन करते समय अक्खडपन या तीव्रता उनकी वाणी मे नही मिलती। राग-द्वेष से ऊपर उठे हुए अत्यत उदार सच्चे मर्मी सत के रूप मे योगीन्द्र के दर्शन उनकी रचनाओ मे होते है। एक-दो स्थलो पर गृहस्थाश्रम को उन्होने पाप-वास कहा है किन्तु वे साधना के लिए उसे पूर्ण-रूपेण बाधक नही समझते, गृहस्थी के धन्धो में पडकर भी मोक्ष की साधना हो सकती है।[2] कुछ अन्य गूढवादियो के समान योगीन्द्र हठयोग को साधना के लिए आवश्यक साधन नही समझते। नैतिक आदर्शो का पालन और निस्पृह भावना से कर्मक्षय के लिए कर्म करना उनकी साधना के मूल आधार है। कर्म-क्षय से ही ससार नष्ट हो सकता है। परमात्मा, आत्मा और बहिरात्मा के भेद योगीन्द्र ने अपने ढग से किए है। आत्मा की सर्वव्यापकता तथा परमात्मा और आत्मा का एकत्व सामान्य भारतीय आध्यात्मिक सिद्धान्त है, आत्मा को पुरुषाकार देहाकार मानना जैन सम्प्रदाय का दृष्टिकोण है। समरसी भाव, परमसमाधि शब्दो का परमानन्द के लिए प्रयोग मध्ययुग के सभी मर्मियो की एक सामान्य विशेषता है जो योगीन्द्र में भी मिलती है।

योगीन्द्र की कृतियो का प्रधान छद दोहा है। योगसार के १०८ पद्यो मे से केवल तीन पद्य अन्य छदो मे है।[3] योगीन्द्र ने अपनी कृति के दोहाबद्ध होने का उल्लेख भी किया है।[4] दोहा के लक्षण के विषय मे छद ग्रथो मे दो मत मिलते हैं। एक वर्ग के अनुसार दोहा के पहिले और तीसरे चरण मे १३-१३ मात्राएँ होनी चाहिए और दूसरे तथा चौथे चरण मे ११ मात्राएँ होती है[5]

१. दे० योगसार, पद्य २, ४३, ९४ इत्यादि।

२. योगसार-पद्य ६५।

३. वही, पद्य ३९, ४७ सोरठा में है तथा पद्य ४० प्रज्झटिका छद में है।

४. वही, पद्य १०८।

५. छदकोश २१, प्राकृत पैंगलं १ ६६, कविदर्पण २.१५।

और दूसरे वर्ग के अनुसार चार चरणो मे क्रमश १४, १२, १४,१२ मात्राएँ होनी चाहिए[१]। योगीन्द्र की कृतियो में प्रयुक्त दोहो मे प्रथम वर्ग के अनुकूल अर्थात् चार चरणो में क्रमश १३,११ मात्राए मिलती है, सभी चरणो की अतिम मात्रा को दीर्घ पढने से मात्राओ की सख्या दूसरे वर्ग के अनुसार भी ठीक हो सकती है। दोहा अपभ्र श का वहुत ही प्रिय छद है। कृतियो की अपभ्र श को शौरसेनी अपभ्र श कहा जा सकता है। हेमचद्र द्वारा वर्णित अपभ्र श तथा प्रस्तुत कृतियो की भाषा मे अनेक समानताए मिलती हैं। हेमचद्र के व्याकरण मे अनेक पद्य इन कृतियो से भी उद्धृत हुए मिलते है।[२] और कुछ असमानताएँ भी मिलती हैं,[3] योगीन्द्र की अपभ्र श लोकभाषा का रूप प्रस्तुत करती है, शास्त्रीय और साहित्यिक अपभ्र श का नही, जिसमे यत्र तत्र देशी प्रयोग भी मिल जाते हैं।[४]

कृतिकार ने एक पद्य मे अपना नाम 'जोगिचद्र' दिया है।[५] परमात्मप्रकाश के टीकाकार ब्रह्मदेव ने कवि का नाम योगीन्द्रदेव वताया है। भाषा टीकाकार प० दौलतराम ने योगीन्द्राचार्य नाम दिया है।[६] चड और हेमचद्र की व्याकरण कृतियो में योगीन्द्र की कृतियो से पद्य उद्धृत हुए मिलते है। चड का समय आठवी शती ईस्वी माना जाता है। अत यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कम से कम चड के द्वारा उद्धृत पद्य की रचना आठवी शती में हो चुकी थी। योगीन्द्र के काल की एक सीमा आठवी शती मानी जा सकती है। सिद्धो, काश्मीर शैवो आदि की भावधारा से योगीन्द्र की भावधारा का वहुत साम्य है। इस गूढवाद का काल सामान्यत सातवी, आठवी शती माना जा सकता है और इस प्रकार योगीन्द्र का समय निश्चित प्रमाणो के अभाव में हेमचद्र के पूर्व मान सकते हैं जो दसवी शती ईस्वी है। योगीन्द्र-रचित अनेक ग्रथ कहे जाते है[७] किन्तु परमा-

---

१. छदोनुशासन ६.१००, वृत्तजातिसमुच्चय ४.२७, स्वयंभू छंद ६.११३ के अनुसार चार चरणो में मात्राए क्रमशः १३, १२, १३, १२ होनी चाहिए।

२. परमात्मप्रकाश २, ११७, १३९, १४०, १४७।

३. 'ऋ' तथा 'र' के साथ सयुक्त व्यजनो के प्रयोगो का अभाव, सवंध कारकान्त विभक्ति 'हो' का अभाव आदि।

४. जैसे अवक्खडी, पद्य १.१२५; लडिल्लउ, वही, २.१३९।

५. योगसार, १०८।

६. टीका, प० प्र० पृ० १,५।

७. नौकार श्रावकाचार, अध्यात्म सदोह, सुभाषित तत्र, तत्वार्थ टीका, दोहा पाहुड, अमृताशीति और निजात्माष्टक, अतिम दो माणिकचद्र दिगवर ग्रथमाला

त्मप्रकाश और योगसार के समान भावधारा उनमें नही मिलती तथा कुछ का कर्तृत्व बहुत कुछ निश्चित है। परमात्मप्रकाश के योगीन्द्रकृत होने मे सभी टीकाकार एकमत हैं और योगसार परमात्मप्रकाश के समान है तथा एक पद्य मे योगीन्द्र का कृतिकार के रूप में नाम भी मिलता है। योगीन्द्र ने अपने सबध में इन कृतियो मे कुछ भी नही कहा है, यत्र-तत्र नम्रता अवश्य प्रकट की है। परमात्मप्रकाश के प्रारम्भ में भट्टप्रभाकर ने प्रश्न पूछे है,[1] वे योगीन्द्र के शिष्य प्रतीत होते है, इसके अतिरिक्त उनके विषय में कुछ ज्ञात नही है।

रामसिह मुनि मुनि रामसिह की कृति पाहुड दोहा (प्राभृत=उपहार दोहो का) कामी प्रधान विषय आध्यात्मिक रहस्यवाद ही है। कृति मे क्रमवद्ध रूप से विषयविवेचन नही मिलता। कृति के विवेच्य विषय का अध्ययन कुछ शीर्षको द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है :

गुरु—मुनि गुरु को साधनपथ का मार्ग दर्शन कराने के लिए अत्यत आवश्यक मानते है। सूर्य, चद्र, दीपक, देव गुरु सब कुछ है क्योकि वह आत्मा और पर के भेद को प्रकट करता है, गुरु द्वारा बोध प्राप्त हुए बिना लोग भ्रम में पडे रहते हैं। योग्य गुरु मन के द्वैतभाव को नष्ट कर देता है तथा मन की व्याधि को शात कर देता है।[3]

आत्मसुख—आत्मसुख सर्वश्रेष्ठ है। विषयो का भोग करते हुए भी जो निर्लिप्त रहते हैं वे शाश्वत सुख प्राप्त करते है। विषयसुखो मे लिप्त रहने वाले नरकगामी होते हैं। मन की शुद्धि और निश्चलता से परलोक प्राप्त होता है।[4]

आत्मा और देह—वर्णादि भेद देह के है। आत्मा अजरामर ज्ञानमय, सत,

---

मे प्रकाशित हो चुके हैं, प्रथम देवसेन कृत सिद्ध हो चुका है और दोहा पाहुड मुनि रामसिह कृत है। दूसरे और तीसरे के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं हैं, चतुर्थ किसी अन्य योगदेवकृत है। निजात्माष्टक आठ प्राकृत पद्यो का ग्रंथ है, उसके तथा अमृताशीति में रचयिता के संबंध मे निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

१. प० प्र० १.८।

२. अबादास चावरे सीरीज में डा० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, कारंजा, १९९० वि०।

३. पा (हुड) दो(हा), पद्य १,८०-८१, १६६, १७४, २१०।

४. पा० दो० पद्य २-१९।

आत्मा को जान लेने पर और कुछ जानने को नही रहता, वह परमात्मा, अनन्त और त्रिभुवन का स्वामी है।[१]

समरसी भाव—मन के परमेश्वर से मिल जाने की दशा को मुनि ने समरस दशा नाम दिया है[२], जिस प्रकार लवण पानी मे विलीन हो जाता है उसी प्रकार चित्त परमात्मा में विलीन होकर समरस हो जाता है[3] मन की चचल वृत्ति मिट जाने पर योगियो को सर्वत्र आत्मा दिखने लगती है, मन सब व्यापारो से मुक्त हो जाता है, मन के व्यापार टूट जाने पर रागद्वेष भाव भग्न हो जाते है, आत्मा परमात्मा-परमपद में मिल जाता है इसको मुनि ने निर्वाण कहा है। यही शून्यस्वभाव है, पाप-पुण्य सबसे आत्मा मुक्त हो जाता है[४]।

मोक्ष, विषय और कर्म—विषयो का त्याग, कर्मो का क्षय एव विषयोन्मुख मन को निरजन (आत्मा) मे लगाना ही मोक्ष का कारण है। इन्द्रिय-सुख-निरत व्यक्ति को शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति दुर्लभ है। देह मे वसनेवाले देव को जान लेने पर सब विषय छूट जाते है, और सब कर्म नष्ट हो जाते है। शुभ-अशुभ सभी सकल्प नष्ट हो जाते है और जन्ममरण से मुक्ति मिल जाती है। विषयो की अनेक स्थलो पर तीव्र निंदा की गई है[५]। शास्त्र, तीर्थ, मूर्ति पूजा की भी निंदा मुनि ने की है[६]।

इस सामान्य मानव धर्म के साथ ही अनेक पद्यो मे जैन सम्प्रदाय से सवधित प्रसग मिलते है[७]। योगमार्ग की शब्दावली तथा सिद्धान्तो के भी उल्लेख मिलते

---

१. पा० दो० पद्य २३-४१, ५४-५९, ९४, १०७-१०८, १२२, १२८-१३०, १४१, १८६।
२. वही, पद्य० ४९।
३. वही, पद्य १७६।
४. वही, पद्य १३, २०३-२०४, २०६, २१२।
५. वही, पद्य ६२-६३, ७७-७८, ८०-८१, ८३, ८७-९०, ९२-९३, ९६, १११-११२, ११८-१२०, १२३, १५६, १८९, १९४-२०२ इत्यादि।
६. वही, पद्य १६२-१६३, १७८-१७९, १३०-१३१, १८०, १८६, १८७ इत्यादि।
७. वही, पद्य २०, ३९-४०, ५८-१४१, १९७, १९८, २०१, २०७, २१४, २०८-९, २१०, २११।

हैं ।[1] एक दृष्टव्य बात इन पद्यो मे स्त्रीपरक रूपको के सहारे मोक्षादि का वर्णन है । मुक्ति को स्त्री, मन को प्रियतम, देह को महिला, आत्मा को प्रिय जैसी कल्पनाओ में साधना के प्रेममय मधुर रूप की झलक देखी जा सकती है।[2] त्यो महिलाओ से सतर्क रहने का उपदेश दिया गया है और साधन पथ के लिए उन्हें बाधक बताया गया है ।[3] पाहुड दोहा के पद्यो मे अनेक बार एक ही विषय की पुनरावृत्ति हुई है ।[4] परमात्मप्रकाश के समान ही इन पद्यो मे एक निश्चित विचारधारा मिलती है और उसके साथ साथ उपदेश, खडन-मडन और सुभाषितादि से युक्त पद्य भी मिलते है । आडबरहीनता और सरलता पद्यो की एक सामान्या विशेषता है ।

पाहुड दोहा के २२२ पद्यो में से १२ पद्य प्राकृत मे है ।[5] तीन पद्य सस्कृत मे हैं,[6] शेष पद्य अपभ्रंश में हैं, जिनमे से १६ पद्यो को छोडकर शेष दोहा छद मे है ।[7] कृति की अपभ्रंश 'शौरसेनी अपभ्रंश' कही जा सकती है, प्रस्तुत कृति के कुछ दोहे किंचित परिवर्तन के साथ हेमचन्द्र के व्याकरण मे उद्धृत हुए हैं ।[8]

कृति की कुछ हस्तलिखित प्रतियो की पुष्पिकाओ में रचयिता मुनि रामसिंह कहे गए हैं, कुछ में योगीन्द्र[9] दोनो ही की रचनाओ मे बहुत भावसाम्य और कहीं शब्दसाम्य मिलता है ।[10] पाहुड दोहा के एक पद्य मे मुनि रामसिंह का

---

१. पाहुड दोहा, दे० पद्य २६८ में अनाहद्नाद, १८१ में ब्रह्मरंध्र, इडा, पिंगला, शशि रवि के उल्लेख पद्य १८१-१८२, २१९-२२१ में, तथा योग की दशा के संकेत पद्य २०३-२०४ में ।

२. वही, पद्य ४२, ४५, ६४,१०० ।

३. वही, पद्य ४३, १५६ ।

४. वही, पद्य २६ और ३०, ७७ और १९३ ।

५. वही, पद्य १९, २३, ८२, ९८, १३८, १४१, १४२, १९५, २०३, २०४, २१२ और २१३ ।

६. वही, पद्य २१८, २२१, २२२ ।

७. वही, पद्य ४२, ५०, ८३, ८५, ९९, १२२,१३५-१३६, १३९, १४०, १४४, १६५-१६८, २०६ । इनमें से पद्य ४२, ९९ द्विपदी छंद में हैं, पद्य ५० सोरठा लगता है, पद्य ८३ चतुष्पदी है, अन्य पद्धडिया छंद में हैं ।

८. वही, भूमिका पृ० २२-२३ ।

९. वही, भूमिका पृ० २६ तथा परमात्मप्रकाश, भूमिका पृ० ६२ ।

१०. पाहुड दोहा, भूमिका पृ० १९-२० ।

रचयिता के रूप मे नाम भी आता है।[१] भावसाम्य के कारण, ऐसा प्रतीत होता है, प्रतिलिपिकारो ने योगीन्द्र का नाम रचयिता के रूप मे प्रचारित किया होगा। पाहुड दोहा एक संग्रह-कृति है, अत संभव है, मुनि रामसिंह ने कुछ पद्य योगीन्द्र की कृतियो से भी लिए हो और इन पद्यों की उपस्थिति के कारण भी योगीन्द्र को पाहुड दोहा का रचयिता माना जाने लगा हो। कवि ने कही भी अपने संबंध मे कोई उल्लेख नही किया है और न अन्य कोई रचना ही उनकी मिलती है। 'करभ' जैसे शब्दो का बार-बार प्रयोग मिलता है जिसके आधार पर उन्हे पश्चिम प्रदेश का निवासी माना जा सकता है। कवि के काल के संबंध मे भी कोई निश्चित प्रमाण नही मिलते है। योगीन्द्र के पश्चात् मुनि रामसिंह का समय होना चाहिये क्योकि योगीन्द्र की कृति से उनकी कृति में पद्य उद्धृत हुए है।[२] हेमचंद्र से रामसिंह का समय पहिले होना चाहिए क्योकि हेमचन्द्र ने कुछ पद्य पाहुड दोहा से उद्धृत किए है।[३] कुछ पद्यो का रूप देवसेन की कृति सावयधम्म दोहा तथा पाहुड दोहा मे एकसा ही मिलता है[४] और देवसेन का समय विक्रम की दसवीं शती का उतरार्द्ध माना जाता है,[५] अत. देवसेन और हेमचंद्र के समय के बीच में मुनि रामसिंह का समय मान सकते है। डॉ० हीरालाल जैन मुनि का समय सन् १००० ई० के लगभग मानते है जिसमें, जब तक कोई निश्चित प्रमाण न मिले, संदेह के लिए स्थान नहीं है।[६] मुनि रामसिंह जैन थे जैसा कि कृति में प्राप्त जैन सम्प्रदाय से संबोधित अनेक उल्लेखो से स्पष्ट ही प्रतीत होता है।[७]

सुप्रभाचार्य : ७७ पद्यो की एक छोटी सी रचना 'वैराग्य सार' मिलती

---

१. पाहुड दोहा, पद्य २११।
२. वही, भूमिका, पृष्ठ २१ और आगे।
३. वही, भूमिका पृ० २२-२३।
४. वही, भूमिका, पृ० २१ और आगे।
५. दे० आगे देवसेन का प्रकरण।
६. वही, भूमिका, पृ० २८-३३।
७. वही, भूमिका पृ० २७।
८. प्रो० एच० डी० वेलंकर द्वारा संपादित 'वैराग्यसार अव् सुप्रभाचार्य', ए० भा० ओ० रि० इ० पूना भाग ९, पृ० २७२-२८०। इसी कृति की एक हस्तलिखित प्रति 'सुप्रभाचार्य दोहा' नाम से लेखक को दिल्ली के श्री पन्नालाल जी जैन अग्रवाल से प्राप्त हुई थी।

है जिसके रचयिता सुप्रभाचार्य हैं। वैराग्यसार के पद्यो मे वैराग्यपूर्ण वातावरण मिलता है। प्रारंभ मे ही उन्होने जगत के दु:ख-सुख से बचने के लिए वैराग्य भाव अपनाने का आदेश दिया है।

इक्कहिं घरे बधामणा अर्णाहिं घरि धाहहिं रोविज्जई।
परमत्थइ सुप्पउ भणइ किम वइरायभाउण किज्जइ॥

'एक घर मे बधावा है अन्य मे हाहाकार रुदन है, सुप्रभ परमार्थ कथन करते हैं, वैराग्य भाव क्यो धारण नही करते।' और आगे धनसंपत्ति की क्षणिकता, विषयो की निंदा, मानव देह की नश्वरता, संसार के संबधो के मिथ्यात्व को बताया है। मन और माया से आत्मा की रक्षा करने का सुप्रभ ने उपदेश दिया है :

मण-चोरहु माया निसिहिं जिय रखहिं अप्पाणु।
जिम होही सुप्पउ भणइं, णिम्मलु णाणु विहाणु॥४२॥

'रे जीव, माया रात्रि मे मन-चोर से आत्मा की रक्षा करो, जिससे ज्ञान का प्रभात हो' संसार को मिथ्या मानते हुए भी सुप्रभाचार्य प्रवृत्ति मार्ग की निंदा नही करते। गृहस्थ को दान धर्म मे रत और परोपकारी होने का वे आदेश देते हैं। ऐसा संभव न होने पर उसे संसार छोडकर आत्मचिंतन करना चाहिये, आत्मा को जानने से दु:ख नष्ट हो जाता हैं। आत्मा को जाने बिना निर्वाण प्राप्त नही होता।[१] सुप्रभाचार्य सब देवो से भाव को प्रधान मानते है।[२] भाव और ध्यान द्वारा आत्मानुभूति से समरसीभाव या समरस ज्ञान का स्फुरण होता है।[३] अनेक पद्यो में विषयो से विरक्त रहने, मन को मारने का उपदेश दिया है।[४] गृह-वास को वे निर्मल धर्म के पालन करने पर ही उचित समझते हैं अन्यथा उसे नचानेवाला समझते हैं।[५]

सुप्रभाचार्य के दोहो मे माया, ममता के त्याग और वैराग्य सेवन को सार (उच्च) बताया गया है। गृहस्थाश्रम को भी वे उचित मानते है यदि वह अनुचित व्यवहार से युक्त न हो। रचयिता उदार साधक के रूप मे इन पद्यो में हमारे सामने आता है। वह किसी संप्रदाय विशेष का पक्षपाती या विरोधी प्रतीत नही होता। यत्र-तत्र जैन धर्म के प्रति आग्रह से रहित साधारण उल्लेख

---

१. सु० दो० पद्य ५६।
२. वही, पद्य ५७।
३. वही, पद्य ५९।
४. वही, पद्य ६०, ७३-७४।
५. वही, पद्य ७६।

मिलते है लेकिन उसके प्रति कोई मोह प्रतीत नही होता।[1] पद्य कवि-कल्पना से मुक्त हैं। सर्वत्र सहज सुबोध शैली मिलती है, मन के लिए चोर, माया के लिए रात्रि-अधकार, मोह के लिए नट जैसे सरल उपमानो का प्रयोग किया है। कुछ पद्यो मे सुप्रभ ससार में फसे जीवो को सावधान करने के लिए व्याकुल से प्रतीत होते है।
यथा, रोवतह सुप्पउ भणइ रे जीव दु ख कि जाइ (५८)।

सुप्रभ के ७७ पद्यो मे से ७२ दोहबद्ध है।[2] अनेक दोहे त्रुटिपूर्ण हैं, सभव है इनका कारण लिपिकारो का प्रमाद हो। कुछ पद्यो मे १४, ११, १४, ११ के विराम से मात्रा क्रम मिलता है कुछ मे क्रमश १३, ११, १३, ११ मात्रा क्रम मिलता है। सुप्रभ के पद्यो की भाषा सरल अपभ्र श है जो पुष्पदन्त आदि की शास्त्रीय साहित्यिक अपभ्र श की अपेक्षा सहज है।

अनेक पद्यो में कवि का नाम सुप्रभ (सुप्पउ) मिलता है तथा हस्तलिखित प्रतियो की पुष्पिकाओ में भी सुप्रभाचार्य का नाम रचयिता के रूप मे मिलता है। कुछ पद्यो मे जैन सप्रदाय से सबधित शब्दावली का प्रयोग मिलता है जिससे सुप्रभाचार्य दिगबर जैन सप्रदाय के प्रतीत होते है[3]। सुप्रभाचार्य के काल और देश के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। भावधारा के आधार पर उन्हे योगीन्द्र, मुनि रामसिंह की परपरा मे माना जा सकता है और अपभ्र श भाषा का जो परिवर्तनकालीन रूप उनके पद्यो मे मिलता है उसके आधार पर उनका काल १००० ई० के आसपास माना जा सकता है।

महानदि—महाणदि या आनद द्वारा रचित या सग्रहीत ४३ पद्यो का एक सग्रह 'आनदा'[4] नाम से मिलता है। इन पद्यो मे सप्रदायविशेष के भेद भाव

---

१. दोहा ३९ मे जिन स्तुति का उपदेश है, पद्य ४३, २, ७, ९ में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं।

२. पाँचपद्य १, ६८, ६९, ७० तथा ७७ भिन्न छंदो मे हैं। इनमे से प्रथम पद्य द्विपदी है, पद्य ६८, ६९, ७० प्रज्झटिका छंद में हैं। पद्य ७७ के सभी चरण विषम है जिनमें क्रमशः १४, ९, १३, १६ मात्राएं हैं।

३. वही, पद्य ३९, तथा ४३।

४. प्रस्तुत कृति की हस्तलिखित प्रति आमेर भंडार जयपुर मे है। उक्त भंडार मे रहकर ही लेखक ने इस लघुकृति का अध्ययन किया था। आमेर भंडार ग्रन्थ सूची मे प्रस्तुत कृति का नाम 'आनंदास्तोत्र' दिया गया है।

से परे साधना का एक व्यापक और सहज रूप मिलता है। देह मे बसनेवाले परब्रह्म की आराधना का इन पद्यो में उपदेश दिया गया है और समस्त तीर्थ, बाह्याचार, जप, तप आदि को व्यर्थ कहा गया है।

अट्ठसट्ठि तीरथ परिभमई, मूढ़ा मरइ भमंतु।
अप्पबिंदु ण जाणहि, आणंदा रे, घटमहि देव अणंतु।
वेणी संगम जिण मरहु, जलणिहि झंप मरेहु ॥४॥
झाणग्गिहि तणु जालि करि, आणंदा रे, कम्मपटल खउलेहु ॥६॥

आत्मा देह मे वास करता है—इसका उल्लेख इस प्रकार सरल कल्पना का सहारा लेकर किया है—

जिम वइसाणर कट्ठ महि, कुसुमइ परिमलु होइ।
तिहं देहलइ वसइ जिव, आणंदा, विरला बूझइ कोइ ॥१३॥

'जिस प्रकार काष्ठ मे वैश्वानर, पुष्प में परिमल रहता है उसी प्रकार देह मे जीव निवास करता है, कोई विरला ही जानता है।'

देह मे वसने वाला परमात्मा गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है।

हरि-हर वभु वि सिव णही, मणु बुद्धि लखिउ णजाही।
मध्य सरीरहे सो वसइ, आणदा, लीजहि गुरुहि पसाई ॥१८॥

"हरि, हर, ब्रह्म, शिव भी उसे नही जानते, मन और बुद्धि के द्वारा वह नही देखा जा सकता, वह शरीर मे बसता है। आनद कहते है गुरु के प्रसाद से उसे प्राप्त करो।'

सद्गुरु ही उस ईश्वर के स्वरूप को बता सकता है, वह रूप, रस, गध, स्पर्श से विहीन है।

फरसरस गंधवाहिणी, रूवविहूणउ सोई।
जीवसरीरहं विणु करि, आणंदा, सबगुरु जाणई सोई ॥१९॥

'स्पर्श रस, गध से बाहर है और वह रूपविहीन है, जीव और शरीर भिन्न है, सद्गुरु उसे जानते हैं। गुरु की महिमा अपार है, वह आत्मा और परमात्मा के भेद को दिखाता है।'

गुरु जिणवरु गुरु सिद्धसिव, गुरु रयणत्तय सारु।
सो दरिसावइ अप्पपरु, आणंदा, भवजल पावइ पारु ॥३६॥

गुरु जिनवर है, सिद्ध है, शिव है और रत्नत्रय का सार है, वही आत्मा और पर को दर्शाता है और उसकी कृपा से ही भव जल का पार पा सकते

हैं, आत्मबोध से कर्म क्षय हो जाते है। उस आत्मा को सहजसमाधि के द्वारा जाना जा सकता है—

'सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, अप्पहुं करि परिहारु।
सहज समाविहिं जाणियई, आणंद, जे जियसासणि सारु ॥२२॥

'रे जीव, तू उस आत्मा को जान, अन्य का परिहार कर। आनद कहता है कि जिन-शासन के सार को सहज समाधि द्वारा जाना जा सकता है,

प्रस्तुत कृति मे प्रतिपादित साधन मार्ग योगीन्द्र और रामसिंह द्वारा प्रतिपादित साधन पथ के समान ही है। प्रस्तुत कृति के कुछ पद्य परमात्मप्रकाश तथा पाहुड दोहा मे किंचित परिवर्तन के साथ मिल जाते है।[1] सभव है आनदा ने इन पद्यो को लिया हो वा दोनो ने ही किसी एक तीसरे स्रोत से लिया हो। आनद ने अपनी कृति मे प्रयुक्त छद को 'हिंदोला' छद कहा है।

हिंदोला छंदि गाइयइं, आणंदितिलकु जिणाउ।
महाणंदि दहु वालियउ, आणंदा, अवहउ सिवपुरि जाई ॥४२॥

कृति मे प्रयुक्त पद्यो के अतिम चरण मे 'आणदा' या 'आणँदारे' पद प्रयुक्त मिलता है जिससे ६ मात्राएँ अधिक हो गई हैं। इन मात्राओ को निकाल देने पर छद दोहे हैं। कृति के रचयिता महानदि थे क्योकि प्रारभ तथा अतिम पद्यो मे उन्होने अपना नाम दिया है।[2] और अत मे दी हुई पुष्पिका मे भी यही नाम मिलता है।[3] कृतिकार जैन अवश्य थे जैसा कि अनेक उल्लेखो से स्पष्ट प्रतीत होता है।[4] लेखक के काल, देशादि के सबध मे कही कोई उल्लेख नही मिलता है। उनकी भावधारा अन्य जैन रहस्यवादियो से बहुत साम्य रखती है अत उनका काल १००० से १४०० ई० के बीच में कभी हो सकता है।

---

१. परमात्मप्रकाश १.९३ तथा आनंदा के २३ वें पद्य एक से हैं। तथा ऊपर उद्धृत पद्य ३६ पाहुड दोहा में मिलता है।

२. यथा—चिदानंदु सो णंवु जिणु सयल सरीरइं सोई।
महाणदि मो पूजियई, अणदा रे गगणिमडलु थिरु होई ॥१॥
देखिए, ऊपर उद्धृत पद्य ४२ में 'महाणंदि' नाम।

३. जयपुर की प्रति मे निम्न पुष्पिका मिलती है, 'सदगुरुचारणि जउ हुउ भणइ महायणंदि। इति आणंदा समाप्ता ॥

४. यथा 'जिणु' पद्य १, केश लोचन पद्य ९, रात्रिभोजनादि ११, जिणवर की पूजा, 'जिणवरु', पुज्जउ गुरु थुणहिं...१३, इत्यादि।

महचंद—मुनि महचद कृत ३३३ दोहो का एक संग्रह आमेर भडार में सुरक्षित है।[1] दोहे ककारादि क्रम से लिखे गए है। कृति का विषय रहस्यवादियो के समान ही है। पचव्रत धारण करने का उपदेश, कुदेव, कुगुरु की निंदा, स्त्री निंदा, एव विषयो की निंदा की गई है और फिर आत्मा के स्वरूप की व्याख्या की गई है, वर्ण, भेद सब शरीर के हैं आत्मा के नही। पुद्गल विचार, शास्त्रज्ञान की निरर्थकता आदि कृति के अन्य विवेचित विषय है। कृति के रचयिता मुनि महचद के सबध में कुछ भी ज्ञात नही है। अपना नाम उन्होंने कुछ पद्यो मे अवश्य दिया है। उन्होने अपने को वीरचद का शिष्य वताया है।[2] इन वीरचद के विषय मे भी कुछ ज्ञात नही है। कृतिकार के जैन होने मे कोई सदेह नही है, किन्तु उनके काल के सबध में कुछ ज्ञात नही है। प्रति का लिपिकाल स० १६०२ है अत इससे पूर्व महचद का काल अवश्य ही होना चाहिए। भाषा और भावधारा की तुलना 'सावयधम्म दोहा' या 'पाहुड दोहा' से भलीभाँति की जा सकती है। और उसी के आसपास प्रस्तुत कृति का रचनाकाल माना जा सकता है।

जैन रहस्यवादी कवियो की जिस परपरा का इन कवियो में दर्शन होता है वह वहुत महत्वपूर्ण है। इस परपरा का वहुत साहित्य रहा होगा, और भी अनेक साधको ने अपनी साधना का रूप वाणियो के रूप में लिपिवद्ध किया होगा किन्तु वह या तो अभी ग्रथ भडारो में पडा है या नष्ट होगया है। इस धारा का महत्व और अस्तित्व सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त रचनाएं पर्याप्त हैं। इस प्रकार की भावधारा अन्य कृतियो में भी मिलती है।[3] निष्कर्ष रूप मे इस धारा की सामान्य विशेषताओ का यहाँ सिंहावलोकन किया जा सकता है —

---

१. जयपुर आमेर भंडार में प्रस्तुत कृति का अध्ययन लेखक ने किया था। वहाँ से प्रकाशित ग्रंथसूची में कृति का नाम 'दोहा पाहुड' दिया है जो उचित ही है।

२. यथा १. महयदिण भवियायणहो, णिसुणहु थिरमणि थक्क।
२. भव दुक्खइ निविण्णएण, वीरचंद सिस्सेण।
भवियह पडिकोहण कया, दोहा कव्वमिसेण ॥३॥
३. मुणिमहयदिण भासियउ, .., ... ॥६॥
४. तिम मुणि महयंदिण कहिय .... ॥३४॥
कृति के अंत मे दी हुई पुष्पिका में 'जोइयमहयंदेण' प्रयुक्त आ है।

३. आमेर भंडार में इस प्रकार की अन्य कृतियाँ भी लेखक ने देखी हैं जैसे

१ जैन सप्रदाय से प्रेम और परिचय होते हुए भी ये साधक बहुत उदार हैं। किसी सप्रदाय विशेष या सिद्धान्त के प्रति प्रेम या द्वेष इनकी वाणियो मे नही मिलता। जैन सप्रदाय के अति सामान्य नैतिक आचारो के उल्लेखो तक ही इनकी साप्रदायिकता सीमित है।

२ सभी प्रकार की रूढियो और परपराओ के ये साधक विरोधी हैं, किन्तु इनके स्वर में कटुता या अखण्डता नही मिलती। मदिर, तीर्थ, शास्त्र ज्ञान, मूर्ति, वेष, जाति, वर्ण, मत्र, तत्र, योग आदि किसी भी सस्था को यह नही मानते। चारित्रिक शुद्धता को ये साधक के लिए एक आवश्यक वस्तु मानते थे। गृहस्थाश्रम की, साधना का बाधक होने के कारण, निन्दा की है। धर्मपालन करते हुए गृहस्थाश्रम को त्याज्य नही बताया। इसी प्रकार स्त्री वर्ग के प्रति इन साधको में कटुता नही मिलती। जहाँ तक वे साधन पथ मे बाधक हैं वही तक उनकी निंदा की है।

३ आत्मानुभव को इन साधको ने चरम प्राप्तव्य कहा है और वह शरीर मे रहता है। आत्मा को जानने के लिए शुभाशुभ कर्मो का क्षय करना आवश्यक है। आत्मा और परमात्मा एक ही है। आत्मा के जान लेने पर और कुछ जानने के लिए नही रहता। आत्मानद को ही समरसी भाव, सहजानद कहा है। तथा आत्म सुखलीन अवस्था को परम समाधि कहा है। यही मोक्ष या निर्वाण है। यह सुख सर्वोपरि और अनुपम है। अपने साधन पथ की व्याख्या करने के लिए इन साधको ने जहाँ तहाँ प्रेम भावना के द्योतक प्रिय-प्रियतम की कल्पना का भी सहारा लिया है।

४ इन साधको की रचनाएँ सरल है। भाषा के बाह्य सौंदर्य की ओर इनका ध्यान नही था। अनलकृत, आडबररहित सरल भाषा मे सहज ढग से अपने भावो को इन्होने व्यक्त किया है। अत्यत प्रचलित दोहा छद इनका सर्वप्रिय छद है। इसके अतिरिक्त प्रज्झटिका छद का भी व्यवहार किया है। इनकी भाषा सरल आधुनिक आर्यभाषाओ की प्रारभिक सीमाओ को छूती हुई लोक प्रचलित अपभ्र श है।

देह मे विद्यमान आत्मा को ढूंढने का उपदेश देने वाली यह धारा मध्ययुग में बहुत ही व्यापक थी। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण, शैव, सभी सप्रदायो मे न्यूनाधिक रूप से इसका प्रभाव पडा। श्रमण सस्कृति के अनुयायी सभी सप्रदायो मे यह

जोगेन्द्र देव लक्ष्मीचद्र कृत दोहाबद्ध अपभ्र श द्वादशानुप्रेक्षा। दे० आमेर ग्रंथ भंडार सूची जयपुर १९४८ ई०।

मान्य थी। आगे परवर्ती काल में यही धारा साधको की लोक भाषाओ मे रचित वाणियो मे मिलती है। नाथ पन्थ, सिद्ध पथ, जैन रहस्यवादी धारा, निरजनी, कबीरपथी सब सप्रदाय इसी देह देवालय मे बसने वाले देव को ढूंढने का उपदेश देते हैं।

आ. उपदेशात्मक धारा :

जैन प्राकृत साहित्य मे जिस प्रकार श्रावक धर्म की व्याख्या करनेवाली पद्य-बद्ध लघु कृतियाँ मिलती हैं या तीर्थ, व्रत आदि से सबधित रचनाएँ मिलती है उसी प्रकार जैन अपभ्र श में इस प्रकार की पद्यबद्ध रचनाएँ मिलती है। इस प्रकार की रचनाओ में किसी एक निश्चित विषय का प्रतिपादन नही मिलता। सामान्य गृहस्थो के लिए धर्म और नीति विषयक उपदेश कुछ रचनाओ मे मिलते हैं, और कुछ में किसी व्रत से सबधित उपदेश या गुरु की स्तुति मिलती है। यहाँ इस प्रकार की कुछ रचनाओ का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार की रचनाएँ जैन शास्त्र भडारो मे अभी बहुत मिलेगी। यहाँ जो परिचय दिया जा रहा है वह जैन अपभ्र श साहित्य की इस पुष्ट धारा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। जैन प्राकृत रचनाओ के समान अपभ्र श की इन रचनाओ मे गद्य का प्रयोग नही मिलता। सभी रचनाए पद्यबद्ध रूप मे ही मिलती हैं।

देवसेन—इस स्फुट परपरा में देवसेन का सावयधम्म दोहा[1] (श्रावक-धर्म-दोहा) सबसे महत्वपूर्ण कृति है। प्रारभ मे पचगुरुओ की वदना, दुर्जनो का स्मरण, मनुष्य जन्म की दुर्लभता और अर्हत द्वारा प्रतिपादित धर्म की श्रेष्ठता की ओर सकेत किया है[2]। इस लघुभूमिका के पश्चात् श्रावक धर्म के ग्यारह भेदो का विवेचन किया है। सम्यक्त्व हीन जीवो को इस धर्म की प्राप्ति नही होती। सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये अनेक दोपो का त्याग, रात्रि-भोजनादि का त्याग, जिन पूजा, अहिंसा व्रत-पालन आदि को आवश्यक बताया है[3]। गृहस्थ के लिए दान देने का महत्व बताते हुए दान देने योग्य पात्रो की चर्चा की है। कवि ने धन की उन्नति धर्म से बताई है, एक पद्य मे धर्म की व्याख्या करते हुए बताया है कि जो अपने लिए प्रतिकूल है उस कार्य को दूसरो के लिए न

१. प्रो० डा० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, करजा जैन सिरीज, कारंजा बरार १९३९ ई०।

२. सावयधम्म दोहा पद्य १.५।

३. वही, पद्य ६-७६।

करना ही धर्म का मूल है[1] । कवि इस भ्रम का निराकरण करता है कि धन से ही धर्म बढ़ता है । मन, वचन और काय की शुद्धि से भी धर्म बढ़ता है । शास्त्रो के सबध मे कवि ने कहा है कि विपरीत बुद्धि व्यक्ति को शास्त्र धर्म-रत नही बना सकता[2] ।

सामान्य व्रतापि ध्यान, कीर्तन, सयम, नियम, इन्द्रियनिग्रह का पालन आवश्यक मानते हुए क्रोध-त्याग, लोभ-त्याग, तथा क्षमा, मार्दव, सतोष, स्वाध्याय, सुसगति, माधुर्य, त्याग, पौरुष तथा कवित्व और मौन भोजन के पालन को अभिवृद्धि के लिए आवश्यक बताया है ।[3] अन्यायो मे बचने का देवसेन ने उपदेश दिया है । अन्याय से प्राप्त लक्ष्मी ठहरती नही। अन्याय से बलवान भी क्षय को प्राप्त होते हैं । कुसग और पिशुन सग को देवसेन ने त्याज्य बताया है । दान-प्रसग का स्मरण कराते हुए प्रसगानुसार तीर्थंकर के जन्मादि,पूजाविधि आदि का वर्णन करते हुए जिन मदिर निर्माण और जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का महत्त्व वर्णित किया है । बिना श्रद्धा के इन कार्यो के करने से कोई फल नही मिलता अपितु दर्शन और सम्यक्त्व का नाश हो जाता है ।[4] पाप न करने की देवसेन ने कडी चेतावनी दी है । लघुतम पाप भी बड़ी पुण्यराशि को नष्ट कर देता है । कर्मो के फल मे निस्पृह भावना का होना आवश्यक है । भोग की इच्छा मे किए गए कर्मो को देवसेन हेय बताते हैं । पाप और पुण्य दोनो ही बधन हैं । पूजा, जिन प्रतिमा का ध्यान, पच परमेष्ठी मत्र जप की महिमा, मनुष्य जन्म की दुर्लभता, ग्रथ महात्म्य आदि प्रसगो का उल्लेख एव सबके सुख की कामना करते हुए देवसेन की रचना समाप्त हुई है ।[5]

देवसेन ने एक आदर्श चरित्र गृहस्थ के लिए सभी करणीय सामाजिक, धार्मिक कर्मो का पालन आवश्यक बताया है । ब्राह्मण, शूद्र, ऊँच, नीच का भेद सावयधम्म दोहा के पद्यो मे नही प्रतिपादित किया गया है । देवसेन उस चरम आदर्श निर्माण के लिए उत्सुक दिखते है जो पाप पुण्य मे समभाव रखता है । प्रवृत्ति मार्ग द्वारा ही वे धर्म के पालन द्वारा मोक्ष प्राप्ति सभव मानते हैं । देवसेन ने वक्तव्य विषय को स्पष्ट करने के लिए अतिपरिचित वस्तुओ को अप्रस्तुत

---

१. सा० दो० पद्य १०४ ।
२. वही, पद्य ७७-१०७ ।
३. वही, पद्य १०८-१४३ ।
४. वही, पद्य, १४४-२०६ ।
५. वही, पद्य २०७-२२४ ।

उपकरणो के रूप मे अपनाया है जैसे हल, बैल, जुआ, नौका, वृक्ष, कूप, खारी जल, धतूरा इत्यादि ।[1] कृति में दोहा छद का ही प्रयोग हुआ है, एक पद्य मे छद का उल्लेख भी हुआ है।[2] दोहे के चरणो मे मात्रा क्रम क्रमश १३, ११, १३, ११ है । अन्त्यनुप्रास (दूसरे तथा चौथे चरणान्त मे) का प्राय पालन हुआ है ।[3]

सावयधम्म दोहा की हस्तलिखित प्रतियो की पुष्पिकाओ मे से कुछ मे रचयिता लक्ष्मीचद्र कहे गए हैं, कुछ मे योगीन्द्र को रचयिता कहा गया है, कुछ मे लक्ष्मीचद्र को पजिकाकार कहा गया है । एक प्रति मे कृति को 'देवसेन उपदिट्ठ' (देवसेन द्वारा उपदिष्ट) कहा गया है । लक्ष्मीचद्र को भ्रम से रचयिता मान लिया गया प्रतीत होता है, वे पजिकाकार रहे होगे । योगीन्द्र और देवसेन की भावधारा में बहुत अन्तर है अत देवसेन ही कृति के कर्ता ठहरते है ।[4] देवसेन की जो कृतियाँ प्रकाश मे आ चुकी हैं[5] उनमे से भावसग्रह तथा प्रस्तुत कृति मे पर्याप्त भाव साम्य मिलता है जिसको आकस्मिक नही कहा जा सकता । और इस आधार पर देवसेन ही 'सावयधम्म दोहा' के कर्त्ता ठहरते हैं। दर्शनसार मे देवसेन ने कहा है कि धारा नगरी में उन्होने स० ९९० में उसकी रचना की ।[6] धारा नगरी मे विक्रम सवत का प्रचलन रहा है[7] अत इसी के आसपास देवसेन ने सावयधम्म दोहा की रचना की होगी । दिगबर सप्रदाय के थे जैसा कि उनके अन्य ग्रथो से प्रकट होता है । देवसेन ने सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश मे कृतियो की रचना की ।[8] अपने सबध में देवसेन ने कही कोई उल्लेख

---

१ ऐसी सरल कल्पनाओ के लिए दे० सा० दो०, पद्य ३, ४६, ७६, ८७, १३५ इत्यादि ।

२. वही, पद्य २२२ ।

३. कुछ पद्यो में शिथिलता मिलती है यथा पद्य २९, ८१, १४५, १६९ इत्यादि ।

४. दे० सा० दो० की भूमिका, पृ० १४ और आगे ।

५. दर्शनसार, आराधनासार, तत्वसार, नयचक्र, आलाप पद्धति, तथा भावसंग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं । दर्शनसार को छोडकर अन्य कृतियाँ माणिक्यचंद्र दिगबर जैन ग्रंथमाला में प्रकाशित हुई हैं ।

६. दे० सा० दो० भूमिका, पृ० १९ ।

७. दर्शनसार में कवि ने स्वय विक्रम संवत्सर का उल्लेख किया है, वही, भूमिका, पृ० १९ ।

८. संस्कृत मे आलाप पद्धति, प्राकृत मे दर्शनसार, आराधनासार, तत्वसार,

नही किया । उनकी कृतियो में प्राप्त वर्ण्य विपय के आवार पर उनकी अत्यत सयमी साधुचरित व्यक्ति के रूप मे कल्पना की जा सकती है।

जिनदत्तसूरि—चर्चरी, उपदेश रसायन रास, और काल स्वरूप कुलक तीन छोटी छोटी अपभ्र श कृतियाँ जिनदत्तसूरि कृत प्रकाशित हुई हैं।[1] चर्चरी के ४७ पद्यो मे अपने गुरु जिनवल्लभसूरि की प्रशसा तथा उनके कार्यों का वर्णन किया है। चैत्यगृहो के नियमो के पालन का उपदेश देते हुए कृति के अतिम पद्यो मे अपनी गुरु परपरा दी है। उपदेश रसायनरास के ८० पद्यो मे मनुष्य जन्म का महत्व और आत्मोद्धार का उपदेश दिया है। सुगुरु की सहायता के विना ससार को पार करना कठिन है अत सुगुरु की महिमा का कुछ पद्यो मे उल्लेख हुआ है। आगे धार्मिक जनो की प्रवृत्ति तथा चैत्यगृहो मे निपिद्ध कर्मो की चर्चा की है। आगे सूरि और युगप्रधान के लक्षणो का कथन है। इसी प्रसग मे सघ के विरोधियो की दुष्प्रवृत्तियो का उल्लेख करके सघ के लक्षणो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। कृति के अतिम पदो मे गृहधर्म विपयक सुदर उपदेश मिलता हे जिसमे कहा है कि कुटुम्व में ज्येष्ठ व्यक्ति की मान्यता होनी चाहिए तथा माता, पिता के अन्य धर्मावलम्वी होने पर भी उनका आदर करना चाहिये। अपनी कृति के श्रोताओ को अजरामर होने की सूचना दे कर कवि ने सुदर रचना समाप्त की है। जिनदत्तसूरि ने काल स्वरूप कुलक[2] के प्रारभ मे एक भयकर दुष्काल की चर्चा की हे किन्तु आश्चर्य के साथ कवि ने कहा है कि उस भयकर समय मे भी विपरीत वुद्धि के कारण लोगो का मन धर्मवार्ता, जिन-वाणी तथा सुगुरुओ की वाणी मे नही लगता था। गुरु वचनो मे श्रद्धा रखने

नयचक्र, और भावसग्रह तथा अपभ्रंश में सावयवम्म दोहा तथा भावसंग्रह के कुछ पद्यो की रचना की। भावसंग्रह मे तीन अपभ्र श पद्य वस्तु छद मे मिलते हैं पद्य २१६, २५४ और २५५ जिनमे से एक मे स्त्री वर्ग से सतर्क रहने का उल्लेख है तथा दो में ब्रह्मा, कृष्ण और रुद्र के सृष्टि कर्त्तृत्व का न्यायपूर्ण खडन है।

१. 'अपभ्रंश काव्यत्रयी, नाम से लालचंद भगवानदास गाधी द्वारा संपादित होकर, गायकवाड्स ओरिएटल सीरीज वड़ौदा से प्रकाशित १९२७ ई०,

२. कुलक एक ही क्रिया से संवधित एक विपय से सवंधित अनेक पद्यो के सग्रह को कहते हैं। इस दृष्टि से कृति का नाम 'कुलक' उपयुक्त नहीं है। कृति मे अनेक विपयो से सवंधित पद्य हैं।

का महत्व बताते हुए कुगुरु से सावधान रहने का उपदेश दिया है। सुगुरु और कुगुरु के स्वरूपो की कवि ने विस्तार से चर्चा की है और अत में कौटुम्बिक सबधो की एकता, माता पिता के प्रति अनुराग, आदि से सुख प्राप्त होने का उल्लेख किया है। गुरु महिमा, कुटुम्ब का सगठन, सक्षेप में कृति के प्रिय और महत्वपूर्ण विषय हैं।

जिनदत्तसूरि की कृतियो में विरक्तो के लिए उपदेश नही है। उनका प्रधान उद्देश्य श्रावक श्राविकाओ के चरित्र का सगठन करना तथा सघ के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाना है। परलोक सुधार की ओर नही, सूरि का इस लोक मे ही एक आदर्श समाज की स्थापना करना प्रधान लक्ष्य है अत उन्होंने गृहस्थो को सबोधित करते हुए अपनी कृतियो की रचना की है और इसी कारण सरल कल्पना का कवि ने प्रयोग किया है।[1]

जिनदत्तसूरि की कृतियो में से चर्चरी में अर्द्धसमचतुष्पदी मात्रिक छंद का प्रयोग हुआ है जिसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ हैं। कृति के सस्कृत टीकाकार जिनपाल (स० १२९४ वि० स०) ने कृति के छन्दो को वस्तु छद का कुद भेद बताया है।[2] चर्चरी के प्रत्येक छद के चार चरणो मे से प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणो में अन्त्यनुप्रास (यमक) का प्रयोग मिलता है। प्रत्येक चरण मे १२ मात्रा के पश्चात् प्राय यति मिलती है तथा चरणान्त मे त्रिलघु मात्रिक गण मिलता है। सभी छद प्राय निर्दोष है। शेष दो कृतियो मे प्रज्झटिका छद का प्रयोग हुआ है। जिनदत्त की कृतियो की भाषा साहित्यिक पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) है। टीकाकार ने चर्चरी की भाषा को 'मजरी

---

१. कुछ अप्रस्तुत विषय इस प्रकार हैं, कुगुरु की अर्क के दूध से समता, का० स्व० कु० पद्य १०, धतूरे से समता वही, १२ इत्यादि।

२. दे० चर्चरी टीका पद्य १, चर्चरी का नृत्यगीत के रूप मे उल्लेख विक्रमोर्वशीय रत्नावली आदि में मिलता है। हेमचंद्र ने छंदानुशासन ७.४७ में चर्चरी नामक एक छंद का विवेचन किया है जो प्रस्तुत चर्चरी के छंदो से भिन्न है। समरादित्यकथादि ग्रंथों में भी चर्चरी का उल्लेख मिलता है। कुछ अन्य रचनाओ का नाम भी चर्चरी मिलता है दे० पत्तन भंडार सूची पृ० ४३, २६७-६८। चर्चरी एक ताल का भी नाम है, दे० संगीत मकरद, पृ० ३४ जायसी ने चांचर का उल्लेख किया है, दे० पद्मावत नागरी प्रचारिणी सभा १९३५ ई०, पृ० १६८-२२।

भाषा' कहा है तथा उपदेश रसायन रास की भाषा को प्राकृत भाषा कहा है।[1] दोनो ही उल्लेख अस्पष्ट है।

जिनदत्तसूरि का अनेक कृतिकारो ने उल्लेख किया है, और उनका जीवन वृत्त भी दिया है[2] जिसके अनुसार उनका जन्म स० ११३२ वि० मे हुआ था। इनका नाम सोमचद्र था। जिनवल्लभसूरि के अवसान के पश्चात् (स० ११६७ वि०) चित्रकूट मे सूरि पद पर उनको प्रतिष्ठित किया गया और वे जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने मरुस्थल, अजमेर आदि प्रदेशो की यात्रा की तथा अनेक शिष्य बनाये। स० १२१० वि० मे अनशन द्वारा अजमेर मे सूरि ने देह विसर्जित की। उपर्युक्त अपभ्र श रचनाओ के अतिरिक्त सूरि ने अनेक प्राकृत और सस्कृत कृतियो की रचना की। सूरि श्वेताम्बर सप्रदाय के खरतरगच्छ के अत्यत प्रसिद्ध युगप्रधान आचार्य थे।

महेश्वर सूरि—सयम आदि की महत्ता से सबधित ३५ दोहो की एक छोटी सी रचना 'सयम मजरी' महेश्वर सूरि कृत प्राप्त हुई है,[3] जिसमे सयम को सर्वोपरि साधन बताया है, उसे मोक्ष का द्वार बताया है और उसके अनेक भेदो का उल्लेख किया है। सयम के पालन से मोक्ष की प्राप्ति होती है जहाँ निरतर सुख ही सुख रहता है। महेश्वर सूरि ने अपनी छोटी सी रचना मे बडा क्रमबद्ध विवेचन किया है किन्तु शास्त्रीय शुष्कता से कृति को बचाने का प्रयत्न किया है। काव्यरस पद्यो मे बिल्कुल नही है। पद्य दोहा छद में लिखे

---

१. दे० चर्चरी का प्रारभ 'इयं च प्रथममंजरी भाषया नृत्यद्भिर्गीयते', तथा, दे० उपदेश रसायनरास का प्रारंभ 'प्राकृतभाषया धर्मरसायनाख्यो रास-कश्चक्रे', और भी इस प्रकार के भ्रामक उल्लेख देख सकते हैं। 'गोयम सुत्तचरित्त कुलक' की भाषा को 'पटमजरी' भाषा कहा है दे० पत्तन कैटेलाग बड़ौदा, पृ० २६७, तथा 'बौद्ध गान वो दोहा' की भाषा को टीकाकारो ने पटमंजरी भाषा कहा है। सभव है इन रचनाओ के पटमंजरी राग मे गाई जाने के कारण इनकी भाषा को भ्रमवश पटमंजरी कहा गया होगा।

२. अप० का० त्रयी, भूमिका, पृ० ५३ तथा आगे तथा परिशिष्ट २।

३. ए० भ० ओ० रि० इ० पूना, भाग १, पृ० १५७-१६६ में प्रकाशित तथा भविसयत्तकहा, बडौदा संस्करण १९२३ ई०, भूमिका पृ० ३७-४१ में उद्धृत और पत्तन कैटेलाग, बडौदा १९३७ ई०, पृ० ६८-६९, १९२ तथा १९३ में अन्य प्रतियो का उल्लेख है।

गए हैं, क्रमश चरणो में मात्राक्रम १३,११,१३,११ मिलता है। भाषा उपदेश के अनुकूल सरल लोकप्रिय शौरसेनी अपभ्रश है।

कृति के अतिम पद्य मे महेश्वर सूरि का नाम मिलता है, जिसके आधार पर महेश्वर सूरि को पद्यो का रचयिता माना जा सकता है।[1] पद्य ३२ मे 'गुरुजन' विशेषण से युक्त जिनचन्द्र का उल्लेख हुआ है, अत. वे महेश्वर सूरि के गुरु या कोई अन्य प्रिय श्रद्धाभाजन व्यक्ति हो सकते हैं।[2] कालकाचार्य कथानक के रचयिता एक और महेश्वरसूरि हुए हैं किन्तु ऐसा कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता जिसके आधार पर दोनो को एक ही माना जा सके।[3] सजम मजरी की हस्तलिखित प्रति, जिसके साथ हेमहस सूरि की टीका भी है, स० १५६१ वि० की मिलती है अत रचयिता और टीकाकार दोनो ही इससे प्राचीन सिद्ध होते हैं। भाषा और भावधारा की तुलना सावयधम्म दोहा जैसी रचनाओ से की जा सकती है अत दशवी से बारहवी शती तक महेश्वर सूरि का समय मान सकते हैं।[4] कृति के प्रारम मे पार्श्ववंदना, सूरि उपाधि से कवि के श्वेताम्बर जैन होने की सूचना मिलती है।

जयदेव मुनि—कडवक बद्ध ६२ पद्यो की लघु रचना 'भावना सधि प्रकरण'[5] जयदेव मुनि कृत एकमात्र रचना प्रकाशित हुई है। अपनी कृति मे ससार को इन्द्रजाल बताते हुए ससार के सबधो को मिथ्या बताया है और मनुष्य जन्म की दुर्लभता तथा विषयो के दुष्परिणामो का विरतिकर वर्णन किया है। ससार के दु ख जिनवर कथित धर्मपालन से ही छूट सकते हैं। सुकृत करने और दुष्कृत त्याग करने का उपदेश देते हुए सब जीवो के साथ मैत्रीभाव रखने का उपदेश देकर कृति समाप्त की है। नैतिक और धार्मिक उपदेश ही कृति के प्रधान विषय

---

१. पद्य इस प्रकार है : एह भूषण गयवसणं संजममजरि एह।
सिरि महेसर सूरि गुरु कन्नि कुणंत सुणेह ॥३५॥
महेश्वर सूरि के लिए सिरि (श्री) तथा गुरु का प्रयोग होने से ऐसा लगता है कि उनके किसी शिष्य ने पीछे यह दोहा जोड़ दिया होगा।

२. यथा, जिणचदगुरुजणविणउ तवु संजमु उवजाउ।

३. ए० भं० रि० इं० वही पृ० १५७।

४. हेमचंद्र के दोहो से भाषा की समता की जा सकती है और अपभ्रंश की स्वाभाविकता तथा प्राचीन रूपों के प्रयोग इस काल की विशेषताएं हैं।

५. ए० भं० ओ० रि० इं० पूना ११, खंड १, पृ० १-३१, एम० सी० मोदी एम० ए० द्वारा संपादित।

है। कृति में अनेक प्राचीन ऐतिहासिक पुरुषो के उल्लेख मिलते है।[1] सुभाषितो का कृति मे अच्छा प्रयोग हुआ है।[2]

कृति मे छ कडवक है। प्रत्येक कडवक मे १० पद्य है, अतिम कडवक मे ११ पद्य है। कडवक १, ३ तथा ५ प्रज्झटिका छद मे है। प्रारभ मे तथा कडवकान्त मे घत्ता का प्रयोग मिलता है। कडवक २, ४ और ६ मे प्रत्येक चरण मे पाँच मात्राओ के चार गण है। प्राकृत पैंगल में इससे मिलता निशिपाल छद है।[3] प्रयुक्त घत्ता षट्पदी वर्ग के है, १०, ८, १३ मात्राओ पर यति का ध्यान रखकर ३१ मात्राए प्रति पक्ति मे मिलती है। कृति की भाषा व्याकरणसम्मत पश्चिमी अपभ्रंश है।[4]

कृति के अतिम पद्य मे रचयिता ने अपना नाम जयदेव मुनि दिया है। वह शिवदेव सूरि का प्रथम शिष्य था। कृति मे मालव नरेन्द्र तथा मुञ्ज (१०५४ वि० मृत्युकाल) के उल्लेख मिलते हैं जिनके आधार पर जयदेव के काल की एक सीमा निश्चित की जा सकती है। इस आधार पर जयदेव का काल ग्यारहवीं शती के पीछे माना जा सकता है। इस नाम के अन्य कृतिकार भी हुए है किन्तु उनका काल भी अनिश्चित है।[5]

विजयचद्रमुनि कृत दो छोटी छोटी रचनाएँ कल्याणकरासु और चूनडी मिलती हैं।[6] चूनडी मे धार्मिक भावनाओ और आचरणो से रगी चूनडी पहनने का उपदेश दिया गया है। ३१ पद्यो की इस कृति की भाषा सरल और शैली सहज है। पद्धडिया और द्विपदी छद का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत कृति एक लोक-

---

१. यथा मालव नरेन्द्र, पृथ्वीचंद्र पद्य ५, अंगारदाह २०, शालिभद्र, भरत, सगर २२ आदि।
२. यथा पद्य ५७ मे 'घर में आग लगने पर कुआ खोदना' आदि।
३. प्राकृत पैंगल, कलकत्ता १९०२ ई०, पृ० ४८८।
४ ए० भं० वही, पृ० ३ और आगे।
५. पत्तन भंडार कैटलाग आव् मन्युस्क्रिप्ट्स, बड़ौदा, १९३७ ई०, पृ० ५१ तथा १८६। भावना नामक कृतियो के लिए दे० वही, पृ० २९, ३०, ५८, ९०, १२०, १६१ इत्यादि।
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ५०, संख्या १, २, पृ० १११ तथा जैन हिंदी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास पृ० ७०, तथा अनेकान्त वर्ष ५, खंड ६, ७, मे दीपचंद्र पाड्या का लेख 'चूनड़ी ग्रंथ'।

गीति जैसी लगती है। रचयिता ने अपने गुरु का नाम बालचंद्र मुनि दिया है। णिर्झर पचमी विहाण कथानक प्रस्तुत लेखक की एक अन्य कृति भी मिलती है।[1]

ऊपर धर्म, उपदेश, नीति, स्तुति से सबधित जिन थोडी सी कृतियो की चर्चा की गई है वह इस धारा की प्रमुख प्रवृत्तियो का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। यह उपदेश प्रधान धारा गृहस्थो को सम्मुख रखकर प्रवाहित हुई है इस कारण मदिर, पूजा, देवादि का खडन न करके सुचारु रूप से उनको प्रतिष्ठित करने का उपदेश दिया गया है। इन रचनाओ मे ससार में विधिपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए निर्वाण तक पहुचने का मार्ग बताया है। प्रवृत्तिमार्ग को प्रशस्त बनाने वाले ये उपदेशक ससार मे रहते हुए उससे निर्लिप्त रहने का उपदेश देते हैं। कुटुम्ब की सुव्यवस्था और सामजस्य को ठीक रखने पर इस धारा के कवियो ने बहुत बल दिया है। घर के सब से बडे सदस्य की प्रधानता तथा माता पिता, चाहे वे अन्य धर्मावलम्बी ही क्यो न हो, की सेवा, उनकी आज्ञा मानना कौटुम्बिक व्यवस्था के प्रमुख आधार है जिनकी ओर इन उपदेशको ने बार बार ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है। स्त्री वर्ग की अकारण भर्त्सना कही ये नही करते। जाति, वर्ग के सबध मे इनके विचार बहुत उदार हैं। अन्य मतावलम्बियो के सग-त्याग का बडे मृदु ढग से सकेत किया है। त्यागप्रधान, अहिंसा मे विश्वास रखने वाली इस प्रवृत्तिमार्गी धारा को जैनाचार्यों ने बडे ही सरल ढग से जीवित रखने का प्रयत्न किया है। प्राकृत, अपभ्रंश और आगे चलकर विभिन्न लोक भाषाओ में यह धारा प्रवाहित होती रही। सरल आडबरहीन भाषाशैली, लोकप्रिय छद और सामान्य लोक के अतिपरिचित अप्रस्तुत वातावरण आदि का प्रयोग इनकी सामान्य विशेषताएँ हैं, इस धारा की इन प्रवृत्तियो का अवश्य ही हिंदी की उपदेश-वैराग्य-प्रधान धारा पर प्रभाव पडा होगा, ऐसा इस साहित्य के आधार पर बहुत दृढता के साथ कहा जा सकता है।

---

१. हस्तलिखित प्रति अलीगंज (एटा) के श्री कामता प्रसाद जी जैन के पास है।

५

जैन अपभ्रंश : प्रबन्धात्मक रचनाएँ

अनेक अपभ्रंश कृतियाँ इस प्रकार की मिलती हैं जिनमें आदि से अंत तक एक ही कथा मिलती है। सर्गबद्धता मिलती है। एक या कभी कभी अनेक व्यक्तियो की कथा ग्रथित रहती है। काव्य के अनुरूप वर्णनादि भी मिलते हैं। प्रबन्ध काव्य की सभी विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप मे इन कृतियो में मिलती हैं। सर्ग या अध्याय के लिए ऐसी अपभ्रंश कृतियो मे सन्धि का प्रयोग मिलता है। प्रत्येक सन्धि अनेक कडवको से मिलकर पूर्ण होती है। कडवक के प्रधान भाग मे कोई एक छद प्रज्झटिका या अन्य रहता है और अंत में प्राय घत्ता या अन्य कोई छद अवश्य रहता है। सन्धियो में कडवको की संख्या एक समान निश्चित नही रहती है। सन्धि के प्रारम्भ मे ध्रुवक के रूप मे एक घत्ता प्राय रहता है जिसमे बहुत ही सक्षेप में सन्धि की कथा का सकेत रहता है। इन कृतियो का प्रधान स्वर धार्मिक है, किन्तु पुष्पदन्त जैसे कवियो की कृतियो में उच्च साहित्यिक छटा भी कम नही है। इन महाकाव्यो की भाषा साहित्यिक अपभ्रंश है। अपभ्रंश भाषा इन काव्यो मे अपनी उन्नततम अवस्था को पहुँची हुई दिखती है। भाषा, छद, कवित्व सभी दृष्टियो से यह रचनाएँ अपभ्रंश साहित्य के उत्कर्ष की सूचक हैं। इस धारा मे सबसे प्राचीन कवि स्वयभू हैं जिनकी कृतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं। स्वयभू की भाषा, तथा प्रौढता को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके बहुत पहले इस धारा का प्रारभ हुआ होगा, और अपनी कृतियो में उन्होने इस प्रकार के उल्लेख भी किए हैं।

स्वयंभू—स्वयभू ने अपनी कृतियो में अपने पूर्ववर्ती अनेक अपभ्रंश कवियो का उल्लेख किया है। यद्यपि इनकी कृतियाँ इस समय उपलब्ध नहीं हैं तथापि स्वयभू के उल्लेखो से यह स्पष्ट हो जाता है कि जडिल, चतुर्मुख, द्रोण आदि कवि स्वयभू के पूर्व अपभ्रंश में प्रबन्धात्मक काव्यो की रचना कर चुके

थे।[1] स्वयंभू के अभी तक तीन ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, और स्वयंभू छंद।[2]

पउमचरिउ (पद्मचरित)—जैन साहित्य में रामकथा की अविच्छिन्न धारा मिलती है। प्राकृत में विमलसूरि का 'पउमचरिय' तथा संस्कृत में रविषेणाचार्य का पद्मपुराण प्रसिद्ध प्रतिनिधि कृतियां हैं। स्वयंभू की कृति पांच कांडों में

---

१. छंदडिय दुवइ धुवएहिं जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय। रिट्ठणेमि चरिउ तथा स्वयंभू छंद मे चतुर्मुख ४.३, ७१, ८३, ८६, ११२, धूर्त ४.६ नाउरदेव ४९, धनदेव ४११, आर्यदेव ४.१३, छइल्ल ४१५, गोइन्द ४१७, १९, २१, २४, २६, शुद्धशील ४.१८, तथा जिनदास ४.२८ के पद्य उद्धृत किए हैं। कृष्ण कथा से संबंधित कुछ अन्य पद्य भी उद्धृत किए हैं जिनके रचयिताओं का नाम नहीं दिया है। लेकिन ऐसा लगता है कि वे प्रबन्धात्मक रचनाओं में से लिए गए हैं। वही, ८ १९ इत्यादि। जर्नल, बम्बई यूनी० नवंबर १९३६।

२. क. दे० प्रो० डा० हीरालाल जैन का लेख 'स्वयभू एन्ड हिज़ टू पोयम्स इन अपभ्रंश' नागपुर यूनीवर्सिटी जर्नल, अंक १, दिसंबर १९३५, पृ० ७०-८४।

ख. भारतीय विद्या वर्ष १, अंक ३, पृ० २५३-२९४ पउमचरिउ की प्रथम दो संधियां प्रो० मधुसूदन चिमनलाल मोदी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुई हैं।

ग. भा० वि० वर्ष १, अंक २ पृ० १५७-१७८ "चतुर्मुख स्वयभू अने त्रिभुवन स्वयभू'।

घ. वही, भाग २, अंक १, पृ० ५६-६१, 'चतुर्मुख और स्वयभू दो भिन्न कवि हैं।

ङ. तथा वही, भाग २, अंक ३, पृ० २४१-२६६ मे पं० नाथूराम प्रेमी ने दोनों कृतियों के प्रारम्भ तथा अन्त के कुछ अंश उद्धृत किए हैं, यही लेख उद्धरणों सहित 'जैन साहित्य और इतिहास,' बंबई १९४२ पृ० ३७०-३९५ मे प्रकाशित हुआ है।

च. अपभ्रंश पाठावली मे पृ० ३–८० मे पउम चरिउ तथा रिट्ठणेमिचरिउ से कुछ अंश प्रकाशित किए हैं, संस्कृत छाया सहित अहमदाबाद १९३५ ई०।

विभक्त है, विद्याधरकाड, अयोध्याकाड, सुन्दरकाड, युद्धकाड और उत्तरकाड। कृति ९० सन्धियो मे समाप्त हुई है कृति का परिमाण १२००० श्लोक के बराबर है। गुरु और आचार्यो को वदना करके कवि रामकथा प्रारभ करता है।

इय चउवीस वि परम जिण पणवेप्पिणु भावें।
पुणु आरंभिय रामकह, रामायण कावें। १.२

आगे कवि ने रामकथा की परपरा का उल्लेख किया है।

एह रामकहसरि सोहंती, गणहरदेवहि दिट्ठवहंती।
पच्छइ इंदभूइ आयरिए पुणु धम्मेण गुणालंकरिए।
पुणु पहवें ससाराराएं कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं।
पुणु रविसेणायरिय पसाए बुद्धिए अवगाहिय कइराएं। १.३

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि स्वयभू ने रविषेणाचार्य द्वारा ग्रहीत रामकथा-परपरा का अनुसरण किया है। मूलकथा का प्रारम्भ अन्य जैन कृतियो के समान ही हुआ है। मगधदेश के राजा श्रेणिक जिनवर से रामकथा के सबध मे लोक मे प्रचलित अनेक भ्रान्तियो का निराकरण कराना चाहते हैं। उनकी भ्रान्तियाँ इस प्रकार हैं :

जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ।
... .
किह तियमइ कारणे कविवरेण घाइज्जइ बालि सहोयरेण।

छ. स्वयभू छद के प्रथम चार अध्याय जर्नल अव् द रायल एशियाटिक सोसाइटी बाबे मार्च १९३५ मे तथा शेष चार जर्नल अव दि यूनीवर्सिटी अव् बाम्बे, नवबर १९३६ पृ० ४१-९३ में प्रकाशित हुए हैं सपा० प्रो० एच० डी० वेलंकर।

ज. पउमचरिउ तीन भागो मे प्रो० ह० भायाणी द्वारा संपादित होकर भारतीय विद्या भवन से प्रकाशित हो चुका है।

झ. कवि की रचनाओ से कुछ उद्धरण हिन्दी काव्य धारा मे दिए हैं, संपा० राहुल सांकृत्यायन, इलाहाबाद, १९४५।

ञ. पउम चरिउ का हिंदी अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित हो रहा है।

२. पउमचरिउ की प्रथम ३७ सन्धियो की हस्तलिखित प्रति लेखक को आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर से प्राप्त हुई थी।

किह वाणर गिरिवर उव्वहंति बंधेवि मयरहरु समुत्तरंति ।
किह रावणु दहमुहु वीसहत्थु अमराहिव भुववधण समत्थु ।
—इत्यादि १.१०

'यदि राम त्रिभुवन के ऊपर है या यदि राम के उदर मे तीनो लोक व्याप्त हैं तो रावण उनकी स्त्री को कैसे ले गया। स्त्री के कारण महोदर कपि के द्वारा वालि क्यो मारा गया। पर्वतो को उठाकर सेतु बाँध कर वानर कैसे पार हुए। दशमुख और वीस हाथो वाला रावण अमराधिप को बाँधने मे कैसे समर्थ हुआ।'

इसी प्रकार की कुछ और शकाओ के निवारणार्थ गोतम गणधर कथा आरभ करते है। सृष्टि वर्णन, जबूद्वीप की स्थिति, कुलकरो की उत्पत्ति, काल का उल्लेख करके अयोध्या मे ऋषभदेव की उत्पत्ति तथा उनके सस्कारादि और उनके जीवन की कथा दी है[1]। आगे इक्ष्वाकुवश, लका मे देवताओ, विद्याधरो के वशादि के वर्णन दिए हैं। और फिर जैन सप्रदाय मे प्रचलित परिवर्तनो के साथ रामकथा दी गई है। सभी प्रधान पात्र जिन भक्त हैं। कृति मे महाकाव्य के अनुरूप अनेक भव्य वर्णन है। स्वयभू की अलकार प्रियता का भी परिचय कृति के अनेक स्थलो से मिलता है व्यतिरेक का एक उदाहरण इस प्रकार है: 'क्या श्रेणिक त्रिनेत्र शिव है। नही नही वे विषमचक्षु हैं। क्या यगधर। नही नहीं वह एक पक्ष है। क्या दिनकर। नही नही वह डहनशील है . इत्यादि।'

किं तिणयणु ण णं विसमचक्खु, किं ससहरु णं णं इक्क पक्खु ।
किं दिणयरु नं नं डहणसीलु किं हरि न नं कम भुअणलीलु ।
किं कुंजरु नं नं निच्च मत्तु किं गिरि णं णं ववसायचत्तु ।
किं सायरु न नं खार नीरु किं बम्महु न नं हयसरीरु । १.६

कृति के पाच काडो की सधि सख्या इस प्रकार है विद्याधर काड १—२० सधिया, अयोध्या काड २२ सधियाँ, सुन्दरकाड १४ सन्धियाँ, युद्धकाड २१ सधियाँ, और उत्तरकाड १३ सधिया। कृति की अतिम आठ सधियाँ कवि के पुत्र त्रिभुव ने लिखकर जोड दी हैं।

रिट्ठणेमिचरिउ[2] (रिष्टनेमिचरित) अरिष्टनेमिचरित या हरिवंश-

---

१. पउमचरिउ संधि १-३ ।

२. सं० १६१५ की एक हस्तलिखित प्रति लेखक को भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना से प्राप्त हुई थी। तथा दूसरी प्रति, जो अधिक प्राचीन तथा शुद्ध है आमेर भंडार जयपुर से। कृति का संपादन प्रस्तुत लेखक कर रहा है।

पुराण[1] परिमाण मे पउमचरिउ से ड्योढा है[2]। कृति का प्रारभ नेमि तीर्थंकर की वदना से हुआ है। हरिवश की गहनता से चिंतित कवि को सरस्वती आकर धैर्य बँधाती हैं और उत्साहित होकर कवि हरिवश की रचना के लिए प्रस्तुत होता है, प्रसग की पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चिंतवइ सयंभु काइ करमि, हरिवंस महण्णउ के तरम्मि।
गुरुवयण तरंडउ लद्धु न वि जम्महो वि ण जोइउ को वि कवि।
णउ णाइउ वाहत्तरि कलउ एक्कु वि ण गंथु भोक्कलउ।
तहि अवसरि सरसइ धीरवइ करि कव्वु दिणमइ विमलमइ।

.. ..

पारंभिय पुणु हरिवंसकहा ससमय परसमय वियार सहा। १

'स्वयभू चिंता करते हैं, हरिवश महार्णव को कौन पार कर सकता है ? गुरुवचन नौका भी नही प्राप्त हुई, जन्म से भी किसी कवि को नही देखा। बाहत्तर कलाओ को नही जाना, न एक भी ग्रथ देखा, उसी समय सरस्वती ने धैर्य बधाया, कि दिनमति विमलमति। काव्य करो। और हरिवश कथा कवि ने प्रारभ की'। पउम चरिउ के समान हरिवश के प्रारभ में भी श्रेणिक ने गणधर से महाभारत की कथा के सबध मे अनेक शकाए की हैं।[2] कृति की प्रथम तेरह सन्धियो मे कृष्ण के जन्म, बाललीला, विवाह एव प्रद्युम्न आदि की कथाए हैं और नेमिजन्म कथा है। कवि ने इस कथाभाग को यादव काड नाम दिया है।[3] इन सन्धियो मे नारद का प्रवेश कलहप्रिय साधु के रूप में हुआ है। वे ही कृष्ण के अनेक विवाहों की तैयारी कराते हैं। शेष समस्त कृति मे महाभारत और हरिवश के आधार पर कथा मिलती है। कुरुकाड मे कौरव पाँडवो के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा की कथा और उनके परस्पर के वैमनस्य, युधिष्ठिर के जुए में सब कुछ हारने और पाडवो के द्वादश वर्ष वनवास की कथा है। कौरव पाँडवो मे आगे होने वाले युद्ध की पृष्ठभूमि इस काड मे पूर्ण रूप से कवि ने प्रस्तुत कर दी है। युद्धकाड में कौरव पाँडवो के युद्ध और कौरवो के पराभवका वर्णन है। कृति में

१. स्वयभू ने कृति का नाम हरिवंश भी दिया है।
'हरिवंस महण्णउ के तरम्मि' तथा 'पारंभिय पुणु हरिवंस कहा' संधि १।

२. पउमचरिउ मे १२६९ कडवक हैं, हरिवंश पुराण मे १९३७ कडवक हैं।

३. पउमचरिउ के समान 'रिट्ठणेमिचरिउ' को भी कांडो मे विभक्त किया है। यादवकांड मे १३ सन्धियाँ हैं, कुरुकाड मे १९ सन्धियाँ हैं और युद्ध कांड मे ६० सन्धियाँ हैं।

यत्र तत्र, कदाचित् समसामायिक प्रभावो के कारण, नवीन प्रसग भी मिलते हैं। एक स्थल पर कनक तॉत्रिक का प्रवेश इसी प्रकार का प्रसग है।[1]

हरिवशपुराण में कथा की वर्णनात्मकता का प्राधान्य है। युद्धकांड में युद्ध के अनेक वर्णन एक ही प्रकार के हैं। यत्र तत्र धार्मिक प्रसग भी हैं[2]। इस विशाल ग्रथ में कवि की प्रतिभा तथा काव्य वर्णन और सुरुचि का परिचय देनेवाले अनेक स्थल हैं। कवि की साहित्यिक कल्पना का वैभव इस प्रकार के एक वर्णन में देखा जा सकता है, वनवासी युधिष्ठिर का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

साहीण महागयतुरयथट्ट भायरकिंकर अक्खलिय पट्ट।
अपमेयइ चमरीचामराइं णिग्गलइ णिवायइं लयहराइ।
खज्जंति फलइ णिरुणिरुवमाइ पिज्जंति जलइ अमिओवमाइं।
अपमाण महामणिमहिहरेहिं रवि किरण णिवारिय तरुवरेहिं।
वण सइहिंमि णिम्मिय फुल्लगध वरकेसरधूसररायपंथ।
साहीणइ पण्णइ फुप्फलाइ सेवउ करंति सावयवलाइं।
सुप्पइं पल्लव पत्थरणे रम्मे ....२४-१७।

"राजा युधिष्ठिर की राज्यश्री मे 'स्वाधीन गज, तुरगो के समूह हैं और सिंहासनासीन राजा के सेवक भाई हैं। चमरी गौए अनुपम चामर धारिणी है, जो लतागृहो से निकलती है। निरुपम फलो को खाते है और अमृतोपम जल का पान करते हैं। अनेक महीधरो की अप्रमाण रत्नराशि उनका भडार है, वृक्ष रवि-किरणो का निवारण करते है। पुष्प सुगधि वन मे स्वनिर्मित है, वरकेशर से धूसरित पथ ही राजपथ है ।'

प्रकृति चित्रण में कही कही परपरानुसार केवल नामावली देकर ही कवि ने सतोप किया है, किन्तु छद की लय मे पर्याप्त सगीत प्रवाह है—

जत्थ रत्तदणा चंदणावंदणा, ताल हिंताल ताली तमालजणा।
हिंगु कप्पूर कक्कोलि एलाचवी, केयई अव्वई मालई माहवी।

---

१. सन्धि २८, दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए कनक कृत्या को सिद्ध करता है किन्तु कृत्या उसे ही नष्ट कर देती है।
द्रौपदी के स्वयवर मे मत्स्यबेध प्रतिज्ञा के स्थान पर धनुष चढाने की प्रतिज्ञा मे जैन सप्रदाय की अहिंसा का प्रभाव देखा जा सकता है।

२. यथा, सधि ३४ मे दुर्योधन को समझाते समय।

णीम णेवालिया सत्तली पाडली, रोहिणी राइणी तारणी पुष्फली।
चिंचिणी कंगुणी माहुलिंगी महू, दक्ख रुदक्ख योनक्ख रुक्खावहू। २६.४

कृति में जहाँ तक सभव हो सका है स्वयम्भू ने भावो का भी नरस चित्रण किया है। कथा के आग्रह और धार्मिक दृष्टिकोण के कारण ऐसे स्थल कम हैं। स्वयंभू की भाषा साहित्य, व्याकरण से अनुशासित अपभ्रंश है। जहाँ तहाँ ध्वयात्मक अनुरणनात्मक शब्दो के प्रयोग मिलते हैं जो अपभ्रंश कवियो की एक सामान्य विशेषता है। कहीं कही कम प्रचलित शब्दो के प्रयोग भी मिल जाते है।[1] स्वयभू की कृतियो में उनके प्रिय छद पज्झटिका का प्रयोग हुआ है,[2] अन्य छंद भुजगप्रयात, कामिनीमोहन,[3] नाराचक,[4] द्विपदी, हेला, धत्ता आदि के प्रयोग हुए हैं। स्वयभू ने छदशास्त्र पर कृति लिखी है। अत उनके छदो के निर्दोष होने का सहज अनुमान किया जा सकता है।

स्वयभू ने अपनी कृतियो में कुछ उल्लेख किए है जिनसे उनके संबंध में कुछ सूचनाए मिलती हैं। पउम चरिउ के प्रारम्भ में चतुर्मुख, दती और भद्र के काव्य कौशल की प्रशसा की गई है और उनके समान ही स्वयभू की प्रतिभा को बताया है और उनको एक व्याकरण का रचयिता भी कहा गया है।[5] इसी प्रकार का एक उल्लेख पउमचरिउ में त्रिभुवन के सबंध मे मिलता है।[6] यह उल्लेख प्रशसात्मक है और सभव है पीछे किसी कवि ने जोड दिए होगे। पउम-चरिउ में कवि ने अपने सबंध में कहा है कि वे मारुत और पद्मिनी के पुत्र थे, स्थूल काय, चौडी नाक और विरलदतवाले थे।[7] त्रिभुवन ने भी इसकी पुष्टि की है।[8] एक दो स्थलो पर स्वयभू की पत्नी के संबंध में भी उल्लेख मिलते

१. जैसे देहे जो जंतहो देहें गमइ सर, २१.७।
२. स्वयंभू ने पद्धडिया का स्वयं उल्लेख किया है छंदडिय दुवइ धुवएहिं जडिय। चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय संधि १
३. रिट्ठ० २६.४।
४. वही २९.७।
५. ना० यू० ज० वही, पृ० ७९।
६. वही, पृ० ८०.८१।
७. पउमिणि जणणि गब्भसंभूएं मारुयएव-रूव-अणुराएं।
अइतणुएण पईहरगत्तें छिव्वर णासें पविरल दंतें। पउम० १.३।
८. मारुयसुय-सिरि वइराय-तणय-कय-पोमचरिय-अवसेसं।
ना० य० अ० पृ० ८१।

हैं जिनमें कहा गया है कि उन्होंने अयोध्या कांड की रचना में स्वयभू की सहायता की थी, उनका नाम आदित्य देवी था।[1] त्रिभुवन कवि के पुत्र का नाम था और कवि की अपूर्ण कृतियो को त्रिभुवन ने पूर्ण किया था अथवा कुछ सन्धियाँ जोड दी थी। वे स्वयभू के छोटे पुत्र थे। कुछ उल्लेखो से प्रतीत होता है कि वे कवि के एकमात्र पुत्र थे।[2] अपनी दो वृहत्कृतियो की पुष्पिकाओ मे कवि ने अपने आश्रयदाताओ के भी नाम दिए हैं। पउमचरिउ की रचना धनजय तथा हरिवश की रचना धवल के आश्रय में की थी। इन व्यक्तियो के साथ राजादि किसी विशेषण का उल्लेख नही है अत यह कोई श्रेष्ठि रहे होंगे। इतिहास में इनका कोई उल्लेख नही मिलता। इसी प्रकार त्रिभुवन के आश्रयदाता 'वदइय' के भी सबध मे इतिहास मौन है। त्रिभुवन की कोई स्वतत्र कृति नही मिलती, उन्होंने अपने पिता की सभी रचनाओ मे कुछ अश अवश्य जोडे थे। स्वयभू की अनुपलब्ध कृति 'पचमीचरिउ' मे भी उन्होंने कुछ अश जोड़े थे[3]। स्वयंभू, उनकी पत्नी और पुत्र सभी कविप्रतिभा सपन्न थे। त्रिभुवन ने स्वयभू की अनेक कवि उपाधियो का उल्लेख किया है जैसे छदचूडा-

---

१. धुवरायधत इयलु अप्पणत्ति सुयाणुपाढेण। णामेण सामियव्वा सयभु घरिणी महासत्ता। तीए लिहावियमिणं वीसहिं, आसासएहिं पडिबद्ध। सिरि विज्जाहर कड कंडंपिव कामएवस्स। पउम० संघि २० का अत तथा आइच्चु-एवि पडिमोवमाए आइच्चबियाए। बीयउ उज्झाकंडं सयंभु घरिणीए लेहवियं पउमचरिउ सधि ४२

इन दो उल्लेखो के अनुसार दो भिन्न नाम मिलते हैं संभव है उनके दो नाम ही हों।

२. वदइआसिय-महकइ-सयंभु लहु-अंगजाय विणिवद्धो।

तथा-तिहुयण-सयंभु णवरं एक्को कइराय-चक्किणुप्पण्णो। ना० यू० ज० पउमचरिउ-भूमिका पृ० १२३।

पउमचरिउ की अतिम आठ सन्धियाँ ८३-९० और हरिवश की ९९-१०८ सधियाँ त्रिभुवन रचित हैं जैसा उनकी पुष्पिकाओ से ज्ञात होता है।

हरिवंश मे अंतिम चार सन्धियाँ १०९-११२ यशकीर्ति रचित हैं और सधि ९९ की पुष्पिका मे धवल का भी नाम मिलता है अत. संभव है यह उनकी रचना हो।

३. दे० ना० यू० ज० वही, पृ० ८०-८१।

मणि,[1] कविराज, तथा कविराज चक्रवर्ती। स्वयभू महाकवि थे किन्तु अपने सबध मे उन्होने जो उल्लेख किए है उनसे उनकी महज्जनोचित विनम्रता, सरलता का आभास मिलता है[2]। स्वयभू के काल की सीमाएँ निश्चित करना बहुत कठिन नही है। व्यासादि के साथ स्वयभू ने भामह, दडी, बाण तथा श्रीहर्ष का भी स्मरण किया है[3]। और, अपभ्र श के कवियो मे से पुष्पदन्त और हरिषेण ने स्वयभू का आदरपूर्वक उल्लेख किया है। पुष्पदन्त का समय ई० दसवी शती है[4] और हरिसेण ने धर्म-परीक्षा की रचना स० १०४० वि० मे की[5]। अत स्वयभू का समय नागानद-कार श्रीहर्ष (८वी शती ई०) और पुष्पदन्त के बीच मे ठहरता है। पुष्पदन्त के समय से उनका काल लगभग एक शती पूर्व अवश्य होना चाहिए और इस प्रकार ८०० और ९०० ई० के बीच मे स्वयभू वर्तमान रहे होगे।

पुष्पदन्त—महापुराण, णायकुमारचरिउ (नागकुमारचरित) और जसहर-चरिउ (यशोधर चरित) तीन कृतियाँ पुष्पदन्त की प्रकाशित हो चुकी है[6]।

महापुराण—दिगंबर जैन सप्रदाय मे महापुराणो का स्थान बहुत ऊँचा है। पुष्पदन्त ने महापुराण मे चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बल-देव तथा नौ प्रतिवासुदेवो की कथा प्रस्तुत की है[7]। इस वृहत् ग्रथ के प्रथम भाग

---

१. छदशास्त्र की स्वयंभू ने रचना भी की है।
२. यथा, बुहयण सयंभु पइ विण्णवइ, मइ सरिसउ अण्णु णत्थि कुकइ। पउम० १.३
३. यथा, इदेण समप्पिउ वायरणु, रसु भरहे वासें वित्थरणु।
पिंगलेण छद पय पत्थारु। भम्महं दंडिणिहिं अलंकारु।
वाणेण समप्पिउ घणघणउ। तं अक्खरडंबरु अप्पणउ।
सिरि हरसेंणि यणिउणित्तणउ.......... हरिवंश० १.२
४. दे० आगे पुष्पदत का विवरण।
५. दे० आगे धर्म परीक्षा का विवेचना।
६. महापुराण तीन खंडो मे डा० पी० एल्० वैद्य द्वारा संपादित होकर माणिक्य-चद्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला मे प्रकाशित हुआ है बबई, १९९३, १९९६ और १९९८ वि०; नागकुमारचरित देवेन्द्रकीर्ति जैन सीरीज मे प्रो० हीरालाल जी जैन द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुआ है; करजा १९३३ ई०; यशो-धरचरित सपा० डा० पी० एल्० वैद्य, करंजा १९३१ ई०।
७. जैन सप्रदाय मे ६३ महापुरुष माने गए हैं। शीलांक आदि ने ९ बलदेवो की

आदिपुराण की ३७ सन्धियो मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभ तथा प्रथम चक्रवर्ती भरत की कथा है। भूमिका के रूप मे कृति के प्रारभ मे जिन वदना, दुर्जन, सज्जन स्मरण है। दुर्जनो की निंदा के डर से कवि कविता नही करना चाहता था किन्तु अपने प्रिय आश्रयदाता भरत के आग्रह से उसने कविता प्रारभ की। श्रेणिक महाराज (बिंबिसार) की जिज्ञासा के फलस्वरूप महावीर के परमशिष्य गौतम गणधर पुराण कहते है। ऋषभ का जन्म अयोध्या मे होता है, अनेक कलाएँ मनुष्य को पहिले पहल उन्होंने सिखाई। फिर उनके त्याग, तपस्या और अत मे कल्याण प्राप्त करने के, भव्य कवि प्रतिभा की पूर्ण गरिमा से युक्त वर्णन है आदि पुराण मे कवि को कथा कहने की आतुरता नही है अत मानवीय रस और कल्पना का वैभव इस अश मे बहुत मिलता है। आगे की ३१ सन्धियो (३८-६८) मे अजितादि तीर्थकरो की कथाएँ हैं। यह अश कथात्मक है। सधि ६९-७९ तक आठवें बलदेव, वासुदेव प्रतिवासुदेव राम, लक्ष्मण और रावण की कथा है। रामादि के पूर्व जन्मो का कवि ने वर्णन किया है। सीता विद्याधर रावण और उसकी पत्नी मदोदरी की पुत्री थी। राम लक्ष्मण के अनेक विवाह होते है। सीता को रावण वाराणसी से अपहृत करता है जब उनका राम से विवाह हो चुका था और वे क्रीडा कर रहे थे। वानर रूपधारी विद्याधरो की सहायता से राम रावण पर चढाई करते हैं और लक्ष्मण के हाथ से रावण मारा जाता है। राम लौटकर राज्य सँभालते हैं। हिंमारत लक्ष्मण कालान्तर मे मरकर नरक जाते है, और राम जिन भक्ति के प्रताप से केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करते है और कालान्तर मे लक्ष्मण भी शिव पद प्राप्त करते हैं।

बीच मे नमि की कथा (सधि ८०) के पश्चात् नेमि तीर्थंकर तथा नवे बलदेव और वासुदेव श्रीकृष्ण और बलराम की कथा है। (सधि ८१-९२) कौरव, पाडव और यादवो का वर्णन करते समय व्यास को अलीक कवि कहा है। कस और उग्रसेन मे वैर पूर्व जन्म के कर्मो के अनुसार था। कृष्ण की बाल लीला का कवि ने सक्षिप्त किन्तु आकर्षक वर्णन किया है। कृष्ण का पूरा चरित्र महापुराण मे काव्य की दृष्टि से उत्कृष्टतम अश कहा जा सकता है। कृष्ण अत मे विरक्त होकर तपस्या करते है और एक भील के बाण से मारे जाते हैं। प्रेम विह्वल बलदेव कृष्ण को स्नान कराकर वस्त्रो से सुसज्जित कर कधे पर रखकर छै महीने तक उन्मत्त की तरह भ्रमण करते रहते हैं। बोध होने पर कृष्ण

गणना महापुरुषो में नहीं की। पुष्पदन्त के पुराण का पूरा नाम 'तिसट्ठि-महापुरिसगुणालकार' है।

की दाह क्रिया करते हैं। हिंसा करने के कारण कृष्ण की आत्मा को कुछ दिन नरक में जाना पड़ता है। बलदेव स्वर्ग प्राप्त करते हैं। कृष्ण की मृत्यु से पांडव दुःखित होते हैं और तप करते हुए सद्गति प्राप्त करते हैं। कृति की अन्तिम संधियों में पार्श्व नाथ (९३-९४), महावीर (९५-९७), जम्बूस्वामी (१००), प्रीतिंकर (१०१) की कथाएँ हैं। अन्तिम संधि में महावीर के निर्वाण का वर्णन और ग्रंथकार की अन्तिम प्रशस्ति है।

महापुराण में प्रत्येक महापुरुष की कथा अपने आप में पूर्ण है। आदिपुराण स्वतन्त्र कृति जैसी है और इसी प्रकार रामायण और हरिवंश की कथा से सम्बन्धित अंश भी अपने आप में पूर्ण हैं। पुष्पदन्त ने अपनी कृति को 'महापुरिसगुणालंकार' कहने के साथ 'महाकाव्य' भी कहा है।[1] इस विशाल कृति में प्रबन्धकाव्य—महाकाव्य—की शृंखला—बद्धता नहीं मिलती और पौराणिकता प्रधान है किन्तु जीवन का कदाचित् ही ऐसा कोई पक्ष हो जिसके संबंध में पुष्पदन्त की सरस अभिव्यक्ति न मिलती हो। परम्परागत कथा में जहाँ कहीं भी कोई सरस स्थल आया है पुष्पदन्त ने उसे अपनी कवित्व शक्ति से मनोरम बनाकर ही रखा है। ऐसे प्रसंगों में प्रधान स्थान नगर, प्रदेश, वन प्रान्तादि के वर्णनों का है। महापुरुषों के जन्मस्थानों, विजय यात्राओं, रणभूमियों, मृगयाभूमि, और राजा तथा रानियों के रूप वर्णनों में पुष्पदन्त ने अपनी कवि-कल्पना और प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। इनमें से प्रकृति से संबंधित वर्णनों में कवि अधिक तन्मय हुआ दिखता है। साहित्यिक कल्पना-वैभव के साथ ग्राम्य सरलता का मौलिक योग पुष्पदन्त के वर्णनों की एक असामान्य विशेषता है। मगधदेश के वर्णन से कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं:

सीमारामासामहिँ, पविउलगामहिँ गज्जंतहिँ धवलोहहिँ।
सोहइ हलहरसत्थहिँ दाण समत्थहिँ, णिच्चंचियणिल्लोहहिँ॥
अंकुरियइं णवपल्लवघणाइं कुसुमियफलियइं णंदणवणाइं।
जहिँ कोइलु हिंडइ कसणपिंडु वणलच्छिहे णं कज्जलकरंडु।

.. .. ..

जहिँ उच्छुवणइं रस गब्भिणाइं णावइ कव्वइं सुकइहिँ तणाइं।
तुज्झंत महिसवसहुच्छवाइं संथासंथियमंथणि रवाइं।
चवलुद्ध पुच्छ वच्छाउलाइं कीलिय गोवालइं गोउलाइं। १.१२।

---

१. संधियों की पुष्पिकाएं इस प्रकार हैं: 'इय महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकारे महाकइ पुप्फयंतविरइए महाभव्वभरहाणुमण्णिए महाकव्वे ...'

'वह मगधदेश सीमास्थित हरित उपवनो, ग्रामो और गर्जते हुए वृषभ समूहो तथा दान-समर्थ, निर्लोभ व्यक्तियो एव हल से युक्त कृषको से शोभित है।' नवअकुरित सघन पल्लवो से पुष्पित और फलो से युक्त नदन वन हैं, जहाँ कृष्ण वर्ण कोकिलें भ्रमण करती है मानो वन लक्ष्मी का काजल हो। जहाँ रस गर्भित ईख के वन हैं मानो सुकवि के सरण काव्य का विस्तार हो, उमग भरे महिष और वृषभ जहाँ लड रहे हैं, रव करती हुई गोपियाँ दही मथ रही हैं, तथा चपल पूँछो को उठाए हुए वछडे गोकुलो मे क्रीडा कर रहे हैं।'

इसी प्रकार के रम्य वन प्रदेशो, भयावह निविड वनो, नदी, पर्वतो के अनेक सजीव और आकर्षक वर्णन मिलते हैं।[1] ग्रामीण गोपियो और वन प्रदेश मे रहने वाले शवरो एव पशुओ के वर्णन भी सजीव हैं।[2] ऋतुओ के परिवर्तन के कारण जो एक नवीन उल्लास प्रकृति मे आता है कवि की सतर्क आँखो ने उस सौंदर्य को भी देखा है, शरद्, वसत, वर्षा[3] के अनेक स्वाभाविक वर्णन मिलते है, वसत का एक वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ होता है—'वीणा बज रही है, पान पिये जा रहे हैं, प्रिय मनुष्यो के चित्त स्वाधीन हैं, सप्त स्वर लहरी से युक्त गान हो रहा है,जो अविकसित किन्तु दृढ प्रेम को प्रसारित करता है। प्रचुर पुष्पित मल्लिकादाम मे बद्ध परिमल ने नायिकाओ को पोषित किया। गन्धादि द्रव्यो से लतामडप आर्द्र किया जा रहा है और नूपुरो के कलरव को सुनकर मयूर नृत्य कर रहे हैं।'[4]

उषाकालीन आशा भरे और अस्ताचलावलवी अवसादपूर्ण सूर्य की शोभा का भी कवि ने निरीक्षण किया है।[5] प्रकृति निरीक्षण के समान ही कवि ने मानव

---

१. ऐसे वर्णन महापुराण मे अनेक हैं, संधि १२.११, २०.५-६, ३८, ६-८, ४१.२, ४२.२, ४३.५, ४७ २, ४८.२, ४९ २, ५०.१, २, ९३.२, ९५.२, नदियो के वर्णन, सिंधु १३.९, गंगा वर्णन १२ ८, यमुना ९५.२, २९.७-८, समुद्र वर्णन १२ १३-१५।

२. गोपियो का वर्णन महा० १२.११, शवर० वही १२.१२ पशुओ के वर्णन मृग ५२.४, गजसिंह ९५ १२-१३।

३. वही, शरद वर्णन, १२.१, वसंत० ७० १४-१५, वर्षा ८५.१५-१६।

४. वही, ७०.१५।

५. वही, १६.२३-२६, १३.८, ७३.१-२।

सौंदर्य का भी निरीक्षण किया है। मरुदेवी,[१] सीता,[२] स्वयप्रभा,[३] तथा कृष्ण[४] के नखशिख वर्णन इस प्रकार के वर्णनो मे से कुछ है। मानव जीवन के अनेक प्रसगो का भी चित्रण मिलता है राज वैभव ,जन्मोत्सव, प्रेम प्रसग, बाललीला वर्णन[५] आदि जीवन के अनेक पक्षो का सरस निरूपण मिलता है। प्रेम-प्रसग मे चित्र दर्शन तथा प्रत्यक्ष दर्शन दोनो द्वारा प्रेम का प्रारभ दिखाया है। अनेक बार विवाहो के लिए हुए युद्धो का भी विस्तृत चित्रण कवि ने किया है।[६] जैन कवि प्रणय व्यापार को पूर्व जन्म के कर्मो से सबधित कर देता है। विवाह के अतिरिक्त देश या राज्य विजय के लिए भी युद्धो के वर्णन किए गए है।[७] इस प्रकार के वीर---रसात्मक स्थलो के साथ अत मे वीभत्स रस के स्थल भी मिलते है।[८] करुण रस के व्यजक अनेक मार्मिक प्रसग कृति मे मिलते है।[९] किन्तु सब से प्रधान भाव महापुराण मे निर्वेद है। तीर्थंकर, राजा सभी को जैन कवि पहिले ससार के सुख वैभव मे डूबा हुआ चित्रित करता है फिर किसी युक्ति द्वारा इन भोगलिप्त व्यक्तियो को ससार की क्षणिकता का आभास कराता है और शीघ्र ही वे सब से ममता तोड कर अपने अपराधो को क्षमा कराते हुए तथा सब के अपराधो को भुलाते हुए परलोक-चिंता-रत होकर वैराग्य धारण करते हैं। इस प्रकार समस्त महापुराण के प्रमुख चरित्रो का चित्रण शातरसपर्यवसायी है और इस शात रस के सहायक अनेक नीरस पौराणिक शैली मे रचित काव्यरस-हीन प्रसगो की कवि ने सृष्टि की है।

---

१. महा० २.१५-१६। २. वही, ७०.१०-११।

३. वही, ५१ ६। ४. वही, ८५.२१।

५. ऋषभदेव तथा कृष्ण की बाललीला के वर्णन संक्षिप्त किन्तु सुन्दर हैं। महा० ३ ४-५, तथा ८५.६।

६. चित्रदर्शन से प्रेम की उत्पत्ति के लिए श्रीमती और वज्रजंघ का प्रसंग देखा जा सकता है संधि २३.४। इन विवाह के लिए हुए युद्ध का वर्णन संधि २८, ५१-५२।

७ भरत की दिग्विजय के सबंध मे हुए युद्ध संधि १७-१८, राम-रावण-युद्ध सधि, ७६, कृष्ण पराक्रम सधि ८६।

८. यथा संधि ५२ १६, ७७ १२ इत्यादि।

९. रावण की मृत्यु पर, कृष्ण की मृत्यु पर बलदेव की दशाआदि का चित्रण करुण रसात्मक स्थल हैं।

पुष्पदन्त की कृति मे कही वर्णनात्मक सरल शैली और कही अलकारो से युक्त चमत्कृत शैली मिलती है। अनेक स्थलो पर अस्वाभाविकता की सीमा तक पहुँचते हुए श्लेष, यमकादि शब्दालकारो का पुष्पदत ने प्रयोग किया है।[1] अर्था-लकारो मे सादृश्यमूलक अलकार कवि के प्रिय अलकार हैं। अनेक स्थलो पर कवि-परपरा द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतो के अतिरिक्त पुष्पदन्त ने नवीन अप्रस्तुतो का भी प्रयोग किया है। दो एक उदाहरण देखे जा सकते है —

त णरणाहे वयणु समत्थिउ। खिच्चहु उप्परि घिउ ओमत्थिउ। २४.११

'तव राजा के द्वारा वचन समर्थित हुआ जैसे खिचडी के ऊपर घृत डाला गया हो।'

महि मयणाहिरइयरेहा इव बहुतरग जरहयदेहा इव। ८५.२।

'यमुनापृथ्वी पर मृगनाभि कस्तूरी की रेखा के समान है और अनेक तरगें वृद्धावस्था की झुरियो के समान हैं।'

इसी तरह अनेक स्थलो पर सुन्दर सजीव सुभाषितो का प्रयोग किया है—यथा—

वियलइ जोव्वणु णं करयलजलु णिवडइ माणुसु णं पिक्कउ फलु। ७ १.८।

'अजली के जल की भाँति यौवन विगलित होता है तथा पके फल की भाँति मनुष्य निपतित होता है।'

फणि चरणइं जगि को अहिणाणइ परमत्थेण धम्मु को जाणइ। २२.१८ ६।

'ससार मे सर्प के पैरो को कौन जानता है' इसी प्रकार परमार्थ से धर्म को कौन जानता है। इसी प्रकार 'गर्दभ गर्दभ है, मनुष्य मनुष्य है, दुष्कृत वश और का और नही हो सकता'[2] जैसी अनेक लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई है। पुष्प-दन्त ने यत्र तत्र काव्य के सबध मे जो उल्लेख किए है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे काव्य मे अलकारो के पक्षपाती थे[3]। किन्तु साथ ही काव्य रस को भी महत्व देते थे।[4]

---

१. दे० १.१३, ८७, ४७.१, ५८.२१, ८१.१ इत्यादि।

२. वही, ९३.६ और इसी प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं यथा २७.१, मे अरघट्ट की उक्ति, ३१.१० मे मकडी के जाले की, ३२.२० मे भी सींग से दूध न निकलने की आदि।

३. यथा, णिरलंकारी कुकइहि वाणि व० ८७.१, सालंकारी णं वरकइ कह। २८.१२।

४. कइ कव्वरसु व जगु पियइ ताम ८.१२, णं कइकयाइं सरसइं पयाइं। ९३.३ आदि।

महापुराण की भाषा आदर्श साहित्यिक अपभ्रंश है। देशी शब्दों तथा ध्वनि-मूलक शब्दों के प्रयोग यत्र तत्र मिल जाते हैं।[1] काव्यात्मक वर्णनों मे भाषा का रूप एक प्रकार का मिलता है तथा सरल वर्णनों मे अपेक्षाकृत सरल रूप मिलता है।

महापुराण मे छंदों का बडा ही आकर्षक प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं प्रसग के अनुकूल छदों के प्रयोग मिलते हैं। अपूर्व सगीत और लय से युक्त अनेक छदों का प्रयोग हुआ है। छद की इकाई कडवक है। प्रत्येक कडवक मे छद के दो चरणों को पूर्ण छद मान कर प्रयोग हुआ है। सधि के प्रारम्भ मे सर्वत्र एक ध्रुवक का प्रयोग मिलता है जो दुवई या घत्ता छद मे मिलता है। इस ध्रुवक मे सधि की कथा का सक्षेप मे सकेत रहता है। अन्त्यनुप्रास का प्रयोग सभी छदों मे मिलता है चाहे मात्रिक छद हो या वर्ण वृत्त। सबसे लघुछद पाँच मात्राओं का मिलता है[2] तथा सबसे दीर्घ छद दडक है जिसका प्रत्येक चरण ८८ मात्राओं का है।[3] कडवक के प्रधान भाग मे चतुष्पदी वर्ग के छदों के अतिरिक्त द्विपदी वर्ग के छदों का भी प्रयोग मिलता है। पुष्पदन्त के अधिकाश छद मात्रिक हैं, और लय तथा सगीत से युक्त हैं। पुष्पदन्त ने एक स्थान पर मात्रिक छदों के प्रति अपना मोह भी प्रकट किया है।[4]

णायकुमार चरिउ (नागकुमार चरित)—प्रस्तुत कृति नौ सन्धियों मे समाप्त हुई है। कृति मे श्रुतपचमी के महत्त्व को बताते हुए मगध के राजा जयन्धर के पुत्र की कथा है। जयन्धर के पुत्र को नागों ने पाला था इसी से उसका नाम नागकुमार पडा। नागकुमार अनेक विवाह करता है और अत मे अपनी पत्नियों सहित श्रुतपचमी का फल सुनता है और व्रत करता है। अत मे तपस्वी होकर मोक्ष प्राप्त करता है। धार्मिक वातावरण को लिए हुए कृति प्रेमकथा कही जा सकती है। जिसमे नायक के अनेक विवाहों तथा प्रेम के वर्णन है। राजा जयधर और

---

१. कुछ देशी शब्द उद्धृत किए जा सकते हैं झेंदुअ १.१६ कन्दुक, सेरिह महिष २.१८, छुड्डछुड्ड २.१९ इत्यादि तथा ध्वनिमूलक। शब्द, झसं, झलझलइ ३.२०, गुलगुलंत ७८.१७ इत्यादि।

२. वही, सधि ५६.९ हेमचंद्र ने इसको रेवका द्विपदी नाम दिया है छंदोनुशासन ७.५०।

३. वही, सधि ८९.५.११।

४. वही, कइ कव्वु त कयमत्तापवाणु ७३.२९।

मिलती है जिसमें कृति का रचनाकाल ९९२ कार्तिक अमावस दिया है।[१] कवि ने अपने को जिनसेन का शिष्य बताया है।

सिरि माहवसेणु महाणुभाउ, जिणुसेणुसीसु पुणु त सु जाउ।
तसु पुव्वसिणेंहि पउमकित्ति उप्पण्णु सीसु जणु आसुचित्ति।

प्रशस्ति० पृ० १२८।

धवल—धवल की विशाल अपभ्रंश कृति 'रिट्ठणेमिचरिउ' (हरिवंश-पुराण) मे १२२ संधियाँ हैं जिनका परिमाण १८००० ग्रंथ के लगभग है।[२] कृति की प्रारम्भिक प्रस्तावना मे रचयिता ने अनेक प्राचीन ग्रंथ-रचयिताओ का उल्लेख किया है।[३] अपनी नम्रता प्रकट करते हुए कवि ने हरिवंश के रचयिताओ की परंपरा का उल्लेख किया है 'वीर जिनेन्द्र ने इसको प्रारंभ मे कहा था, फिर क्रमश गोतम, सुधर्म आदि द्वारा होती हुई जिनसेन तक परंपरा आई। जिनसेन द्वारा प्रकाशित शास्त्र को अंबसेन ऋषि ने धवल को प्रदान किया।[४] इसी प्रसंग मे कवि ने कथावस्तु के भी संक्षिप्त संकेत दिए हैं।[५] पुराण के प्रकाशित उद्धरणो

१. गथा इस प्रकार है—णवसयणउवाणुइए कत्तिय अमावस दिवसे।
लिहिय पासपुराण कइणाइह पउमणामेण।
कृति की दो हस्तलिखित प्रतियो मे से एक १४९४ सं० की हैं (दे० प्रश० स० पृ० १२९) अत. कृति निश्चित ही काफी पुरानी है। डा० हीरालाल जैन कृति का रचनाकाल शक सं० ९९९ मानते हैं। ना० प्र० प० वही।

२. कैटलाग अव् संस्कृत एंन्ड प्राकृत मन्यूस्क्रिप्ट्स् इन द सी० पी० एन्ड बरार पृ० ७१६ तथा ७६२-७६७, तथा भूमिका पृ० ४८-४९।

३. कुछ नाम इस प्रकार हैं वीरसेन, (सम्यक्त्वयुक्त सरागउ), देववंदि, (वल-सुउ) महसेन, (सुलोचना चरितकार) रविषेण (पद्म चरित के रचयिता) हरिवंशकार जिनसेन, वरागचरितकार जडिल, अनंगचरितकार दिनकरसेन, पाइर्व चरितकार पद्मसेन, अंबसेन, धनदत्त (चंद्रप्रभचरित के रचयिता) ऋषभचरितकार विष्णुसेन, सिंहनंदि (अनुप्रेक्षाकार) सिद्धसेन, रामनंदि (जिनशासन से संबंधित अनेक आख्यानों के रचयिता) वीर चरितकार असगमहाकवि, श्वेताम्बर कवि गोविंद (सनत्कुमारचरितकार), जय धवलाकार श्रावक जिनरक्षित, सालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, सेढ महाकवि (पउमचरिउकार)।

४. वही, पृ० ७६५ कडवक ५।

५ वही, पृ० ७६६ कडवक ६।

के आधार पर कहा जा सकता है कि पद्धडियाघत्ता छंद शैली का ही कृति मे अनु-सरण किया गया है ।

कवि ने कृति मे अपने संबंध मे जो सूचनाए दी है उनसे ज्ञात होता है कि उनके पिता माता का नाम क्रमश सूर और केसुल्ल था तथा उनके गुरु अंबसेन थे। इनके पिता सूरब्राह्मण धर्मानुयायी थे। धवल जैन हो गए थे।[१] प्रत्येक संधि के अंतिम पद्य मे कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया होगा ऐसा संधि १२२ के अंतिम पद्य से ज्ञात होता है।[२] कवि ने रचना तिथि का या अपने काल का निर्देश नही किया है। जिनसेन (७८३ ई०)[३], रविषेण (६३४ वि० स०)[४] तथा जडिल या जटासिंहनंदि (७वी शती ई०)[५] के उल्लेखो के आधार पर धवल का समय आठवी शती के पश्चात् ठहरता है। असग का काल दशवी शती प्रतीत होता है[६] इस प्रकार धवल का समय दशवी या ग्यारहवी शती ई० हो सकता है।

धनवाल—श्रुतपंचमी व्रत के फल के दृष्टांत के रूप मे रचित धनवाल की कृति भविसत्तकहा (भविष्यदत्त कथा) सब से प्रथम सुसंपादित जैन अपभ्रंश कृति है।[७] कवि ने प्रारंभ मे ही कृति की वस्तु का निर्देश इस प्रकार किया है। 'पाप-कलंक-मल से रहित जिनशासन का सार सम्यक्त्व विशेष श्रुतपंचमी का फल सुनो।'[८] बुधजनो, दुर्जनो का स्मरण करके अत्यंत विनय प्रदर्शित करते हुए कवि ने कथा प्रारंभ की है। श्रेणिक राज के प्रश्न करने पर गौतम गणधर ने श्रुत-

---

१ कटेलॉग सी०पी० पृ० ७६५ कडवक ६।

२. वही०, पृ० ७६७।

३. प्रेमी० जै० सा० इ० पृ० ४२३।

४. वही कैटेलॉग सी० पी० पृ० ७६२।

५. वरांगचरित, बंबई १९३८ भूमिका पृष्ठ २२।

६. जिनरत्नकोश पृ० ३४२, वर्धमान चरित की रचना असग ने सं० ९१० मे की।

७. कृति के दो सुन्दर संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं :
   १. डा० हेमर्न्नि याकोबी द्वारा संपादित होकर विद्वत्तापूर्ण भूमिका तथा जर्मन गद्यानुवाद सहित, म्युनशन, १९१८ ई०।
   २. दलाल और प्रो० गुणे द्वारा संपादित होकर बडौदा से प्रकाशित १९२३ ई०।

८. जिण सासणि सारु, णिधुय पावकलंकमलु।
सम्मत्तविसेसु निसुणहुं सुयपंचमिहि फलु। १.१.१-२।

पचमी फल की व्याख्या की और उसी प्रसग मे यह कथा कही गई है। धर्म के आवरण से ढकी यह सुन्दर प्रेमकथा इस प्रकार है गजपुर के राजसेठ धनपाल और उसकी पत्नी कमलश्री का पुत्र भविष्यदत्त था। पूर्वजन्म के कर्मो के फल-स्वरूप कमलश्री पति उपेक्षिता होकर अपने पुत्र को लेकर पिता के घर चली जाती है। धनपाल सरूपा नामक एक दूसरी रूपवती स्त्री से विवाह कर लेता है, उससे एक पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम बधुदत्त रखा जाता है। वयस्क होने पर वह व्यापार के लिए कचन-द्वीप जाने को प्रस्तुत होता है। अन्य अनेक व्यापारियो को उसके साथ जाता देखकर माता से आज्ञा लेकर भविष्यदत्त भी उसके साथ चलने को प्रस्तुत होता है। बन्धुदत्त की कुटिल माता अपने पुत्र को भविष्यदत्त को समुद्र मे फेंक देने की सलाह देती है। और इसके विपरीत कमलश्री अपने पुत्र को सदुपदेश देती है। समुद्रतट पर पहुँच कर वे जलयानो मे यात्रा करते है। दुष्पवन नौकाओ को मैनाक द्वीप मे छोड देता है। भविष्यदत्त मैनाक द्वीप के भयावह वन मे पुष्प चयन करता हुआ भीतर चला जाता है, इतने मे बधुदत्त साथियो को लेकर आगे बढ जाता है। (सधि १-३)।

अकेला भविष्यदत्त दु खित होकर द्वीप मे परिभ्रमण करता हुआ एक निर्जन नगर मे पहुँचता है। राजप्रासाद, राजसिंहासन, शस्त्रागार सब सूने मिलते हैं, एक जिन मदिर मे वह पहुँचता है और चद्रप्रभ जिन की पूजा करता है (४) वह वही सो जाता है। इसी बीच यक्षराज मणिभद्र उसकी सहायतार्थ सकल्प करता है। जागृत होने पर वह अव्यक्त आदेशानुसार दूसरे कक्ष मे जाकर विजन प्रासाद मे एक अपूर्व सुदरी को देखता है। भविष्यदत्त का वह स्वागत करती है और असुर द्वारा नगरविध्वस होने का वृत्तान्त कहती है। वह भविष्यदत्त से उस द्वीप को शीघ्र छोड कर चलने का प्रस्ताव करती है। कुछ दिन पश्चात् वह नगर विध्वसक निशाचर प्रकट होता है। पूर्व जन्म की मित्रता के कारण वह नगर का पुर्नानिर्माण करके भविष्यदत्त का उस कुमारी से परिणय करा देता है। वर-वधू चद्रप्रभ जिनकी पूजा करते है और बारह वर्ष सुखपूर्वक वे वहाँ व्यतीत करते हैं (५)।

पुत्र की मगलकामना के लिए इधर कमलश्री श्रुतपचमी व्रत का अनुष्ठान करती है। माता की याद करके भविष्यदत्त प्रभूत रत्नादि और अपनी पत्नी के साथ तिलक द्वीप से चलने की तैयारी करता है इसी अवसर पर बधुदत्त और उसके साथी जलपोतो के ध्वस होने पर अत्यत दीन दशा मे वहाँ आ पहुँचते हैं। भविष्य-दत्त को सपन्नावस्था मे देखकर वह लज्जित होता है। भविष्यदत्त उन सबका

सत्कार करता है। सब प्रसन्नमन चलने को प्रस्तुत थे। भविष्यदत्त पूजा के लिए गया था कि उसे छोडकर बधुदत्त सबको लेकर चल देता है। मार्ग मे वह भविष्यानुरूपा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है, भयकर वातचक्र जलपोतो को उडा ले जाता है। किसी प्रकार बधुदत्त और व्यापारी लोग हस्तिनापुर पहुंचते है (६-७)। बन्धुदत्त भविष्यानुरूपा को अपनी पत्नी बताता है और उसका विवाह निश्चित हो जाता है। उधर खिन्न भविष्यदत्त को पूर्व जन्म की मैत्री के कारण यक्ष मणिभद्र गजपुर पहुँचा देता है। वह सब कथा माता से कहता है। रहस्योद्घाटन होने पर बधुदत्त और उसकी माता सरूपा को कारावास दड मिलता है, भविष्यदत्त अपनी पत्नी, पिता और माता सहित सुख से रहने लगता है, (८-११)।

भविष्यदत्त के अच्छे दिन आते है। राजा उसे युवराज बनाने की इच्छा प्रकट करता है और उससे अपनी पुत्री सुमित्रा का विवाह करना चाहता है। इसी समय राजा के पास पोदनपुर नरेश का दूत आता है, वह भविष्यानुरूपा और सुमित्रा के न देने पर युद्ध के लिए तैयार रहने की सूचना देता है। युद्ध होता है और भविष्यदत्त की सहायता से राजा की विजय होती है (१२-१५)। भविष्यदत्त को युवराज घोषित किया जाता है और सुमित्रा के साथ उसका विवाह भी हो जाता है। सुख पूर्वक वह रहने लगता है। वहाँ विमलबुद्धि नामक एक मुनि आते है, वे भविष्यदत्त के पूर्वजन्मो की कथा कहते है। अपने पुत्र सुप्रभ को राज्य देकर वह विरक्त हो जाता है। उसकी पत्नियाँ, और माता भी तप करती है। वह अनशन मरण द्वारा प्राण त्याग कर स्वर्ग प्राप्त करता है। श्रुतपचमी व्रत के महत्व का स्मरण कराकर कवि ने कृति को समाप्त किया है (१६-२२)।

भविष्यदत्त कथा का कथाप्रसग काफी लोकप्रिय और प्राचीन प्रतीत होता है। कृति के कथा भाग के तीन स्वतत्र खड लगते है यद्यपि कवि ने स्पष्ट विभागो का उल्लेख न करते हुए दो खडो की चर्चा की है।[२] कृति के पूर्वार्द्ध

---

१. याकोबी संस्करण, भूमिका पृ० १४।

२. वही, पृ० ८ तथा गुणे का संस्करण भूमिका पृ० ४ प्रथम भाग भविष्यदत्त के युवराज बनने तक, द्वितीय भाग पोदनपुर के राजा से युद्ध और विजय तक तथा तृतीय भाग मे पर्यवसान तक लिया जा सकता है। कवि ने दो खंडों की चर्चा की है।

बिहि खंडहिं बावीसहि संधिहि। परिचितिय नियहेउ निबंधिहि। २२.९।

कथा के लोक प्रचलित होने का कवि न संकेत किया है, यथा, १४.२०.१७।

मे दो विवाहो के दुष्परिणाम को दिखाते हुए कवि ने सरूपा और कमलश्री के द्वारा दो स्त्री प्रकारो का चित्रण किया है, एक कुटिल और दूसरी साध्वी। किन्तु कवि ने, उसकी कुटिल प्रकृति होते हुए भी, उसे कोमल भावनाओं से शून्य चित्रित नही किया है। एक स्थान पर वह अपनी दुष्टप्रवृत्ति पर पश्चात्ताप करती दीखती है, वात्सल्य से उसका हृदय उमड पड़ता है।[1] बन्धुदत्त तथा वणिक् वर्ग के लौट आने पर भविष्यदत्त को न देखकर गलदश्रु होकर वह अपने पुत्र से उसके विषय मे पूछती है।[2] अपने स्वभाव के अनुसार अंत मे उसे निराशा ही मिलती है। कमलश्री का चरित्र शुद्ध हृदय महिला का चरित्र है, पति के उदासीन होने पर उसकी करुण दशा विगलित करने वाली है।[3] कही भी उसके चरित्र मे दोष नही दिखता। बन्धुदत्त और भविष्यदत्त भी कुटिल और उदात्त प्रकृति के पुरुषो के दो प्रकार हैं। सम्पूर्ण कृति एक साहसी धार्मिक वणिक् पुत्र की धर्ममिश्रित प्रेम-कथा है। अपने सद्कर्मों के अनुसार भविष्यदत्त राजा होकर अत में मोक्ष प्राप्त करता है। धार्मिक वातावरण होने से पूर्वजन्म के सबध के कारण यक्षादि उसकी सहायता करते हैं। कृति के पात्रो को मनुष्य के कोमल हृदय से युक्त कवि ने चित्रित किया है। बन्धुदत्त भी अपने कपट व्यवहार पर पश्चात्ताप करता है।[4] कृति की समाप्ति धर्म न्याय के अनुकूल हुई है। धार्मिक प्रकृति के पात्रो का उत्तरोत्तर अभ्युदय दिखाया गया है।

भविष्यदत्त कथा में जहाँ तहाँ अनेक काव्यपूर्ण स्थल मिलते हैं, नगरादि के वर्णन, शृगारादि रसो के स्थलो पर कवि ने कवित्व शक्ति का पर्याप्त परिचय दिया है किन्तु कथाश की प्रधानता है। महाकाव्योचित वर्णनो की प्रधानता का स्थान यहाँ गौण है, फिर भी अन्य अनेक चरित काव्यो से प्रस्तुत कृति मे काव्य की मात्रा अधिक है। कथा के पात्र सभी कल्पित प्रतीत होते हैं। स्थानो के नाम

---

१. भविष्य० ६ ९.१०।
२. वही, ८ १४-१५।
३. वही, २.९।
४. वही, ६.२०.२१।
५. कुरु जांगल प्रदेश का रमणीय वर्णन १.५, धनपाल और कमलश्री के विवाह का वर्णन १.९, व्यापार यात्रा के लिए प्रस्तुत वणिको के उत्साह का चित्र ३.२०, उत्सुकता का वर्णन १५.१५, संध्या वर्णन ४.४, प्रभात वर्णन ४.५ इत्यादि।

अवश्य ठीक है। मैनाक द्वीप या तिलक द्वीप, सभव है, कोई व्यापारिक केन्द्र रहा हो। तिलकद्वीप की सुन्दरी भविष्यानुरूपा के लाने और पोदनपुर के राजा के उसे मांगने की कथा लोक मे प्रचलित रही होगी ऐसा लगता है। सभव है भविष्यदत्त के उत्कर्ष के लिए यह कथा जोडदी गई हो।

कृति मे छदो की वहुत विविधता नही है। मात्रा और वर्णवृत्त दोनो का प्रयोग मिलता है। कडवको के अत मे घत्ता का प्रयोग कवि ने किया है और कडवको के प्रवान अगो मे सखनारी (१४ ८), भुजगप्रयात (३ २६, ४ ३, ५ १७, १२ ३ तथा १५ १ और १५), लक्ष्मीधर (४ १३) चामर (४ ७) तथा मदार (४ १३) वर्णवृत्तो का प्रयोग हुआ है और मात्रा वृत्तो मे प्रज्झटिका, अडिल्ला, दुवई, मरहट्टा, सिंहावलोकन, काव्य, प्लवगम, कलहस तथा गाथा प्रयुक्त हुए है। घत्ता मे घत्ता छद विशेष के अतिरिक्त उल्लाला, अभिसारिका, मन्मथतिलक, कुसुमनिरन्तर, विभ्रमविलसितवदन, किन्नर मिथुनविलास, मर्कटी, सिंहावलोकन, तथा अडिल्ला प्रयुक्त हुए है। वर्णवृत्तो का प्रयोग कृति के ३५४ कडवको मे से केवल १० मे हुआ है। वर्णवृत्तो मे यमक का प्रयोग समान रूप से मिलता है। कडवको मे चरणो की सख्या समान नही है, दो चरणो की दश से सोलह पक्तियो के कडवक मिलते है, कृति मे ३० पक्तियो तक के कडवक मिलते हैं (१३ ३)। प्रत्येक सधि के प्रारभ मे घत्ता की दो पक्तियाँ ध्रुवक के रूप मे मिलती हैं जिनमे सधि की कथा का सक्षेप मे सकेत किया गया है, कुछ सधियो मे (१३,१४,१५) ध्रुवक के लिए दुवई का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार सधियो मे कडवक सख्या निश्चित नही है। कृति की भाषा साहित्यिक अपभ्रश है। हेमचद्र द्वारा उद्धृत दोहो से वह प्राचीन प्रतीत होती है।[1] देशी शब्दो और लोकोक्तियो[2] का प्रयोग प्राय मिल जाता है। स्वयभू और पुष्पदन्त के समान अलकृत शैली का भविष्यदत्त कथा मे प्रयोग नही मिलता।

कृतिकार ने प्रत्येक सधि की पुष्पिका मे अपना नाम धणवाल दिया है। सधि २२ मे कवि ने सूचित किया है कि धर्कट वणिक जाति मे माएसर और धनश्री देवी के पुत्र धनपाल ने सरस्वती से उत्पन्न इस चरित की २२ सधि और दो खडो में रचना की[3]। इस सूचना के अतिरिक्त केवल एक स्थल पर

१. याकोवी भूमिका पृ० ३, २४ और आगे, तथा गुणे पृ० ११ और आगे।

२. यथा, घनखुट्ट, उत्थल्लइ, कोक्कइ, खचइ, खलमलिय इत्यादि, लोकोक्तियाँ ३.१२.४, २ ७ ८।

३. वही, २२.९. ७-१०।

कवि ने अपने को सरस्वती का कृपापात्र और कहा है (१ ४ ५)। उनके, इस उल्लेख के आधार पर, पिता का नाम माएश्वर और माता का नाम धनश्री था। और वे धर्कट वैश्य थे।[1] कवि के काल का कोई निश्चित उल्लेख नही मिलता। भाषा के आधार पर याकोबी ने १०वी शती ईस्वी प्रस्तावित किया है।[2] कृति मे कुछ सकेतो से प्रतीत होता है कि धनपाल दिगम्बर जैन थे।[3]

हरिषेण—हरिषेण की अपभ्रंश कृति धम्मपरिक्खा (धर्मपरीक्षा)[4] ब्राह्मण धर्म पर कठोर व्यग्य कृति है। ब्राह्मण पुराणो और आख्यान काव्यो मे वर्णित कथाओ की असगतियो तथा दुर्बलताओ पर प्रहार करते हुए हरिषेण ने जैन धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कृति मे ११ सधियाँ है। प्रतीको का सहारा लेकर व्यग्य का स्वरूप इस प्रकार खडा किया है—वैजयती नगरी के राजा का पुत्र मनवेग बडा धर्म प्रवण था, उसके मित्र पवनवेग की ब्राह्मण धर्म मे बडी श्रद्धा थी। मनवेग अपने मित्र को अनेक ब्राह्मण पडित मडलियो मे ले जाता है और उनके पुराणादि धर्मग्रथो मे वर्णित मिथ्या प्रसगो[5] पर शास्त्रार्थ करके

---

१. धर्कट जाति वैश्यो की एक प्रधान शाखा रही है। प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४६८।

२. भूमिका पृ० ६, इस मत का डा० गोपाणी ने खडन किया है। ज्ञान पंचमी कथा (बंबई १९४९) के 'भविष्यदत्त आख्यान' और भविष्यदत्त कथा की तुलना करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि ज्ञान पंचमी के उक्त आख्यान का धनपाल ने अपनी कृति के लिए उपयोग किया अतः वे कवि का कार्यकाल ग्यारहवीं शती का अतिम भाग और बारहवीं का आरंभ काल मानते हैं (ज्ञानपचमी कथा, भूमिका पृ० १२-२४) किन्तु उनके तर्क बहुत दृढ़ नहीं हैं।

३. वही, ५.२०.३।

४. जैन विद्या भवन लाहौर से स्व० डा० बनारसीदास जैन द्वारा हस्तलिखित प्रति प्राप्त, तथा आमेर शास्त्र भडार मे कृति की अनेक प्रतियाँ, लेखक को देखने का अवसर मिला। दे० प्रशस्ति संग्रह, पृ० १०८-११० जयपुर १९५०।

५. यथा, सधि २ मे मनवेग को देखकर लोग उसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव समझते हैं। त्रिदेवों पर व्यग्य इस प्रकार है :—

जय जय विण्हु विण्हु परमेसर, लोयणिमित्तु णिहय असुरेसर।
अवरहिं भणिय काइंकिर जंपहु, विण्हु चउब्भुउ किं ण वियप्पहु।

उन्हे परास्त कर देता है। इससे पवनवेग का विश्वास ब्राह्मण धर्म से हट जाता है और वह जैन धर्म की दीक्षा ले लेता है। जैन धर्म के उपदेश और धर्मविरुद्ध आचरण के दुष्परिणामो का उल्लेख करते हुए कृति समाप्त होती है

जिस तीव्र शैली का प्रयोग किया है उसका एक उदाहरण से अनुमान किया जा सकता है, मनवेग पडितो से कहता है कि एक वार उसका धड कपित्थ के नीचे खडा रह गया था और शिर ने वृक्ष के ऊपर जाकर फल खाए थे। ब्राह्मण मडली इस पर विश्वास नही करती। वह रावण, जरासध आदि के उदाहरण देता हुआ पितर श्राद्ध की चर्चा करता है।

इह लोइ विप्प भोयणु करंति. परलोए पियर कहि विहि धरंति।
चिर काल मुया दूरंगयावि, णाणाविहि जोणि समुग्गया वि।
णियडत्थ कवित्थइं खाई मुंडु, तक्खणे वि ण किं महु भरइ रुंडु।
घत्ता—केत्तिउ बहु जंपहु चित्ति वियप्पहु रावण आइ कहाणउ।
जत्तारिसु तं जइ तारिसु तो ण अलिउ महु वयणउ। ९.११।

और इस प्रकार के सभी तर्कों से वह एक ही निष्कर्ष निकालता है कि पुराण असत्य है।

इय अघडमाण लोइयपुराण, सच्चाइव ते वि गणहि अयाण।
सयल मिच्छत्त गहेण भुत्तु, ण वियारइ किं पि अजुत्तु जुत्तु। ९.१८।

कृति की भाषा और शैली मे प्रसादगुण अधिक है। काव्य चमत्कार प्रदर्शन की ओर कवि उन्मुख नही दिखता, यत्र-तत्र देशादि के वर्णनो मे कुछ प्रयास प्रतीत होता है। प्रज्झटिका, भुजगप्रयात, छदों का क्रमश प्रयोग अधिक हुआ है, इनके अतिरिक्त पादाकुलक, मौक्तिकदाम, मदनावतार, विलासिणी, स्रग्विणी, समानिका, सोमराजी, उपेन्द्रमात्रा, अर्द्धमदनावतार, चद्रलेखा, रासक, विद्युन्माला, तोटक तथा दोधक छदो का भी कडवको के प्रधान भाग मे प्रयोग मिलता है। कडव-कान्त मे घत्ता का प्रयोग कवि ने किया है। छदो की व्यवस्था अपभ्रश के अन्य चरित काव्यो के समान ही है।

अपने समय और स्थान का कवि ने स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रारभ मे

भणहि केवि एहु बंभु पहाणउ, भवर अणेहि बंभु चउपयणउ।
इय रुवेण हवेसइ सकरु, अह तियच्छु सो लोयासंहरु। २.४।
इसी तरह अवतारो पर व्यंग्य, ब्रह्मा से जामवंत की उत्पत्ति, कुति से कर्ण की (संधि ४) तथा शिवलिंग की पूजा संधि (५ पर) व्यंग्य हैं।

कवि ने बताया कि किसी जयराम की गाथाबद्ध धर्मपरीक्षा के आधार पर कवि ने अपनी कृति की रचना की थी।[1] जयराम की कृति के सबध मे अभी तक कुछ ज्ञात नही है। अभी तक प्राप्त 'धर्मपरीक्षाओं' मे प्रस्तुत कृति ही प्राचीनतम है।[2] वि० स० १०४० मे कृति की रचना कवि ने की थी।[3] अपने सबध मे कवि ने और भी बताया है कि मेवाड देश में स्थित उजपुर के धर्कट (वैश्य) कुल में उद्भूत गोवर्द्धन और गुणवती के वे पुत्र थे, चित्तौड मे वे रहते थे, कार्यवश वे अचलपुर गए और वही प्रस्तुत कृति की रचना की। चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदन्त का कवि ने बडी श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। अपने गुरु का नाम सिद्धसेन बताया है।[4]

वीरकवि—वीरकवि की अपभ्रश कृति 'जम्बूस्वामी चरित'[5] मे जैन सम्प्रदाय के अतिम केवली जबूस्वामी का चरित ग्यारह सन्धियो में कहा गया है। प्रस्तुत चरित में प्रारंभिक भूमिका, जबूस्वामी के पूर्व भवो का वर्णन तथा उनके विवाह, युद्धो के वर्णन और अत में उनकी सगति से विद्युच्चर जैसे चोर का भी विरक्त होकर सद्गति प्राप्त करने का वर्णन है। जबूस्वामी अंत में तपस्या करते हुए निर्वाण प्राप्त करते हैं। अपनी कृति को कवि ने प्रत्येक सधि की पुष्पिका में 'श्रृंगार वीर महाकाव्य' कहा है। शृ गार के अनेक स्थल कृति में आए हैं, जबूस्वामी के अनेक विवाह होते हैं। अतीव सुदर रमणियो को वे वरण करते हैं, उनकी माता बहुत प्रयत्न करती है कि जबू का मन संसार में रम सके। इस प्रकार के प्रसगो के अनुकूल युवतियो के रूप सौंदर्य (आलम्बन ४ ११)

---

१. जा जयरामे आसि विरइय गाथ पबंधे।
साहमि धम्म परिक्ख मा पद्धडिया बंधें। १.१।

२. अमित गति की धर्मपरीक्षा इससे २७ वर्ष पीछे की रचना है, और भी कुछ इस प्रकार की कृतियाँ मिलती हैं : ए० भं० रि० इं० भाग २३, डा० उपाध्ये का लेख पृ० ५९२-६०८।

३. विक्कम णिव परिवत्तिय कालए। गयए वरिस सहस चउतालए। ११.२७।

४. दे० प्रशस्ति सं० पृ० १०९।

५. हस्तलिखित प्रतिलिपि के लिए पं० परमानंद जैन शास्त्री सरसावा तथा प्रबन्धक आमेर भंडार का लेखक कृतज्ञ है, प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ टीकमगढ़ (१९४६ ई०) पृ० ४३९ और आगे पं० परमानन्द का लेख तथा अनेकान्त वर्ष ९ किरण १० पृ० ३९४ और आगे इसी कृति पर लेख।

वसत ऋतु, उद्यान (उद्दीपन) जलक्रीडादि (४ २०) के वर्णन प्रस्तुत किए है। जबूस्वामी को वैराग्य से विरक्त करने के लिए उनकी माता तथा पत्नियाँ और विद्युच्चर अनेक उपदेश देते है किन्तु वे आसक्ति से दूर रहते है। श्रगार के सब साधनो के होते हुए भी कदाचित् वे उनसे विरक्त रहे इसीलिए कृति को 'श्रगार वीर काव्य' कवि ने कहा है। विवाहो के अवसर पर जहाँ तहाँ युद्धो के वर्णन भी है किन्तु वीर रस की नैसर्गिकता ऐसे स्थलो मे नही है। श्रगार और वीर रस के ये स्थल कृति मे प्रधानस्थान नही रखते प्रतीत होते। धार्मिक तत्व की प्रधानता है। प्रारम्भ की तीन सधियाँ और अत की दो सधियाँ प्रधान रूप से धार्मिक वातावरण (कथानक) से सबध रखती है। वैराग्य और धर्म प्रमुख है। यो कई वर्णनो मे काव्य की झलक मिलती है।

कृति में प्रज्झटिका, घत्ता, दोहा, दडक, भुजगप्रयात, खडिता, गाथा, माला-गाथा, स्रग्विणी, रत्नमालिका, दुवई छदो के प्रयोग हुए है। गाथाओ की भाषा प्राकृत है।

कवि ने कृति में रचनाकाल तथा कुछ और सूचनाए इस प्रकार दी हैं, कृति की रचना कवि ने स० १०७६ वि० मे की थी, अनेक राजकार्य, धर्म, कामगोष्ठियो मे समय विभक्त करते हुए कृति की रचना मे कवि को एक वर्ष लगा था। कवि वैश्यो के लासवागड गोत्र मे उत्पन्न हुआ था। पिता का नाम देवदत्त था और माता का नाम सन्तुव। देवदत्त स्वय कवि थे। वरांग चरित तथा अम्बादेवी रास अन्य दो रचनाएँ कवि ने की थी जो अभी तक प्राप्त नही हो सकी है। गुडखेड का कवि निवासी था। प्रस्तुत कृति की रचना कवि ने मालवा मे की थी। पूर्ववर्ती लेखको मे वीर ने शान्ति, वादीन्द्र, विभु, विष्णु, जयकवि, स्वयभू, पुष्प-दन्त और देवदत्त का उल्लेख किया है।[1]

नयनंदि—सुदसण चरिउ (सुदर्शन चरित)[2] मे नयनदि ने पच

१. प्रेमी अभिनदन ग्रथ मे प० परमानंद जैन का लेख तथा प्रशस्ति सग्रह पृ० १०० पर उद्धृत कृति का अंश।

२. कृति की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक जयपुर के स्व० सेठ श्री रामचन्द्र जी खिन्दूका का आभारी है। हस्तलिखित प्रति सं० १५०४ वि० की लिखित थी। एक स० १६०५ की प्रति की प्रतिलिपि डा० रामजी उपाध्याय, सागर विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई थी। कृति की और भी अनेक प्रतियाँ आमेर शास्त्र भडार, जयपुर मे हैं। दे० आमेर शास्त्र भंडार ग्रन्थ सूची, पृ० १४५-१४६।

नमस्कार[1] फल के दृष्टांत रूप में सुदर्शन की कथा प्रस्तुत की है। कथा वस्तु की कृति के प्रारंभ में ही एक पद्य में संक्षिप्त सूचना इस प्रकार दी है—

इय पंच नमोकारइ लहिवि, गोविउ हुवउ सुदसणु।

गउ मोक्खही अक्खमि तहु चरिउ, वरचउवग्ग पयासणु। १.१

राजा श्रेणिक के जिज्ञासा करने पर गौतम गणधर ने कथा कही है। कृति मे १२ संधियाँ हैं। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—चंपा नगरी के एक गोपाल ने पंचाक्षरो का स्मरण करते हुए गंगा में डूबकर प्राण विसर्जन किया। पंचनमस्कार के स्मरण के प्रताप से उसका जन्म नगर के राजश्रेष्ठि के पुत्र के रूप में हुआ। वय प्राप्त करने पर वह गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। वह बड़ा रूपवान था। उस पर रानी अभया तथा कपिला नामक एक स्त्री अनुरक्त होती हैं। अभया उसे बुलवाती है, और किसी प्रकार उसे विचलित न होते देखकर अपने नखो से अपने उर को विदीर्ण करके सहायता के लिए चिल्ला उठती है। सुदर्शन को राजा के पुरुष पकड लेते हैं। किन्तु अन्त मे सत्य घटना का पता लगता है। राजा सुदर्शन को आधा राज्य देना चाहता है किन्तु सुदर्शन तपस्वी का जीवन व्यतीत करता है और अंत में स्वर्ग प्राप्त करता है।

कृति की कथा खूब कसी हुई नही है, बीच की चार सन्धियों (६-९) मे सुदर्शन और कुटिल रानी अभया का प्रसंग केवल सुदर्शन की चरित्र दृढ़ता को व्यंजित करता है। कथा के विकास मे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। अभया के प्रसंग में कवि ने अनेक नायिकाओं के भेदो का सविस्तर वर्णन किया है (संधि ४) जो अनुपातहीन प्रतीत होता है। कवि ने प्रबन्धात्मकता पर विशेष ध्यान नही दिया है।

जैनकवि होने के कारण कृति की समाप्ति शांत-वैराग्य-पर्यवसायी की गई है अन्यथा प्रधानता शृंगार (रसाभास सहित) की है। शृंगार रस का विकास कवि ने तन्मयता से दिखाया है। नायक सुदर्शन को अपूर्व रूपवान चित्रित किया है, नायक और नायिका के नखशिख वर्णन, विवाह वर्णन तथा संभोग शृंगार का उद्दाम वर्णन सभी शृंगार चित्रण की ओर कवि की रुचि प्रकट करते हैं।

---

१. जैन सम्प्रदाय में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के नमस्कार को 'पंच नमस्कार' कहा जाता है और पंच नमस्कार का बड़ा भारी महत्त्व है।

स्त्री प्रकृति के चित्रण मे कवि ने पर्याप्त कुशलता दिखाई है। वर्णनो मे भी यत्र तत्र कवि ने नाद विधान से अपूर्व सौंदर्य लाने का प्रयास किया है। वसत वर्णन के समय के उल्लास को व्यजित करने वाली कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं

घुमुघुमिय मंदलइं कणंकणिय कोसाइं, दुमुदुमिय गंभीर दुंदुहि विसेसाइं।
दुंदुमउंवाइ ढढत तिउलाइं, अणवरय सलसलिय कंसाल जुयलाइं।
रणझणियतालाइ झंझाँसडुक्काइं, डमडमिय डमरुयइ डं डं तडक्काइ।
थर थरिरि थरि थरिरि करड़ोड सद्दाइं, झि झि झि झि झित झिक्किर सुहद्दाइं। ७.६।

वर्णनो के प्रसगो में कवि ने अलकारो के प्रयोग भी किए है, अपभ्र श कवि नवीन अप्रस्तुत व्यापारो की योजना प्राय करते है, प्रस्तुत कृति में भी ऐसे अप्रस्तुतो का प्रयोग मिल जाता है जिन्हें 'देशी' कह सकते हैं। जैसे—

काहिवि रमणइ पिय दिट्ठिपत्त, ण चलइ णं कद्दमे ढोरि खुत्त। ७.१७।

'किसी (नायिका) की दृष्टि प्रिय पर पडी और वहाँ से हटती नही मानो कीचड में गडा हुआ पशु हो।'

इसी प्रकार स्थल स्थल पर सुभाषित और लोकोक्तियो के प्रयोग भी कृति में मिलते हैं। यथा—

जं जसु रुच्चइ तं तस भल्लउ। ७.५।
एक्कें हत्थें ताल कि वज्जइ। ७८.३।
परउवयएसु दिंतु बहु जाणउ। ८.८।

प्रस्तुत कृति मे छदो की विविधता उल्लेखनीय विशेषता है। प्राय कवि ने प्रयुक्त छदो के नाम भी दिए है, वर्णवृत्तो का प्रयोग भी किया है, मात्रिक छदो की प्रधानता है,[1] छदो का क्रम कडवक के अनुसार है। कम से कम १० कडवक की सधियाँ (५,१०,१२) कृति की है, अधिक से अधिक ४४ कडवक (सधि८)

---

१. कवि ने निम्न छंदो के नाम दिए हैं : पद्धडिया, भुजंगप्रयात, प्रमाणिका, पादाकुलक, तोणाम, रसारिणी, पद्धडिया विषमपद, विद्युल्लेखा, तोटणक, मदाकान्ता, शार्दूलविक्रीडित, रमणी, मालिनी, मत्तमातंग, दोधक, कामवाण, समाणिका, दुवई मदनविलास, मोटनक, मदन, मदनावतार, आनंद, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, मजरी, खंडिता, त्रिभगिका, चप्पइ छद, मौक्तिकदाम, दुवई चंद्रलेखा, वसत चवई, आरणाल, तोमर, पुष्पमाल, हेला दुवई, मदयारति, अमरपुर सुन्दरी, चंद्रलेखा, रतनमाल पद्धडिका, विषम-

मिलते हैं। नायिका भेद उपस्थित करने का प्रयास तथा छंदो की विविधता के प्रदर्शन से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि कवि के समय में काव्य रचना में इनका प्रदर्शन किया जाता था। सुदर्शनचरित में भी इस प्रकार काव्यात्मक अनेक स्थल मिलते हैं।

कवि की सकल विधिविधान काव्य[1] नामक एक दूसरी रचना प्राप्त हुई है जिसमें ६८ संधियाँ हैं।

कवि ने अपना परिचय देते हुए कहा है कि सुप्रसिद्ध अवन्ती देशस्थित धारा नगरी में वि० स० ११०० में कृति की रचना की :

आराम-गाम पुरवरणि तेसे, सुपसिद्ध अवंती णाम देसे।
सुरवइपुरिव्व विवुहयणइट्ठ, तहि अत्थि धार णयरी गरिट्ठ।

.. .. ..

तिहुयण णारायण सिरिणिकेउ, तहि णरवइ पुंगमु भोयदेउ।
णिवविक्कम कालहो ववगएसु, एयारह संवच्छर सएसु।
तहि केवलि चरिउ अमच्छरेण, णयणंदिविरइवच्छलेण। १२.१०

अपनी गुरु परंपरा का उल्लेख करते हुए नयनदि ने बताया है कि वे कुदकुदाचार्य की परपरा मे मुनि माणिक्यनद के त्रैविद्यशिष्य थे। प्रत्येक सधि के अत मे कवि ने अपने गुरु का उल्लेख किया है। उनकी कृति से उनका काव्य ज्ञान भली भाँति प्रकट होता है। वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे। जिन गुणवर्णन ही कविता का वे प्रयोजन समझते थे।

सुकयसहु फलु जिनगुण वण्णणु। १.१०।

काव्य रचना के सबध में बार-बार कवि ने अपने नम्र स्वभाव का परिचय दिया है।

कनकामर—मुनि कनकामर का अपभ्रंश चरित-काव्य 'करकंडु चरिउ'[2] भी पद्धडिया शैली में रचित ग्रथ है। करकडु जैनो के दोनो प्रमुख सप्रदायो मे मान्य हैं। बौद्ध धर्म के चार प्रत्येक बुद्धो में से वे एक हैं। करकडु के चरित्र

पद पादाकुलक, संवत्थ, मागहपकुडिका, उर्वशी, कामलेखा पद्धडिका, साल-भंजिका, विलासिणी, दिनमणि, वसंत चवर, दोहा, सारीय, तुणिका, चडपाल, भ्रमरपद, आवली, रयडा, पृथ्वी, णिसेणी, विलासिणी, पंचचामर, सोमराजी, रचिता, लताकुसुम और मणिशेखर।

१. दे० प्रशस्ति संग्रह जयपुर १९५० पृ० १८१।

२. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित कारंजा से प्रकाशित १९३४ ई०।

को आधार बनाकर प्रस्तुत कृति में पंचकल्याण विधि का महत्व वर्णन किया गया है। कृति दस सन्धियों में समाप्त हुई है।

करकंडु चंपा के राजा का पुत्र था। उसके हाथों में कंडु होने के कारण उसका नाम करकंडु रखा था। विषम परिस्थितियों में उसका जन्म होता है और वह दन्तिपुर का राजा बन जाता है। उसके सौंदर्य पर रमणियाँ मुग्ध होने लगती थीं। सौराष्ट्र की राजकुमारी के चित्र को देखकर वह उसके रूप की ओर आकर्षित होता है। दोनों का विवाह हो जाता है। कालान्तर में करकंडु अपने पिता का राज्य भी प्राप्त करता है। करकंडु दक्षिण के राजाओं पर आधिपत्य स्थापित करता है और तेरापुर में जिन लयनों का निर्माण कराता है। उसकी रानी मदनावली को पूर्व जन्म की शत्रुता के कारण विद्याधर हर ले जाते हैं। करकंडु सिंहल जाता है और वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है। जिस समय नव वधू के साथ करकंडु समुद्र मार्ग से लौट रहा था, एक दुष्ट विशाल मत्स्य उन्हें अलग-अलग कर देता है। एक विद्याधरी उन्हें बचाती है। उधर रतिवेगा को पद्मावती देवी प्रकट होकर इसी प्रकार की अरिदमन की प्रेम-कथा कह कर पति से मिलने का आश्वासन देती हैं। कुछ काल व्यतीत होने पर वे परस्पर आ मिलते हैं और आते हुए मार्ग में अपहृत मदनावती भी मिल जाती है (संधि १–८)। अंतिम दो सन्धियों में धार्मिक प्रसंग हैं। मुनि शीलगुप्त राजा को उसके पूर्वजन्मों की कथा सुनाते हैं तथा धर्मोपदेश देते हैं। राजा अपने पुत्र को राज्य देकर मायामोह-पाश को तोड़कर घोर तप करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रधान चरित की कथा के अतिरिक्त कृति में प्रसंगानुकूल नौ अवान्तर कथाएं हैं[1]। करकंडु-चरित की मुख्य कथा कवि ने बड़े उतार-चढ़ाव से कही है। कई बार करकंडु का सब कुछ नष्ट होता हुआ दिखता है[2]; किन्तु अलौकिक

---

१. त्रिशक्ति को प्रदर्शित करने की कथा २.१०.१२, अज्ञान के कारण विपत्ति आने का दृष्टांत २.१३, नीच संगति के स्पष्टीकरण के लिए सेठ का दृष्टांत २.१४ १५, सुगग का दृष्टान्त २.१५.१८, नरवाहनदत्त की कथा संधि ६, माधव और मधुसूदन की कथा ६.४ ७, शुनशकुन के सम्बन्ध में दृष्टान्त ७.१ ४, अरिदमन की कथा उपवास के परिणाम का दृष्टान्त १०.१८ २२.

२. उसका जन्म अनिश्चित परिस्थितियों में होता है, पिता से युद्ध होता है (संधि ३), सिंहल से लौटते समय (७.१०)।

व्यक्ति आकर उसकी सहायता करते हैं। प्रेम के प्रसग स्वाभाविक हैं, जैसे, करकडु के पिता राजा धाडीवाहन का पद्मावती को देखकर मुग्ध होना (सधि १), मालिन कुसुमदत्ता की पद्मावती के प्रति ईर्ष्या (१ १६), करकडु पर सुदरियो का क्षुब्ध होना (३ २), सौराष्ट्र कुमारी के चित्र को देखकर करकडु के प्रेम का प्रारम्भ और विकास (३ ४-७) तथा करकडु और सिहल की कुमारी का परिणय (७ ७) प्रसग अत्यन्त स्वाभाविक हैं।

कनकामर की कृति मे रति, उत्साह, शम के प्रसगो के सरस वर्णन मिलते हैं[1]। कृति का नायक पौराणिक पात्र है किन्तु तेरापुर के लयनो के निर्माण से उसका सम्बन्ध दिखाकर इतिहास और पुराण का विचित्र मेल कवि ने करा दिया है।

कृति मे प्रधान छद प्रज्झटिका और घत्ता है। समस्त कृति के २०१ कडवको मे से २३ कडवको मे भिन्न छदो का प्रयोग किया है। समानिका (१० कडवक), दीपक (५ कडवक), सोमराजी (२ कडवक), स्रग्विणी (१ कडवक), चित्रपदा (१ कडवक) प्रमाणिका (१ कडवक), तथा अन्य दो कडवक[2]। अलकारो का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए इस कवि की कृति मे नही मिलता। सरल इतिवृत्तात्मक शैली करकडु चरित की विशेषता है।

आरम परिचय देते हुए कनकामर ने बताया है कि वे ब्राह्मणो के चन्द्रऋषि गोत्र मे उत्पन्न हुए थे। और पीछे दिगबर जैन सप्रदाय मे दीक्षित होने पर उनका नाम कनकामर हुआ[3]। बुध मगलदेव इनके गुरु थे। आसाइय नगरी मे कृति की रचना की थी। अपने भक्त श्रावक, जो विजवाल भूपाल और कर्ण नरेशो के प्रिय व्यक्ति थे, के आग्रह और अनुराग के कारण इस कृति की रचना की[4]। रचना तिथि का उल्लेख कवि ने नही किया। कवि ने एक स्थल पर सिद्धसेन, समतभद्र, अकलकदेव, जयदेव, स्वयभू तथा पुष्पदन्त का स्मरण किया है[5]। जयदेव नाम के कई कवि हुए हैं[6] पुष्पदन्त ने ९६५ ई० मे महापुराण की रचना की, इसे कनकामर के काल की पूर्वी सीमा माना जा सकता है। कृति की सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५५८ वि० की है, इसे उत्तरी सीमा मान सकते

१ यथा विप्रयुक्ता रतिवेगा का प्रलाप ७ ११, युद्ध वर्णन ८. १८, तथा शम भाव की व्यजना ९.४।

२. विशेष विवरण करकंडु चरिउ की भूमिका पृ० ४९।

३. ४, ५, ६ देखो वही, भूमिका पृ० ४३-४१।

हैं। कवि की प्रशस्ति मे उल्लिखित राजाओ के सम्बन्ध मे इतिहास मौन है। प्रो० हीरालाल जैन ने कवि का, इन तर्कों के आधार पर, समय १०४३-१०६८ ई० के बीच अनुमित किया है जो और किसी अनुकूल या विरोधी प्रमाण के अभाव मे उपयुक्त ही है।

धाहिल—चार सन्धियो मे समाप्त सुन्दर धार्मिक प्रेम कथा पउमसिरी-चरिउ (पद्म श्री चरित) धाहिल कवि की एक मात्र कृति प्राप्त हुई है। कृति मे पद्मश्री के पूर्वजन्मो की कथा है। एक जन्म मे वह मध्य देश के वसतपुर नगर के सेठ धनसेन की पुत्री धनश्री थी। धनदत्त और धनावह उसके भाई थे। वह विधवा हो जाती है, और भाइयो के पास रहकर धर्ममय जीवन व्यतीत करती है। उसके बडे भाई की स्त्री यशोमति उसकी दानशीलता पर व्यग्य करती है। धनश्री उन दोनो मे भेद उत्पन्न कर देती है परिणाम स्वरूप यशोमति विकल हो जाती है तब धनश्री फिर युक्तिपूर्वक भ्रम दूर कर देती है। तप करती हुई धनश्री देह त्याग करके देवलोक को जाती है। दूसरे जन्म मे धनदत्त तथा धनावह का जन्म अयोध्या मे होता है और समुद्रदत्त तथा वृषभदत्त नाम रखा जाता है। धनश्री का जन्म हस्तिनापुर मे होता है और पद्म श्री नाम रखा जाता है। अवस्था प्राप्त होने पर धनश्री उद्यान मे जाती है जहाँ समुद्रदत्त भी आया था। दोनो परस्पर एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं और अन्त मे उनका परिणय हो जाता है। उनके प्रगाढ स्नेह मे पद्मश्री के पूर्वजन्म के कर्मानुसार एक केलिप्रिय पिशाच भेद उत्पन्न कर देता है। फलस्वरूप समुद्रदत्त पद्मश्री की ओर से उदासीन हो जाता है और कान्तिमती से विवाह कर लेता है जो पूर्वजन्म मे यशोमति थी। पद्मश्री पचव्रत धारण कर कर आर्यका होकर भ्रमण करती हुई साकेत नगरी पहुँचती है। पूर्व जन्म के कर्मानुसार कान्तिमती द्वारा वह अपमानित की जाती है। किन्तु पद्मश्री दृढ रहती है और अत मे मोक्ष पद प्राप्त करती है।

कवि ने चरित्रो को धर्म पथ की ओर मोडकर तथा पूर्वजन्म के सम्बन्ध दिखाकर पात्रो के कार्यो को धर्म का आवरण पहना दिया है। इस धार्मिक आवरण को हटाकर यदि देखें तो कृति मे वर्णित पद्मश्री के सौन्दर्य वर्णन, अपूर्व-श्री उद्यान मे समुद्रदत्त को देखकर उस पर अनुरक्त होना और विरह का अनुभव करना, फिर परिणय और सभोग वर्णन और अन्त मे पति की उदासीनता के कारण पश्चा-

---

१. श्री मोदी तथा भायाणी द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४८ ई०।

ताप सभी प्रेमकथा के सुन्दर अग हैं।[1] सूर्यास्त, चद्रोदय के वर्णन बडी ही कुशलता से कवि ने सभोग शृगार की पीठिका के रूप मे प्रस्तुत किए हैं।[2] श्लेषादि अलकारो के प्रयोग कवि ने प्रयत्न पूर्वक सौदर्य वृद्धि के लिए किए हैं।[3] सुभाषितो, लोकोक्तियो तथा नवीन अप्रस्तुतो के प्रयोग भी कवि ने किए है।[4] छदो मे से कडवक के मुख्य भाग मे पद्धडिया प्रधान है कडवकान्त मे धत्ता का प्रयोग हुआ है। कही कही एक ही कडवक में दो प्रकार के छदो का प्रयोग किया है।[5] मात्रिक छदो का ही प्रयोग कृति में हुआ है।

धाहिल ने सूचित किया है कि वे माघ कवि के वश मे उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम पार्श्व था तथा पितामह का नाम तात (?) था।[6] पार्श्व के सबध

---

१. कृति की सधि २ तथा ३ काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं कडवक ३ मे पद्मश्री का नखशिख वर्णन, कडवक ४-५ मे उद्यान तथा वसंत वर्णन, कडवक ६-९ मे पद्मश्री—समुद्रदत्त दर्शन तथा प्रेम का उदय और आगे विरह-विवाह-वर्णन आदि बहुत ही आकर्षक काव्यात्मक स्थल हैं।

२. सूर्यास्त तथा चंद्रोदय वर्णन सधि ३ कड० १, सूर्योदय ३. २.।

३ दे० ३. २. ५ तथा ४. १६. २-३।

४. यथा, कुछ सरल उक्तियाँ देख सकते हैं, जो आणा खंडणु करइ अज्जु, वप्पेण इ किंचि विनाहि कज्जु, १. ५. १०।
'जो आज्ञा खंडन करे, उसके पिता (बाप) से भी कुछ काम नहीं है' अथवा 'चद्र के उदय होने पर तारिकाओ से क्या काम' २. १०. १६, अलि वंचेवि केयइ वउले लग्गु। जं जस मणिट्ठ तं तासु लग्गु। २. ५. ८ 'भ्रमर केतकी को छोड़कर वकुल (मौलश्री) मे रत हैं, जो जिसको प्रिय है वह उसमे अनुरक्त है'।
'मित्र वियोग से किसे दु ख नहीं होता' ३. १. ३, दो एक स्थलो पर नवीन कल्पनाएँ भी मिलती हैं।

५ दु.ख से वह त्रस्त हो गई मानो उसके माथे मे किसी ने मुद्गर मारा हो १. १३. २।
'दुष्ट चरित्र स्त्री को फूटे बर्तन के समान घर मे रखकर क्या करें' १.१४.१२।
'वैद्य द्वारा निर्दिष्ट अत्यन्त मीठी औषधि किसे प्रिय नहीं होती' १.७.१८
'शाखा च्युत वानरी के समान वह अपनी सुध भूल गई' २. ११. ६।
सधि २ २०, तथा ३. ५ मे कडवको मे दो प्रकार के छंदो का प्रयोग हुआ है।

६. पउम० ४. १६.

मे निश्चयात्मक रूप से कुछ नही कहा जा सकता। दि० पाल वंश के रचयिता कवि माव श्रीमाल वंश के वैश्य थे अत धाहिल भी वैश्य थे। पद्मश्री चरित की हस्तलिखित प्रति स० ११९१ वि० की लिखित मिलती है[१] अत उसके पहिले धाहिल का समय निश्चित है। सधियो के अन्त मे उन्होंने 'दिव्य दृष्टि' अपना नाम रखा है। कृति का अलकृत वातावरण तथा सुन्दर काव्यात्मक वर्णन माघ के वंशज कवि के उपयुक्त प्रसग है। कृति मे जीवन की सरसता और धार्मिकता का सुन्दर अनुपात मिलता है।[२]

श्रीचन्द—दो महत्वपूर्ण अपभ्रंश रचनाएँ श्रीचन्द की प्राप्त हुई है। तिरेपन सन्धियो मे समाप्त कथाकोष और इक्कीस सधियो की कृति रत्नकरड शास्त्र।[३] कथाकोश मे उपदेश प्रधान कथाएँ है। मनुष्य, देव, पशु पक्षी, सभी क्षेत्रो के जीवो को पात्र बनाकर कथाओ की सृष्टि हुई है।[४] कथाकोश मे लय तथा अन्त्यानुप्रास से युक्त अपभ्रंश के अनेक छदो का प्रयोग हुआ है।[५] कथाओ के लिए रचयिता ने अन्य आधारो का भी सहारा लिया है जैसा कि प्रशस्ति मे कवि ने सकेत किया है।[६] कथाकोश तथा रत्नकरडशास्त्र के अत मे कवि ने प्रशस्तियाँ दी है[७] जिनमे रचना तिथि आदि बातो की सूचना दी है। रत्न० के प्रारभ मे अन्य कवियो के साथ चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदन्त, कालिदास, श्रीहर्ष आदि के उल्लेख किये है।[८] कथाकोश की[९]

---

१ वही, भूमिका, पृ० २।

२ हिन्दी मे जायसी आदि की प्रेमकथाओ की ऐसी कृतियाँ पूर्वरूप कही जा सकती है।

३. कैटलाग मन्यु० सी० पी० पृ० ६३० तथा ७२५-७२७।

४ कामता प्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ५३, काशी तथा प्रशस्ति संग्रह, पृ० १५४-१६७।

५ का० प्र० जैन . वही, पृ० ५३।

६ जैन, वही, पृ० ५० वंसत्थ, समानिका, दोहडअ तथा कै० सी० पी० और प्रशस्ति संग्रह मे उद्धृत पद्यो मे घत्ता, चतुष्पदी, षट्पदी पद्धटिया, अलिल्लह छंद का प्रयोग मिलता है।

७ कै० सी० पी० पृ० ७२७, पद्य २९।

८ कै० सी० पी० पृ० ७२६ संस्कृत प्रशस्ति तथा प्रशस्ति सग्रह मे लम्बी अपभ्रंश प्रशस्ति पृ० १६५–१६६।

९. प्रश० सं० पृ० १५६।

रचना कवि ने अन्हिलवाड़ा के चालुक्यराज मूलराज के समय में की थी। तथा उन्होंने कहा है कि उनके गुरु श्रुतकीर्ति ने गांगेय, भोज आदि राजाओं से सम्मान प्राप्त किया।[1] रत्नकरंड० के अन्त में कवि ने उसका रचना काल ११२३ वि० स० दिया है तथा श्रीपालपुर में कर्ण नरेन्द्र के राज्यकाल में रचना की थी।

> ग्यारह तेवीसा वासमया। विक्कम्मस्स णरवइणो।
> जइयागयाहु तइया समणियं सुदरं एय।
> कण्ण णरिंदहो रज्जि सुहि सिरि सिरिवालहेरम्मि।
> वुह सिरिचंदे एउ किउ णंदउकव्वु जयम्मि। प्रशस्ति स० पृ० १६६।

इस तिथि से श्रीचंद का काल ११-१२वीं शती ई० ठहरता है और वे मूलराज द्वितीय (राज्यकाल ११७५-११७७ ई०) के समय में वर्तमान रहे होंगे।

श्रीधर—सुकुमाल चरिउ, पासणाहु चरिउ (पार्श्वनाथ चरित्र) और भविसयत्त चरिउ (भविष्यदत्त चरित) तीन अपभ्रंश रचनाएँ श्रीधर की प्राप्त हुई हैं।[2] सुकुमाल चरित में छ सन्धियाँ हैं। सुकुमाल स्वामी के पूर्व जन्मों की कथा दी है। पूर्व जन्म में वे कौशाम्बी के राजमंत्री के पुत्र थे। वे जिनोक्त धर्म की दीक्षा लेते है, संसार से उन्हे विरक्ति हो जाती है, और जन्मान्तरों का स्मरण हो आता है। तप करने के परिणाम स्वरूप उनका जन्म उज्जैन में होता है और सुकुमाल नाम रखा जाता है। इसी जन्म में वे सिद्धि प्राप्त करते हैं।

पार्श्वनाथ चरित में १२ सन्धियाँ हैं। परंपरा से प्रसिद्ध कथा के आधार पर ही तीर्थंकर की कथा कवि ने प्रस्तुत की है। और भविष्यदत्तचरित में श्रुत पंचमी व्रत के फल को प्रकट करने के लिए ६ सन्धियों में कवि ने भविष्यदत्त की प्रसिद्ध कथा उपस्थित की है जिसमे कथा की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है। भाषा, छंद, शैली सब कुछ अपभ्रंश के अन्य जैन चरित काव्यों के समान है।

कवि ने सुकुमाल चरित की रचना अगहण कृष्णपक्ष तृतीया चन्द्रवार स० १२०८ वि० में की। कृति पुरवाड वंश के पीथे साहु के पुत्र कुमार को समर्पित

---

१. दे० कै० सी० पी० प्रशस्ति तथा प्रश० सं० की प्रशस्ति।

२. कृतियों की हस्तलिखित प्रतियां आमेर शास्त्र भंडार जयपुर में हैं। नागपुर, यूनी० जर्नल, १९४३, पृ० ८४-८६ में सुकुमाल चरित तथा श्रीधर के संबंध में प्रो० डा० हीरालाल जैन ने विवेचनात्मक विवरण दिया है। दे० प्रशस्ति संग्रह पृ० १२९-१३१, १५०-१५३ तथा १९२-१९५।

की गई है। इनका विस्तृत परिचय कवि ने प्रस्तुत कृति की प्रशस्ति मे दिया है[1] पार्श्वनाथ चरित की रचना दिल्ली मे अगहन कृष्णपक्ष अष्टमी रविवार स० ११८९ को समाप्त की और अग्रवाल कुलोत्पन्न नहल साहु, जो समस्त जनपदो मे प्रसिद्ध थे, को कृति समर्पित की।[2] और, भविष्यदत्त चरित की रचना कवि ने फाल्गुन मास कृष्णपक्ष दशमी रविवार स० १२३० वि० मे समाप्त की। कृति कवि ने माथुर कुलोत्पन्न चदवार नगरवासी साहु नारायण की पत्नी रुक्मिणी को समर्पित की है।[3] कवि का निवास दिल्ली के आसपास के प्रदेश मे ही होना चाहिए और चद्रवार तथा दिल्ली का उन्होने उल्लेख भी किया है। कवि के गुरुभाई कोई वासुदेव थे। कवि का काल विक्रम की बारहवी शती का अतिम पाद और तेरहवी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए जो उनकी कृतियो के रचना काल से स्पष्ट प्रतीत होता है।

१. पीये वंसु ताम अहिणंदउ, सज्जण सुहिमणाहू आणंदउ।
बारह सयइ गयइ कय हरिसइ। अट्ठोतरइ महीयलि वरिसइ।
कसणपक्ख आगहणो जायइ। तिज्ज दिवसि ससिवासरि सयाइ
प्र० सं० पृ० १९४।

२. प्रसंग से संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—
विक्कमणरिंद सुपसिद्धकालि, ढिल्ली पट्टणि धणकण विसालि।
सणवासी एयारहसएहिं, परिवाडिए वरिसहपरिगएहिं।
कसणट्ठमीहिं आगहणमासि रविवारसमाणिउं सिसिरमासि।
सधि की पुष्पिकाओ मे नहल का नाम है। कृति के अन्त मे प्रशस्ति में नहल की बड़ी प्रशंसा की है।
सिखितुं साहु अेजातणउं जगिनहलु सुपसिद्धु हट्टु। प्र० सं० पृ० १३१।

३. कृति के प्रारम्भ मे कवि ने बताया है कि माथुर कुल में उत्पन्न णारायण के पुत्र श्रीवासुदेव कवि के गुरुभाई थे उन्होंने ही कृति की रचना के लिए प्रेरणा दी। संभव है कवि भी माथुर गोत्र का हो जैसा कि प्रशस्ति संग्रह के संपादक ने अनुमान किया है। प्र० सं० भूमिका पृ० १४ प्रारंभ की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

सिरि चन्दवारणयरट्ठिएण, जिणधम्मकरण उक्कंठिएण।
माहुरकुल गयण तमीहरेण, विवुहयण सुयण मणधणहरेण।
णारायण देह समुब्भवेण, मणवयणकाय णिंदिय भवेण।
सिरि वासुएव गुरुभायरेण, भवजलणिहि णिवडण कारणेण।
—प्र० सं० पृ० १५०।

देवसेन गणि—प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पुत्र भरत के प्रधान सेनापति जयकुमार की पत्नी सुलोचना के चरित्र को लेकर देवसेन ने सुलोचना चरित[1] की २८ सन्धियो मे रचना की है। अन्य अपभ्रंश चरित काव्यो के समान कृति मे पद्धडिया आदि छदो का प्रयोग हुआ है।

रचयिता ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, बाण, मयूर, हालिय (हाल ?) गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदन्त तथा भूपाल कवियो का उल्लेख किया है।[2] कवि ने यह भी बताया है कि उसने कुदकुद के गाथा बद्ध 'सुलोचना चरित' का पद्धडिया छदो मे अनुवाद किया है।[3] कवि ने अपने सबध मे कहा है कि वह विमलसेन गणधर का शिष्य था और प्रस्तुत कृति उसने सम्भलपुरी मे राक्षस सवत्सर श्रावण शुक्ल चतुर्दशी बुधवार को समाप्त की थी।[4] इस उल्लेख के साथ कवि ने सवत्

तथा णरणाह् विक्कमहच्चकाले, पवहंतए सुहयारए वि साले।
बारहसय वरिसहिं परिगएहिं दुगुणिय पणरह् वच्छर जुएहिं।
फग्गुणमासम्मि वलक्खपक्खे दसमिहि दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे।
रविवारि समाणिउं एउ सत्थु, जिह मइं परियाणिउं सुप्पसत्थु।
... ... साहु देवचन्दुक्खुवाणि।
माहुरकुल णहयलछससंकु, जिय भासिय धम्मे विनुक्कसंकु।
बुहणियर दाणविहि करणघुत्तु णयमाग णिरंउ वज्जिय अजुत्तु।
वीयउ णारायणु क्खयणिउत्तु।

.. ..

तह रुप्पिणि णामे जाय भज्ज, सिरिहरहो सिक्ति जाणिय सकज्ज।

.. ..

संधि की पुष्पिकाओं मे—णारायणभज्जा रुप्पिणी णामकिए इत्यादि।
प्र० सं० पृ० १५१–१५३।

१. अनेकान्त वर्ष ७, किरण ११–१२ पृ० १५९–१६४ पर पं० परमानन्द जैन शास्त्री का लेख 'सुलोचना चरित्र और देव सेन'। धवल ने भी अपनी कृति की प्रस्तावना मे महसेन के सुलोचना चरित्र का उल्लेख किया है।

२. वही, पृ० १६०।

३. वही, पृ० १५९, यह संभव नहीं प्रतीत होता कि प्रवचन सार के रचयिता कुदकुंद ने तीर्थंकरो के चरितों को छोड़कर सुलोचना से संबंधित चरित कथा की रचना की हो, कोई दूसरे कुंदकुंद गणि इसके रचयिता रहे होगें।

४. वही, पृ० १६२।

का उल्लेख नही किया है। उपर्युक्त कवियो मे से पुष्पदन्त का समय स० १०२९ (वर्तमान) है। इसके पश्चात् राक्षस सवत्सर वि०स० ११३२ और दूसरा स० १३७२ के ऐसे हैं जिनमे उक्त तिथि भी बुधवार के दिन पडती है। अत उनमे से कोई भी रचना तिथि मानी जा सकती है। सम्भलपुरी तथा कवि के गुरु के व्यक्तित्व के सबध मे भी कुछ निश्चित ज्ञात नही है। देवसेन नामक अनेक कृतिकार जैन सम्प्रदाय मे हो गए है।[1] इनमे कौन से देवसेन प्रस्तुत कृति के रचयिता थे निश्चित करना कठिन है।[2]

सिद्ध—सिद्ध और सिंह[3] कवि की अपभ्रंश कृति पज्जुण्णकहा[4] (प्रद्युम्न कथा) मे जैन सम्प्रदाय मे मान्य चौवीस कामदेवो मे से इक्कीसवे कामदेव कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न की कथा पन्द्रह सन्धियो मे कही गई है। कृष्ण का परिचय देकर कवि ने नारद को उपस्थित किया है। सत्यभामा से रुष्ट होकर नारद उसके रूप गर्व को भग करने के लिए कृष्ण का विवाह रुक्मिणी से कराते है। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म होता है और पूर्वजन्म के सबध के अनुसार एक राक्षस बालक प्रद्युम्न को उठा ले जाता है, प्रद्युम्न इसी अवस्था मे बडे होते है और बारह वर्ष पश्चात् फिर कृष्ण से आकर मिलते है। प्रद्युम्न हरण की सूचना, मिलन आदि सब का आयोजन नारद ही करते हैं। कृति मे जहाँ तहाँ कुछ आकर्षक वर्णनो के अतिरिक्त काव्यात्मक स्थल अधिक नही हैं। छदो के प्रयोग मे भी विविधता नही मिलती।

---

१. वही, पृ० १६२-१६३।
२. प्रशस्ति संग्रह मे लेखक की अतिम प्रशस्ति उद्धृत की गई है जिसमे गुरु, सवत् आदि के उल्लेख है। प्र० स० पृ० १९०-१९२, जयपुर १९५० ई०।
३. कृति की संधियो की पुष्पिकाओ मे सिद्ध और सिंह दोनो नाम मिलते हैं: प्रथम से लेकर सन्धि आठ तक की पुष्पिकाओ मे 'सिद्ध' नाम मिलता है, नवीं सन्धि मे 'सिंह' मिलता है। दशवीं सन्धि मे पुन: 'सिद्ध' मिलता है आगे ग्यारहवीं सन्धि से पुष्पिकाओ मे सिंह के पिता का नाम बुह रल्हण भी मिलते लगता हे। अत: सिद्ध और सिंह दो कवियो ने प्रस्तुत कृति की रचना की। सिंह ने अपना परिचय भी दिया है।
४. ना० यू० ज० १९४३, प्रो० जैन के लेख 'सम रिसेंट फाइन्डज इन अपभ्रंश' मे प्रस्तुत कृति का परिचय दिया है तथा ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियो के लिए लेखक बाबू पन्नालाल जैन अग्रवाल दिल्ली तथा आमेर शास्त्र भडार के अधिकारियो का कृतज्ञ है।

रचयिता ने अपना परिचय देते हुए कहा है कि अमृतचन्द्रमुनि ने कवि को प्रद्युम्न चरित को नाना विध कौतूहलो से युक्त रचना करने का आदेश दिया था। अपने माता पिता का नाम कवि ने पंपाइय और देवण बताया है। कृति की रचना कवि ने बमणवाड मे की थी जहाँ वल्लाल राजा थे।[1] बभणवाड को प्रो० जैन ने सिरोही राज्यान्तर्गत वर्तमान बाभन वाद होना प्रस्तावित किया है और वल्लाल के मालवा के राजा होने की सभावना प्रकट की है जिसका वध गुजरात के राजा कुमार पाल के सामत द्वारा हुआ था और इसके सत्य सिद्ध होने पर कवि का काल १२वी शती ई० का पूर्वार्द्ध हो सकता है।[2] सिंह ने अपने पिता का नाम रल्हण और माता का नाम जिनमती[1] बताया है। उनके गुरु ने सिद्ध की मृत्यु के कारण उनकी अपूर्ण रचना को पूर्ण करने का आदेश दिया था।[3]

हरिभद्र—हरिभद्र की दो कृतियो मे से नेमिनाथ चरित का कुछ अश 'सनत्कुमारचरित' नाम मे अभी तक प्रकाशित हुआ है।[4] सनत्कुमार चरित अपने आप मे स्वतन्त्र कृति सी प्रतीत होती है। प्रारभ मे जबूद्वीप वर्णन, भरतखड, गजपुर

---

१. कवि ने कृति के प्रारंभ मे बताया है कि अमृतचंद्र माधवचंद्र के शिष्य थे। वे बंभणवाट मे आए थे उस समय वहाँ के शासक गुहिलवंशी भुल्लण थे, जो वल्लाल के भृत्य थे। वल्लाल रणधोरिय के पुत्र थे। कविसिद्ध ने अपने पिता माता का उल्लेख इस प्रकार किया है।
पुणु पपाइय देवणणदणु, भवियणजण मण णयणाणंदणु।
बुहयण जण पय पकय छप्पय, भणइ सिद्धु पणमिय परमप्पउ।
दे० प्रशस्ति सग्रह, पृ० १३४।
२. दे० ना० यू० ज० वही, पृ० ८२-८३।
३. दे० प्रशस्ति संग्रह, पृ० १३५-१३६।
४. हरिभद्र की प्राकृत कृति मल्लिनाथचरित्र है और नेमिनाथ चरित अपभ्रंश कृति है। प्रो० वेलणकर ने इस कृति को प्राकृत मे भाषा बद्ध कहा है, जिन रत्नकोश पृ० २१५ और प्रो० हेरमान याकोबी द्वारा प्रकाशित अंश को ही अपभ्रंश भाषा बद्ध कहा है। किन्तु प्रस्तुत ग्रथ पूरा अपभ्रश मे ही है जैसा कि याकोबी ने लिखा है तथा उनके द्वारा उद्धृत ग्रंथ के प्रारंभिक और अत के अशो से भी यही प्रकट होता है। सनतकुमारचरित प्रो० याकोबी द्वारा संपादित होकर रोमन लिपि मे जर्मन भाषा निबद्ध भूमिका, जर्मन अनुवाद सहित म्यूनिख से सन् १९२१ ई० मे प्रकाशित हुआ है। सनत्कुमारचरित नेमिनाथ चरित के पद्य ४४३ से ७८५ तक है अर्थात् ३४३ रड्डा पद्य हैं।

नगर के अलकृत शैली मे वर्णन हैं। गजपुर मे अश्वसेन राजा थे, उनकी रानी सहदेवी थी। सहदेवी के पुत्र सनत्कुमार की उत्पत्ति, शिक्षादि का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि वह चक्रवर्ती होगा। सनत्कुमार का सखा महेन्द्र था। वय. प्राप्त होने पर मदनोत्सव के दिन उद्यान मे राजकुमार सर्वांगसुन्दरी एक युवती पर मोहित होता है। युवती भी उसके रूप की ओर आकर्षित होती है। मदनायतन मे नायक नायिका मिलते हैं और अपने अपने प्रेम उद्‌गारो को व्यक्त करते हैं। इसी समय भोज राजा का पुत्र उपस्थित होकर सनत्कुमार को अत्यन्त प्रसिद्ध जलधिकल्लोल नामक तुरग प्रदान करता है। (४४३-५२६)

पवन, मन से भी वेगवान् वह तुरग कुमार को दूरदेश मे ले पहुँचता है। प्रियजन कुमार के वियोग मे दु खी होते है। उसका मित्र अश्वसेन मित्र की खोज करता हुआ अनेक विजनाटवियो को पार करता हुआ, ऋतुओ के परिवर्तनो को देखता मानस सर के समीप पहुँचता है। किन्नरगणो को मधुरस्वर मे कुमार की विरुदावली गाते वह सुनता है। एक किन्नर रमणी से उसे सनत्कुमार का वृत्त मिलता है। सनत्कुमार ने इस बीच मे अनेक रमणियो से विवाह कर लिए थे। जिस युवती की ओर वह आकर्षित हुआ था, उसे एक यक्ष अपहरण कर लाया था। दैवयोग से कुमार और युवती मिल जाते है और उनका विवाह हो जाता है। आगे कुमार के अन्य पराक्रमो का वर्णन है, मुनि अर्चिमाली कुमार के पूर्व जन्मो का वृत्त कहते हैं। (५२७-७०६)

उसके अनतर कुमार के अन्य अनेक विवाहो का वर्णन है। अपने सखा महेन्द्र से अपने माता पिता की दशा सुनकर वह गजपुर लौट आता है। अश्वसेन पुत्र को राज्य देकर धार्मिक जीवन यापन करता हुआ अत मे सद्‌गति प्राप्त करता है। कुमार समस्त पृथ्वी को जीतकर चक्रवर्तित्व पद प्राप्त करता है। इद्रादि सुर उसका अभिषेक करते हैं। उसके रूप और तेज की इन्द्र प्रशसा करते हैं। अत मे कुमार अपने रूप तेज की नश्वरता का ध्यान कर विरक्त हो जाता है और तप दीक्षा लेकर चला जाता है। उसके कठोर तप से इन्द्रादि आश्चर्य प्रकट करते हैं। देवादि आकर सनत्कुमार ऋषि का आशीर्वाद लेकर लौट जाते हैं। लाखो वर्ष तप करते हुए ऋषि स्वर्ग को प्राप्त होते हैं (७०७-७८४)।

सनत्कुमारचरित यो तो धर्मोपदेश पर्यवसायी काव्य है, किन्तु सुन्दर काव्यमय ऋतु वर्णनो से युक्त[1] प्रेमाख्यान का सुन्दर रूप भी प्रस्तुत कृति मे मिलता

---

१. पद्य संख्या ५३८ से ५५० तक ऋतुवर्णन हैं।

है। इस प्रेम प्रसग से सबधित मदनोत्सव, सखी सहचरो की योजना, विरह एव सयोग के हृदयस्पर्शी प्रसग तथा नायक के अनेक विवाहो के वर्णन हैं। नायक को अद्भुत रूप सपन्न चित्रित किया गया है। और इस सौन्दर्य के अनुरूप ही उसे पराक्रमादि गुणो से युक्त वर्णित किया है। साहित्यिक वर्णनो मे से कुछ पक्तियाँ इस प्रकार देख सकते हैं ग्रीष्म वर्णन —

> परिसोसिय महिवलय, वावि कूव सरि सर सुवुद्धर
> वायन्तउ झन्झा पवणु, कय तरु पत्त ओसहु।
> कसु कसु न हवइ डाहयरु, गिम्हयालि जिव भाहु। ५४१ ॥
> तह खर पवणुद्धय रहण, उद्धुन्धलिय विसेण।
> कु न सताविउ महि वलइ, गिम्हिण काउरिसेण। ५४२ ॥

सजीव, स्फूर्तिदायक वर्णनो की प्रस्तुत कृति की जैन अपभ्रंश मे अपनी विशेषता है। धार्मिक अशो मे सनत्कुमार के पूर्व भवो के वर्णन तथा पूर्व जन्मो के कर्मानुकूल मित्र यक्ष आदि से सबध उसका ससार के प्रति वैराग्य, तपस्या वर्णन आदि हैं। इन अशो मे सरल कथात्मक शैली है। समस्त कृति मे एक ही छद रड्डा छद का प्रयोग हुआ है। रड्डा के प्रथम पाँच पदो मे क्रमश १५, १२, १५, ११, और १५ मात्राएँ होती है।[१] अन्य चरणो का क्रम वही रहने से द्वितीय चरण मे ११ मात्रा वाले रड्डा का भी प्रस्तुत कृति मे प्रयोग हुआ है।[२] रड्डा के अतिम चार चरण दोहा छद के होते है।[३]

कृति की भाषा को प्राचीन गुजराती के चिह्नो से युक्त गुर्जर अपभ्रंश (पश्चिमी शौरसेनी) कहा है।[४]

नेमिनाथ चरित के रचयिता कवि हरिभद्र ने कृति के प्रारभ और अत मे अपना और अपने आश्रयदाता का परिचय देते हुए बताया है कि वे श्वेताम्वर जैन सम्प्रदाय के वटगच्छ के थे, उनके गुरु श्रीचद्र थे जो जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे, हरिभद्रसूरि ने कृति की रचना अणहिल पाटन (वर्तमान पत्तन—अन्हिलवाड-

---

१ प्राकृत पैंगल मे इसके एक रूप को रायसेना भी नाम दिया है। विब्लियोथेका इडिका सस्करण, पृ० २२८, इस रूप को प्राकृत पैंगल मे चारुसेनी नाम दिया है (वही पृ० २३९)।

२. प्रो० याकोवी ने कृति के छदो का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है पृ० २०-२५।

३.–४ वही भूमिका पृ० २३ और आगे तथा व्याकरण पृ० १-१९।

पट्टन) मे वि० स० १२१६ मे की थी।[१] पृथ्वीपाल उनके आश्रयदाता थे। कवि ने उनकी भी वशावली दी है। वे चौलुक्य वशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के आमात्य रहे थे। उन्हे यह पद वश परम्परा से प्राप्त था।[२] उपर्युक्त दो कृतियो के अतिरिक्त चद्रप्रभचरित नामक उनकी एक और रचना का उल्लेख मिलता है।[३]

अमरकीर्ति—छक्कम्मोवएस (पट्कर्मोपदेश)[४] मे अमरकीर्ति ने गृहस्थो के पालनीय छ' कर्मो—देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान के स्वरूप तथा पालन करने के लिए उपदेश दिए है। कवि ने प्रथम सधि मे अन्य सप्रदायो के आराध्य देवो के स्वरूपो पर मृदु कटाक्ष करते हुए वीतराग देव को आराधना के योग्य बताया हे। दूसरी से नवमी सधि तक क्रमश जल, सुगन्धि, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल द्रव्यो द्वारा देव पूजा करने का माहात्म्य दृष्टान्तो द्वारा बताया है। इन कथाओ मे पर्याप्त मनोरजक तत्व मिलता है यथा चतुर्थ सधि मे राजा और शुकी का प्रसग जिसमे कवि ने शुकी के मुख से स्त्रियो के वश मे रहने वाले व्यक्तियो पर कटाक्ष किया है। आगे दशवी सन्धि मे जिन पूजा, उपवासविधि आदि के प्रसग तथा ग्यारहवी सन्धि मे गुरु पूजा और स्वाध्याय के प्रसग है। आगे की दो सन्धियो मे सयम का प्रसग है तथा अन्तिम सधि मे तप, दान और कर्म के प्रसग है।

प्रस्तुत कृति मे काव्य का चमत्कार और सौन्दर्य नही मिलता। उपदेश की प्रधानता है। छदो की विविधता न होकर पद्धडिया और घत्ता का ही प्राधान्य है। भाषा भी सरल है। अपने परिचय मे कवि ने बताया है कि वे माथुर सघ की परपरा से सबधित थे। उनके आश्रयदाता नगर कुलोद्भव अबप्रसाद थे। इन्ही

---

१. कृति के प्रारभ मे ये सूचनाएँ मिलती हैं—सनत्कुमार चरित पृ० १५२, छद ९-१०, तथा अंत के उद्धरण स० १५२ छंद १-२। रचनाकाल का निर्देश पृ० १५४ पद्य २३ मे किया गया है।

२. वही पृ० १५४ पद्य २१।

३. जिनरत्नकोष पृ० ११९।

४. ना० प्र० जा० वही, पृ० ८६ तथा जैन सिद्धान्तभास्कर भाग २, किरण ३-४ मे प्रो० हीरालाल जैन ने कृति के विषय का विस्तार से परिचय दिया है। प्रस्तुत कृति बड़ौदा ओरियंटल इस्टीट्यूट से प्रकाशित होने वाली है। कृति की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक आमेर शास्त्र भंडार का कृतज्ञ है।

को कवि ने अपनी कृति समर्पित की है। कृति की रचना कवि ने गुर्जरप्रदेश मे स्थित गोदहृय नगर मे स० १२४७ वि० मे की। कवि ने अपनी सात अन्य रचनाओ का भी कृति मे नामोल्लेख किया है जिनमे से कोई भी प्राप्त नही हुई है। कवि ने सकेत किया है कि इसके अतिरिक्त सस्कृत प्राकृत मे और भी ग्रन्थो की रचना की थी। नेमिणाह चरिउ और जसहरचरिउ को पद्धडिया वध मे रचित कहा है जिससे प्रतीत होता है कि दोनो कृतियाँ अपभ्रंश मे रची गई होगी।

सोमप्रभाचार्य—कुमारपाल प्रतिवोध मे प्राप्त अपभ्रंश प्रकरणो का सुदर अध्ययन प्रो० लुडविग आल्सडर्फ ने किया है।[1] कृति मे जीव मन करणसलाप कथा (वडौदा सस्करण पृ० ४२३-४३७), स्थूलिभद्रकथा (पृ० ४४३-४६१) वडे प्रकरण है और द्वादश-भावनास्वरूप (पृ० ३११-२), पार्श्व स्तोत्र (पृ० ४७१-२) छोटे छोटे प्रकरण है। इनके अतिरिक्त एक कडवक मे वसत (पृ० ३८), एक मे शिशिर (पृ० १५९) एक मे मधुसमय (पृ० ३५१-२) तथा एक मे ग्रीष्म वर्णन (पृ० ३९८) मिलते है और पैंतीस स्फुट पद्य इधर उधर विखरे मिलते है जो दृष्टात आदि के रूप मे अपने आप मे स्वतत्र है।

जीवमन करणसलाप कथा धार्मिक रूपक है जिसमे आत्मा, जीव, मन, इन्द्रियो को पात्र बनाकर वार्ता कराई है—देहनगरी मे लावण्य लक्ष्मी का निवास है, आयु-कर्म उसके प्राकार है, सुख दुख, क्षुधा, तृपा, हर्ष, शोक आदि पुरवासी है, नाना नाडियाँ पथ, समीर भार, धर्म महिमा है। नगरी का राजा आत्मा है, बुद्धि पट्ट-महिपी, मन महामत्री, पचेन्द्रियों के पाँच विपय पाँच प्रधान है। एक बार राजसभा मे जीव के दुखो के उत्तरदायी मन ने अज्ञान को बुलाया, राजा ने उसे धिक्कारते हुए उसी को सब दुखो की जड वताया। परस्पर इसी प्रकार विवाद बढते देख आत्मा के द्वारा प्रशमन का उपदेश कराया गया है और मनुष्य जीवन की दुर्लभता बताते हुए जीव दया, सयम आदि व्रतो के पालन का आदेश दिया गया है।

ज पुणु वुहुजपेसि जड त असरिसु पडिहाइ।
मणक्खिल्लवखन किं सहइ नेउरु उड्ढत पाइ। पृ० ४२५

'रे जड। जो तूने कहा है वह सब असगत प्रतीत होता है। रे निर्लक्षण। मन ऊँट के पैर मे नूपुर क्या शोभा देगा।'

प्रस्तुत कथा मे कविता के सौन्दर्य का अभाव है, सरल सुभाषितो के प्रयोग कही कही अवश्य मिलते है।

---

१ देर कुमारपाल प्रतिवोध, आईन वाइट्राग त्सूर केन्टनिस डेश अपभ्रंश उंट देर एरत्सेलुन्गन लिटेराटूर देर जैनस हाम्बुर्ग १९२८।

प्रस्तुत कथा मे प्राकृत गाथाओ को छोडकर अपभ्रंश पद्यो मे रड्डा, पद्धडिया, और घत्ता छदो का प्रयोग मिलता है। रड्डा और गाथा का प्रयोग कथा अश के लिए हुआ है और कडवक शैली का प्रयोग वर्णनात्मक प्रसगो मे हुआ है। मन आदि के रूपक साहित्य मे और भी मिलते है।[1]

स्थूलिभद्र कथा मे ब्रह्मचर्यव्रत की दृढता का दृष्टान्त रखा है। स्थूलिभद्र नद के मत्री शकटाल के ज्येष्ठ पुत्र थे। कोशा नामक वारवनिता के रूप पर आसक्त होकर वे बारह वर्ष तक विलास रत रहे। उसी नगर मे शास्त्र विचक्षण वररुचि रहता था, शकटाल की अकृपा के कारण राजा नद ने उसे राजसभा से निकाल दिया। इस राजभक्ति का मूल्य शकटाल ने अपने प्राण देकर चुकाया। शकटाल के पश्चात् नद ने स्थूलिभद्र को मत्री बनाना चाहा किन्तु स्थूलिभद्र जनवधू को छोडकर विरक्त हो गए। कोशा की चेष्टाओ का उनपर फिर कोई प्रभाव नही पडा और उनके उपदेश से वह भी अर्जिका हो गई।

प्रस्तुत कथा मे प्रकृति और ऋतुओ के वर्णनो से सज्जित प्रेम-काव्य और धर्मोपदेश का अनुपात कवि ने सफलता से मिश्रित किया है। ऐतिहासिक नद के साथ स्थूलिभद्र कथा के मेल से प्रस्तुत कथा मे कुछ नवीनता मिल सकती है। सस्कृत प्राकृत, अपभ्र श सभी मे इस कथा से सबधित प्रसग प्राप्त होते हैं।[2] प्राकृत गाथाओ को छोडकर अपभ्रश अश मे रड्डा, पद्धडिया, और घत्ता छदो का प्रयोग कवि ने किया है।

अन्य प्रसगो मे से द्वादशभावना प्रकरण मे चौदह पद्धडिया छदो मे द्वादश भावनाओ के पालन के फल का वर्णन है तथा पार्श्वनाथ स्तवन मे तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की शरण मे जाने से कलिकाल से मुक्त होने का आठ छप्पयो मे उल्लेख है। इन छप्पयो मे अनुप्रासादि के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं और भाषा प्राय द्वित्व

---

१. कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' सिद्धर्ष कृत उपमितिभव प्रपंचकथा, हेमचद्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित (१.१.५६२, ५८४ तथा ३.४.८२–१७४), उत्तराध्ययन अध्याय २६ मे इसी प्रकार के रूपक मिलते हैं। हिन्दी मे जायसी के 'पद्मावत' के अंत मे उसे रूपक बताया गया है किन्तु वह अश प्रक्षिप्त है ऐसा विद्वानो का मत है।

२. आवश्यक निर्युक्ति, कथासरित्सागर तरंग ४.५, हेमचद्र परिशिष्टपर्व ७ ८ अध्याय इत्यादि, तथा दिगबर परंपरा के आराधना कथाकोश आदि में भी यह कथा मिलती है।

वर्णों से युक्त परुषावृत्ति प्रधान है जो कदाचित् छप्पय परपरा की विशेषता रही होगी ।

ऋतु वर्णनो के प्रसगो में कोकिल, मदन, मलय वात, पल्लवित पुष्पित कानन, हर्षामोद मे नाचती हुई रमणियो के समूहो का उल्लेख, वसत मे और गात्र कम्पित करने वाले शीतल समीर, हिमपीडित पथिको का शिशिरकाल मे और विरह सतप्त अगराग का उबटन करती हुई युवतियाँ प्रखररश्मिसूर्य, तृष्णातरलित पथिक तथा चदनरस का लेप करनेवाले श्रीमन्तो का ग्रीष्म वर्णन मे उल्लेख हुआ है । इन वर्णनो मे परपरागत उपकरणो के प्रयोग होते हुए भी नवीनता सवेदनाजनक तत्व मे है । पद्धडिया और दोहा छद प्रमुख हैं ।

स्फुट पद्यो मे से अधिकाश (दो तिहाई) स्वतन्त्र सुभाषित हैं जिनमे प्रेम, उपदेश, सभा-चातुर्य आदि के प्रसग है[1] तथा कुछ पद्य समस्या पूर्ति के प्रयास-रूप हैं ।[2] कुछ पद्यो मे दृष्टान्त रूप मे कथाओ तथा घटनाओ के सकेत मिलते हैं ।[3] यह सभी पद्य सोमप्रभ के ही हो ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, सभव है कुछ पद्य अन्यत्र से उद्धृत किए हो । कुछ पद्य अन्य रूपो मे और जगह भी मिलते हैं ।[4] पद्य दोहा छद मे अधिक हैं, पद्धडिया आदि छद मे भी कुछ पद्य हैं (कु० पा० प्र० पृ० ३३१) ।

कुमारपाल प्रतिबोध के अपभ्रंश प्रकरणो मे साहित्यिक और सरल दोनो प्रकार की भाषा मिलती है । सामान्य रूप से पश्चिमी हिन्दी, ब्रज, प्राचीन गुजराती आदि के ठीक पूर्व दशा की स्थिति का परिचायक रूप पद्यो मे स्पष्ट मिलता है जिसमे कारक चिह्न, जिण-तिण आदि सर्वनामो के रूप तथा प्रत्ययान्त शब्द आधुनिक बोलियो के अधिक निकट आ जाते हैं ।[5]

---

१. पद्य इस प्रकार मिलते हैं : ५, १२, २५, २६, ३०, ३२, ३८, ५७, ६९, ७७, ८२, ८६, ८९, १०७, १०८, १११, ११८, १२१, १२९, १५५, २२३, २३७, २४६, २५७, ३०१, ३३१, ३४५, ३५५, ३७३, ३९०, ३९२, ४०४ और ४१५ ।

२. ऐसे छ पद्य हैं पृ० १०७, १०८ पर दो पद्य, ११८, ३९०, तथा ३९१ पर ।

३ यथा पृ० २५ पर उद्धृत पद्य मे झगल की कथा का सकेत, अन्य पद्यों मे भी सकेत है यथा, पृ० ३८, ५७, ६९, ८२, १११, १२१, २२३, ३९२, ४०४ आदि पृष्ठो पर उद्धृत पद्यों में ।

४. दे० आल्सडर्फ : कु० प्र० पृ० ४७ ।

५. वही, पृ० ५१ और आगे ।

सोमप्रभाचार्य का समय विक्रम की तेरहवी शती है। कुमारपाल प्रतिबोध की रचना इन्होने १२५२ वि० स० मे की।

लाखू—ग्यारह सन्धियो मे जिनदत्त की कथा से सबधित लाखू ने 'जिणदत्तचरिउ'[1] की रचना की है। कृति के आरभ मे कवि ने अपना और अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है। श्रीधर की प्रेरणा से दुर्जनो से भयभीत कवि अनेक प्राचीन कवियो का स्मरण करता हुआ, नम्रता प्रकट करता हुआ जिनदत्त चरित की रचना प्रारभ करता है। जिन वदना, सरस्वती वदना करके कवि जबूद्वीप, भरतक्षेत्र, तथा मगधदेश का वर्णन करता है। मगध देश मे स्थित वसतपुर नगर मे शशिशेखर राजा का भी कवि ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उनकी रानी मयनासुदरी का भी वर्णन है। उस नगर के राजसेठ जीवदेव और उनकी पत्नी जीवजसा के भी सौन्दर्य वर्णन कवि ने प्रस्तुत किए हैं। जीवजसा जिन कृपा से एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म देती है। पुत्र का नाम जिनदत्त रखा जाता है। विद्याएँ पढता हुआ कुमार युवावस्था मे प्रवेश करता है और अपने रूप सौन्दर्य मे नगर रमणियो के मनो को क्षुब्ध करता है। अगदेश स्थित चपापुरी के विमल सेठ की रूपवती पुत्री विमलमती से उसका विवाह होता है।[2] सयोग शृगार की पीठिका-रूप रात्रि, चद्रोदय के वर्णन कवि ने किए हैं। कुछ काल रहकर जिनदत्त वसतपुर आता है। बहुत काल तक सुखपूर्वक रहने के पश्चात् जिनदत्त धन कमाने के लिए व्यापारार्थ विदेश जाता है।[3] अनेक वणिक् और सार्थ-वाह बनाकर जाते

---

१. कृति की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर का कृतज्ञ है।

२. जिनदत्त और विमलमती के विवाह का प्रसंग कुछ विस्तृत है। विमलमती के चित्र को देखकर विवाह होता है, वरयात्रा आदि के अच्छे वर्णन हैं, सधि २, समस्त वातावरण प्रसन्न था :—

गेहगेहम्मि णग्गोर दीपावली, दिज्जए मंद मरवसिण रक्खावली।
णच्चि भोरघण पिच्छसच्छण्णयं, ण विरेहति धरणिहर सिहरुण्णयं।
कण्णं परिपियालीहिं कय लवियय। सर सरोरुहदुरोहेहिं ण वनियय।
संधि २ कड० १४।

३. कवि ने विदेश मे धन कमाने वाले व्यक्तियो के पुरुषार्थ की बड़ी प्रशंसा की है।

विलसइ जो ण महायरेण सो काउरिसु णिरुत्तु।
सहसा दीवंतरे फिरेंजि, अज्जिज्जइ बहु वित्तु। ३-५।

हैं और नाना देशो को पार करके समुद्र यात्रा करते हैं। सब सिंहलद्वीप मे पहुँचते हैं। जिनदत्त वहाँ के राजा की अत्यन्त रूपवती कुमारी श्रीमती से अपनी बुद्धि और साहस का परिचय देकर विवाह करता है।[1] जिनदत्त श्रीमती को जिन धर्म का उपदेश देता है।

कुछ काल पर्यंत रहकर जिनदत्त सब साथियो सहित प्रभूत धन संपत्ति लेकर स्वदेश चलता है। जिनदत्त को-ईर्ष्यावश उसका एक सम्बन्धी कपट करके समुद्र मे फेंक देता है। और श्रीमती के पास जाकर प्रेम प्रस्ताव करता है। श्रीमती दृढ रहती है, प्ररोहण किनारे लगता है और श्रीमती चंपापुर के चैत्यालय मे पहुँचती है। जिनदत्त भी बच जाता है वह मणिद्वीप पहुँचता है और शृंगारमती से विवाह करता है तथा छद्मवेश धारण किए हुए चंपापुरी पहुँचता है। श्रीमती विमलमती सब मिलते हैं। जिनदत्त सबको लेकर अपने घर पहुँचता है, माता-पिता सब प्रसन्न होते हैं। राजा भी जिनदत्त का सम्मान करता है। सुखपूर्वक अनेक दिन बिताता है। अंत मे समाधि गुप्त मुनि से धर्म दीक्षा लेकर तपस्या करता हुआ शरीर त्याग कर निर्वाण प्राप्त करता है।

जिनदत्त चरित एक प्रेमकथा है जिसमे श्रीमती और जिनदत्त के प्रेम की परीक्षा होती है और दोनो अपने प्रेम मे दृढ रहते हैं और अंत मे मिलते हैं। सिंहल द्वीप की सुंदरी की कथा कदाचित् एक बहुत ही लोक प्रिय कथा थी जिसका उपयोग अनेक कवियो ने नाना प्रकार से किया है। धर्म का आवरण इस प्रेमकथा को पहनाना जैनकवि के लिए साधारण सी बात थी। प्रेम की दृढता दिखाने के लिए समयानुकूल कवि ने जिनदत्त द्वारा श्रीमती को जैनधर्मोपदेश दिलाया है। कृति की अंतिम कई सन्धियाँ काव्यरस से रहित हैं। अन्यत्र वर्णन सरस हैं।

कवि ने कृति मे अनेक छंदो के प्रयोग किए हैं[2] जिनमे लय की सरसता मिलती है और वर्णन की नीरसता से छंद विविधता पाठक की रक्षा करती है। कवि ने

१. श्रीमती अनेक विद्याएँ जानती थीं, अनेक राजकुमार अपने प्राण दे चुके थे। उसके पेट मे एक विषधर सर्प रहता था। रात को सो जाने पर निकल कर वह विष से मार डालता था। जिनदत्त सोया नहीं और जब सर्प निकला तो उसे वह मार डालता है। जिनदत्त की वीरता पर कुमारी मोहित हो जाती है। ३. २९-३०।

२ निम्न छंदो का प्रयोग कवि ने कडवको के मुख्य भाग मे किया है अंत मे घत्ता का प्रयोग स्वाभाविक ही है : विलासिणी, मदनावतार, चित्रं गया, मौक्तिक, पिंगल, विचित्रमनोहरा, आरणाल, भुजंगप्रयात, दुवई, स्रग्विणी, सोमराजी,

कृति की रचना अपने आश्रयदाता श्रीधर के आग्रह से की थी, कृति उन्ही को कवि ने समर्पित भी की है।[1] पुरवाड वशोद्भूत सिरिधर धामु विरदा के पुत्र थे।[2] कवि ने विल्लरामिपुर (?) मे कृति की रचना वि० स० १२७५ में की थी। कवि ने अपने पिता माता का नाम क्रमश साहुल और जयता दिया है। वह पहिले त्रिभुवनपुर मे रहता था, पीछे विल्लरामिपुर मे पहुँचा था। त्रिभुवनपुर को म्लेच्छो ने बलपूर्वक ले लिया था और कवि वहाँ से निकल पडा था।[3]

लक्खण—आठ सन्धियो मे विभक्त २०६ कडवको की कृति अणुवयरयण-[4]

ललित, ललिता, अमरपुरसुंदरी, प्रमाणिका, पद्मिनी, वसतयच्चर, पंचचामर, नाराच, त्रिभंगिका, रमणिलता, समाणिका, चित्रलोक, चित्रिका, भ्रमरपद, तोणक, खंडक, जंमेटिका, पज्झटिका।

१. प्रत्येक संधि की पुष्पिका में श्रीधर का नाम है तथा कुछ सधियो के प्रारंभ मे श्रीधर की मंगल कामना भी की गई है।

२. यथा— पुरवाडवंस तामरसतरणि।
विल्हण तणुरुहु पायडिय धामु जिणहरु जिणमतु पसिद्धणामु।
तहो णंदणु णयणाछंदहेउ णामेण सिरीहरु सिरिणिकेउ। १-२।
तया—चिरुअहिणंदउ विरदातणूउ, सिरिहरु सिरिविसइणि गव्वभूउ।
—अंतिम प्रशस्ति।

३. साहुलहु सुपिय पिययममकुज्ज। णामे जयता कयणिलय कज्ज।
ताहु जि णंदणु लक्खणु सलक्खु..... -
ते तिहुअण गिरि णिवसंतिसव्व।
सो तिहुअणगिरिभग्गउ जङ्गुण। घितउ वलेणमिच्छाहिहुण।
लक्खणु सव्वाउं समाणुसाउ। विच्छोयउविहियाजणियराउ।
सो इत्यतत्य हिंडतु पत्तु। पुरे विल्लरामिलक्खणु सुपत्तु। अतिम प्रशस्ति।
रचनातिथि इस प्रकार दी है:
वारहसयसत्तरयं, पंचोत्तरयं, विक्कमकालि विहत्तउ।
पणमपक्खिरविवारहु, छट्ठि सहारइ, पुस मासेसंम्मतिउ—अतिम प्रशस्ति।

४. ना० प्र० प० दिसंबर १९४२, प्रो० डा० हीरालाल जैन का लेख सम रिसेंट फाइन्डज अव अपभ्रंश लिटरेचर पृ० ८९-९१। कृति की हस्तलिखित प्रतिलिपि के लिए लेखक प्रो० डा० श्री बाबूराम सक्सेना, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का आभारी है।

पईउ (अणुव्रतरत्नप्रदीप) लक्खण (लक्ष्मण) की एकमात्र अपभ्रंश कृति प्राप्त हुई है। कृति मे कोई एक क्रमबद्ध कथा नही है। श्रावको के पालनीय व्रतो (अणुव्रतो) को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट किया गया है। उनके महत्व को प्रकट करने के लिए सरल शैली मे कथाएँ कही गई हैं। कृति के कथात्मक अगो मे कही भी शुष्क, नीरस, शास्त्रीय विवेचन नही है किन्तु कथा का मनोरजक तत्व भी अधिक नही है। जहाँ तहाँ सामान्य जीवन के चित्र बडे आकर्षक है यथा सधि ३ मे पिता पुत्री का सवाद जिसमे प्रियदत्त अपनी पुत्री अनतमती को भिक्षुणी होने से रोकना चाहता है। वह ब्रह्मचर्य व्रत ले चुकी है, और पिता उसका विवाह करना चाहता है वह कहती है·

णउ जुत्तउ विवाहु महु केरउ।

पइं सहुं बंभचरिउ महं गहियउ जणणीलोय सक्खि गुरु वहियउ।

उसका पिता उसे समझाता है·

तं सुणि पिउणा दुहिय समीरिय। तुहुं कुमारि सुकुमार सरीरिय।

वियला सयवाली बालिसमइं। किं ण वियाणहिं कीला परिणइं।

अनंतमती : दरहसेवि ताहुहियए वुत्तउ, हो जणेर किं भणिउ अजुत्तउ।

जे वयणेण सीलु खण्डिज्जइ, रइ विलास लीला मंडिज्जइ।

सोच मे पडकर पिता प्रत्युत्तर देता है कि कुतूहलवश मैंने तुझसे ब्रह्मचर्य व्रत की चर्चा की थी, ब्रह्मचर्य का वृद्धो को पालन करना चाहिए, तू तो कुमारी है, तुझे शोभा नही देता।

तुहु कुमारि वउ तुज्झु न सोहण, विसमु मयणु माणिणि मणु मोहइं

मइं तुहुं कोमहसेण णिड्डइउ। बंभचरिउ जं विद्धहिं सेविउ। ३-२-३।

कवि ने मनुष्य की दुर्बल प्रकृति की साधारणता का ध्यान रखते हुए अत मे आगे चलकर ब्रह्मचर्य व्रत के लिए उत्सुक अनतमति को भी क्षुब्ध होते दिखाया है।

तहि णिएवि अणंतमइते तणु महलावण समुच्छलउ।

कुसुमसर वाणडुहिय हियउ मण संजायउ कलमलउ। ३-३।

इस प्रकार के अकृत्रिम अशो को छोडकर धार्मिक प्रवचनो की कृति मे प्रधानता है। कथाएँ प्राय कलाहीन ढग से सीधे सादे रूप मे प्रस्तुत की गई हैं। धर्म मे अनास्था रखने वाले श्रावको के लिए उनका उचित महत्व है।

शैली मे कही कवि कल्पना नही है, प्रसादगुण युक्त सरल अपभ्रंश शैली का प्रयोग कवि ने किया है। अलकारो के प्रदर्शन का भी प्रयास कृति मे कही लक्षित

नही होता। कवि ने बार बार काव्य के आदर्शों के उल्लेख[1] किए है किन्तु अपनी कृति को काव्यरूप देने का प्रयास उसने कदाचित् सरल श्रावको का ध्यान होने के कारण नही किया। छदो मे पज्झटिका और घत्ता से मिलकर बने कडवको की-प्रधानता है। जहाँ तहाँ बीच मे मदनावतार, विचित्रमनोहरा, भुजगप्रयात, विलासिनी, अमरपुर सुदरी, ललिता, समाणिका, प्रमाणिका, पद्मिनी, मौक्तिकदाम, स्रग्विणी, वसत तवच्चरी, पचचामर, पिंगलशोधन, चित्रका के प्रयोग हुए हैं।

कृति रचयिता ने अपने सबध मे बताया है कि वे लवकबु वणिक कुलोद्भव कृष्ण राजा आहवमल्ल के मत्री थे, उन्ही के आश्रय मे कवि रहता था, उनके आग्रह मे ही श्रावको के बोधार्थ कृति का स० १३१३ विक्रम मे निर्माण किया। कवि जायस (जयसवाल) कुल का था। पिता का नाम सम्हुल और माता का जहुता था। मत्री कृष्ण और राजा आहव मल्ल के विपय मे भी कवि ने सूचित किया है कि आहवमल्ल की राजधानी जमुना नदी के किनारे धन जन सपन्न रायवड्डिय नगरी थी। यही लक्ष्मण भी रहते थे।[2] यह राजा चौहानवशी थे और पूर्वजो की राजधानी यमुना-तट पर चदवाड नगरी थी। यह राजा म्लेच्छो के साथ वीरता से लडे थे। आहवमल्ल ने हम्मीरदेव की सहायता भी की थी। चदवाड (चदपाट) नगरी आगरा से थोडी दूर यमुना तट पर अभी स्थित है।[3] रायवड्डिय के सबध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। चदपाट के समीपस्थ 'रपरी' स्थान यह हो मकता है कुछ विद्वान आगरा फोर्ट और बाँदीकुई रेल मार्ग पर पडने वाले 'रायभा' स्थान को बताते है।[4]

लक्खमदेव (लक्ष्मणदेव)—कवि लक्खण ने बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ को लेकर नेमिनाथ चरित[5] की रचना की है। प्रारभ मे जिन स्तवन, सरस्वती वदना, मनुष्य जन्म की दुर्लभता, दुर्जनो का स्मरण तथा अपनी असमर्थता का

१. अणुवयरयणाई पईव णामु, लक्खण छंदालंकार धामु। संधि ८ के अंत मे।
२. सधि ८ के अंत मे प्रशस्ति तथा संधि १ कडवक ७-९ और संधि १ कडवक २-३।
३. अनेकान्त वर्ष ८, किरण ८-९, पृ० ३४५-३४८ पर प० परमानन्द जैन का लेख 'अतिशयक्षेत्र चदवाड।'
४. प्रो० हीरालाल जैन: जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६ किरण ३।
५. हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक राजस्थान दिगंबर जैन भंडार के मंत्री पं० श्रीप्रकाश शास्त्री का अनुग्रहीत है। कृति के संबध मे सूचना ना० पू० ज० वही पृ० ९१—९२ पर प्रो० जैन ने दी है।

उल्लेख किया है। इस प्रस्तावना के आगे मगध देश और राजगृह नगर तथा श्रेणिक राजा का वैभवपूर्ण वर्णन कवि ने किया है। राजा श्रेणिक की जिज्ञासा के अनुसार गणधर नेमीश्वर का चरित्र कहा है। वराडक देशस्थ वारमति (द्वारवती) नगरी मे यादव तिलक जनार्दन राजा थे, वहाँ गुणम्पूर्ण समुद्रविजय रहता था, उसकी पत्नी शिवदेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रादि देव बालक के सस्कार करते है (सधि ।[१]) दूसरी सधि मे नेमिनाथ के वय प्राप्ति तक की कथा तथा उसी प्रसग मे वसत वर्णन, जलक्रीड़ा आदि के प्रसग हैं। कृष्ण को नेमि की शक्ति से ईर्ष्या होने लगती है और वे उन्हे ससार से विरक्त कराने के लिए प्रयत्न करते है। उनका विवाह निश्चित करते है और युक्ति से विवाह के अवसर पर बलि पशुओ का नेमि को दर्शन कराते है, इस हिंसा व्यापार से नेमि ससार से विरक्त हो जाते हैं। राजी-मती से नेमि का विवाह होने वाला था, वह बहुत दुखी होती है। तीसरी सधि मे राजीमती की वियोग दशा का मार्मिक चित्र है। अनेक दूतियाँ नेमि को ससार की ओर प्रवृत्त करने का व्यर्थ प्रयास करती है, नेमि की माता भी व्याकुल होती है। ससार की आकर्षक निस्सारता का प्रतिपादन अपने पूर्व जन्मो की कथा कहकर वे करते है और वैराग्य धारण करते हैं। चतुर्थ और अतिम सधि मे नेमि के सम-वसरण, अनेक धर्मोपदेश और निर्वाण प्राप्ति के प्रसग है। इस लघु कृति मे धर्म और उपदेश के प्रकरणो के साथ नगरो के वर्णन, राजमती के वियोग वर्णन मे काव्य की पर्याप्त झलक मिलती है। छदो के प्रयोग मे विविधता नही मिलती। पद्धडिया, घत्ता प्रधान हैं, कुछ अन्य छदो के भी प्रयोग मिलते है। रचयिता ने अपनी कृति का रचनाकाल नही दिया। प्रत्येक सधि की पुष्पिका मे अपने को रयण 'रत्न' का पुत्र कहा है। मालवा मे स्थित गोणद नगर कवि के अनुसार विद्वानो का केन्द्र था। कवि पुरवाड कुल का था और बहुत धार्मिक था। कृति की रचना मे कवि को आठ महीने पन्द्रह दिन लगे थे।

आरंभिय असाढ सिय तेरमि। भउ परिपुरणु चइत्तवति तेरमि। कृति की प्रति स० १५१० विक्रम की है अत ग्रन्थ कम से कम इसके पूर्व का अवश्य होना चाहिए।

धनपाल (द्वितीय)—१८ सन्धियो मे समाप्त बाहुबलि चरित धनपाल की महत्व पूर्ण कृति है।[१] कृति मे जैन सप्रदाय के प्रथम कामदेव बाहुबलि का चरित्र है। कृति की रचना कवि ने गुर्जर देशान्तर्गत चदवाड नगर के राजा सारग के मत्री यदुवशी वासाहर (वासद्धर) की प्रेरणा से की थी और उन्ही को कृति समर्पित

१. दे० प्रशस्ति संग्रह (जयपुर १९५०) पृ० १३८-१४७।

की है।[1] कृति में कवि ने वज्रसूरि, महासेन, रविसेन, जिनसेन, जटिल, दिनकरसेन, पद्मसेन, कतसेन, विल्हुसेन, सिंहनंदि, असग, सिद्धसेन, गोविंद, सेढि, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभु, पुष्पदंत, वीर,[2] इत्यादि के तथा उनकी कृतियों के उल्लेख किए हैं। कृति का रचना काल समाप्त करने का कवि ने वैशाख शुक्ल त्रयोदशी सोमवार स्वाती नक्षत्र सं० १४५४ वि० दिया है।[3] अपभ्रंश के उत्तरकाल परिवर्तनयुग की यह रचना है अतः भाषा, छंद शैली, सभी में प्राचीन चरित काव्यों का अनुगमन किया गया है जिसका कवि द्वारा उल्लिखित प्राचीन कवि सूची से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।[4] कवि पुरवाड वंश में उत्पन्न सुहड का पुत्र था माता का नाम सुहडा देवी था। घूमता हुआ वह गुजरात के पल्हणपुर नगर में पहुँचा और वहाँ श्रीप्रेमचन्द्र मुनि का शिष्यत्व स्वीकार किया और खम्मात, धार, देव-

---

१. दे० पुणु दिट्ठउ चंदवाडु णयरु, णररयणायरु णं मयरहरु।
　ता पतउ सिरि संघाहिवहु; दिट्ठउ वासद्धरु सुअणु।
　ताण पेक्खिवि पंडिय घणवाले, विहसि वि भणिउं बुद्धिविसालें।
　इत्यादि, वही पृ० १४०-४१।
　संधि की पुष्पिका ...वासद्धरणामंकिए वाहुवलि देव...पृ० १४३।

२. अनेक नवीन अनुपलब्ध रचनाओं के उल्लेख हैं यथा—
　महासेन का सुलोचनाचरित (अपभ्रंश), जडिल का नवरंग चरित, दिनकर सेन का कदर्पचरित, अंबसेन की अमितारावना, मुनिविल्हुसेन कृत, चन्द्र प्रभ चरित, तथा धनदत्त चरित, नरदेव का णवकारनेह, असग का वीर चरित, गोविंद कवीन्द्र का सनत्कुमार चरित, सुकवि सेढि का पउम चरिउ। वही पृ० १४२।

३. तिथि कवि ने विस्तार से दी है वि० सं० १४५४, वैशाख शुक्ल १३, स्वाती नक्षत्र, सिद्धियोग, शशिवार, मृगांकतुला राशि—
　विक्कमणरिंद अंकियसमए, चउदहसय संवच्छरहं गए।
　पंचास वरिस चउअहिय गणि, वइसाहहो सियतेरसिसुदिणि।
　साउणक्खत्ते परिट्ठियई वरसिद्धि जोगणामे ठियइ।
　ससिवासरे रासिमयंकतुले गोलग्गे मुत्ति सुक्के सबले।
　चउवग्गसहिउ णवरस भरिउ वाहुवलिदेव सिद्धउ चरिउ।
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　वही पृ० १४६।

४. दे० ऊपर टिप्पणी १।

गिरि, योगिनीपुर सूरिपुर मे भ्रमण करता हुआ चदवाड नगर पहुँचा जहाँ उसका वासाढर से परिचय हुआ और वही कृति की रचना की।[1]

यशकीर्ति—महाभारत की कथा से सबधित अनेक कृतियाँ जैन साहित्य मे मिलती है।[2] यशकीर्ति का हरिवशपुराण इस परपरा मे सबसे पीछे की कृति है।[3] कृति १३ सन्धियो मे समाप्त हुई है जिसमे सम्पूर्ण कडवक सख्या २६६ है। कथा गौतम गणधर द्वारा श्रेणिक से कही गई है। प्रथम सधि मे हरिवंश के प्रारभ से वसुदेव के जन्म तक की कथा है। द्वितीय सधि मे कस का जन्म, कृष्ण जन्म और उनके गोकुल पहुँचने तक की कथा है। नद यशोदादि के आनद से सबधित कुछ पक्तियाँ इस प्रसग मे इस प्रकार है

णंद जसोवइ मणि आणंदिउ। गोउल पुरे सहु सव्वहि वंदिउ।
गोइले गोकुल विणदिणी वड्ढहि। एरिस णंदणि को णउ णंदहि।
अंकिलइवि गोविण खेल्लावहि। डोलहरिहि घल्लेवि झुल्लावहि।
जहे पालहि कठिहि लायहिं। हुल्लरु हुल्लरु वयण सुणावहि। २-१९।

इसी प्रसग मे कृष्ण के बाल्यकाल के परपरा से प्रसिद्ध पराक्रमो का वर्णन भी किया है और फिर आगे गोपियो के साथ क्रीडा का भी समावेश किया है। जैन कवि द्वारा वर्णित शृगार की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है·

तं पेक्खेवि गोउल गोवियगणु। सुरसरपीडिउ हुउ आउलु मणु।
काविणिवील थणत्थलु दावइ। कंडुकमिरिण कवल दक्खावइ। २-२३।

तीसरी सधि मे कृष्ण के विवाहो, प्रद्युम्न जन्म तथा उनके पूर्व जन्मो की कथाएँ है। आगे कृति मे कौरव पाँडवो की उत्पत्ति, पाँडवों के वनवास, द्रौपदी स्वयवर, भीम द्वारा वकासुरवध, कौरव पाडव युद्ध, नारायण और जरासन्ध का युद्ध, युधिष्ठिर की राज्यप्राप्ति, नारायण के स्वर्ग गमन का वर्णन करके पाँडवों के निर्वाण गमन के करुण प्रसगों का उल्लेख करके कृति समाप्त हुई है। कृति मे जहाँ तहाँ सरस सरल काव्यात्मक प्रसग है, इसके अतिरिक्त इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है, और कवि ने किसी भी उपयुक्त प्रसग को धर्मोपदेश दिए विना हाथ से नही

---

१ वही, प्र० १३९ तथा १४६। कवि के एक भविष्यदत्त चरित नामक ग्रंथ का भी उल्लेख मिलता है वही, भूमिका, पृ० १५।

२. जि० र० को० पृ० ४६०।

३. ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक जैन सिद्धान्त भवन आरा का कृतज्ञ है।

जाने दिया है। कृति में पद्धडिया शैली का अनुसरण किया है जैसा कवि ने स्वयं सकेत भी किया है।

पद्धडिया छंदे सुमणोहरु। भावयण जणमण सवण सुहंकरु।

—ग्रंथ प्रशस्ति।

कृति की रचना कवि ने दिवढा साहु की प्रेरणा से की थी, कवि ने प्रत्येक संधि की पुष्पिका में दिवढा साहु का उल्लेख किया है, दिवढा साहु का कवि ने अंत में परिचय भी दिया है।[1] कृति का रचना काल कवि ने भाद्रशुक्ल ११ गुरुवार सं० १५०० वि० दिया है।[2]

यशःकीर्ति की दूसरी कृति 'चंदप्पह चरिउ' ग्यारह संधियों में समाप्त हुई है। आठवें जिन चंद्रप्रभ की कथा इस चरित काव्य का विषय है। प्रारंभिक मंगलाचरण सज्जन दुर्जनों का स्मरण करके कवि ने मंगलवती देश के राजा कनकप्रभ का वर्णन किया है, उनके पुत्र पद्मनाभ थे। संसार की असारता का ज्ञान होने से राजा पुत्र को राज्य देकर विरक्त हो जाता है। दूसरी संधि से पद्मनाभ का चरित्र प्रारंभ होता है। श्रीधर मुनि से राजा अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त सुनते हैं (२-५)। राजा पद्मनाभ का एक अन्य राजा पृथ्वीपाल से युद्ध होता है जिसमें राजा विजयी होता है किन्तु उसे युद्ध वृत्ति पर पश्चाताप होता है और अपने पुत्र को राज्य सौंपकर श्रीधर मुनि से दीक्षा लेकर विरक्त हो जाता है (६)। अगले भव में पद्मनाभ का जन्म चन्द्रपुरी के राजा महासेन के यहाँ होता है और उनका नाम चन्द्रप्रभ रखा जाता है। बड़े होने पर वे संसार से विरक्त हो जाते हैं और केवल ज्ञान प्राप्त करके अंत में निर्वाण प्राप्त करते हैं (७-११)। कृति प्रधान रूप से कथा प्रधान है, जहाँ तहाँ नगरादि के वर्णनों में कुछ सजीवता अवश्य है।

प्रस्तुत कृति की रचना कवि ने हुंबड कुल के कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल के

---

१. प्रसंग से संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

तहि अयरवाल वंस पहाणु। सिरि गग्गगोतेणं सेयमाणु।

... ...

असराउ विदेहो गुण महंतु। संवहो दिवढा हूमाहिमुत्तु।

दिवढा जसमुणि पन्थयवित्तुवि। काराविउ हरिवंस चरित्तुवि।

—अंतिम प्रशस्ति।

२. रंजिय जणु विक्कमरायहो गय कालहू। महि इंदिय दुसुण अंकालइ। १५००।

भादव एयारसि सियगुर दिणेहु। उपरि पुणउ डग्ग सहिहणो।

आग्रह से की थी।[1] सिद्धपाल गुर्जर देशान्तर्गत उन्मत्त ग्राम मे निवास करते थे।[2] कवि ने कृति का रचना काल नही दिया है और न गुरुपरंपरा ही दी है अत निश्चय के साथ यह नही कहा जा सकता कि उपर्युक्त दो ग्रन्थो के रचयिता एक ही व्यक्ति यशकीर्ति नामधारी है। हरिवशपुराण मे कवि ने अपने को काष्ठासघ के माथुरान्वय के पुष्करगण से सबधित बताया है और अपनी गुरु परंपरा इस प्रकार दी है : देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशकीर्ति और शिष्य मलयकीर्ति। चद्रप्रभचरित के रचयिता गुजरात के रहने वाले प्रतीत होते हैं और सभव है वे हरिवश के रचयिता से भिन्न व्यक्ति रहे हो।

एक तीसरे यशकीर्ति और मिलते हैं जो रयधू के गुरु थे और गोपाचलगिरि पर रहकर जिन्होंने स्वयम्भू के हरिवशपुराण की दश सन्धियो (सन्धि १०३ से ११२) की रचना की। हरिवशपुराण के अत मे कवि ने अपने को गुणकीर्ति का शिष्य कहा है।

णियगुरु सिरि गुणकित्ति पसाएं। किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएं।

... .

गोवागिरिहे सामीडुविसालए। पणियारहे जिणवर चेयालए।

—भंडारकर इ० पूना की प्रति का अंत।

ये यशकीर्ति और हरिवशपुराण के रचयिता यशकीर्ति एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं जैसा कि उनके गुरु के नाम से प्रतीत होता है। ये यशकीर्ति बडे प्रभावशाली व्यक्ति रहे होगे क्योकि वे भट्टारकीय गद्दी के उत्तराधिकारी थे। उनके समय की सीमाएँ निश्चित रूप से ज्ञात नही है। रयधू उनके शिष्य थे और रयधू का काव्य-

---

१. प्रसंग की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

हु वड कुल नहयलि पुप्फयंत। वहुदेउ कुमरसिंह वि महत।
नहो सुउ णिम्मलु गुण गणविसालु। सुपसिद्धउ पमणइ सिद्धपालु।
जसकित्ति विवुह करि तुहु पसाउ। महु हूरहि पाइय कव्व भाउ। १.।
तथा संधियो की पुष्पिका में भी कवि ने सिद्धपाल का नामोल्लेख किया है।
इय सिरि चंदप्पह चरिए महाकय जसकित्ति विरइए, महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणो पढमोसंधी समत्तो ... १

२. गुज्जर-देसहं उमत गामु। तहि छड्डासुउ हुउ दोण णामु।

... ...

नहो सुउ संजायहु सिद्धपालु। जिण पुज्जदाण गुण गणरसालु। अंतिम प्रशस्ति।

काल पन्द्रहवी शती का अतिम चतुर्थांश और सोलहवी शती का प्रारभिक चतुर्थांश अनुमित किया जाता है और यशकीर्ति ने हरिवश का रचना काल सं० १५०० वि० दिया है। इस आधार पर यशकीर्ति का समय पन्द्रहवी शती का उत्तरार्द्ध और सोलहवी के पूर्वार्द्ध के बीच मे माना जा सकता है।

३४ सन्धियो मे समाप्त 'पाडव पुराण' नामक एक और कृति यशकीर्ति की मिलती है।[1] कवि ने कडवक शैली मे इस कृति की रचना नवगाव नगर मे अग्रवाल कुलोत्पन्न वील्हा साहु के पुत्र हेमराज के लिए की थी। इन यशकीर्ति ने भी अपने को गुणकीर्ति का शिष्य बताया है।[2] कवि ने कृति का रचना काल इस प्रकार दिया है

विक्कमरायहो ववगयकालए, महि, सायर, गहरिसि, अंकालइं।
कत्तियसिय अट्ठमिबुहवासरे, हुउ परिपुण्णु पढमणदीसरे।

प्रशस्ति संग्रह, पृ० १२५

अर्थात् कार्तिक शुक्ल ८ बुधवार वि० स० १५९७ (१७९७ ?) को कृति समाप्त की।[3]

रयधू—रयधू के तेईस ग्रन्थो का अभी तक पता चला है। आदिपुराण, यशोधरचरित, वित्तसार, जीवंधरचरित, पार्श्वनाथपुराण, हरिवशपुराण, दशलक्षण जयमाला, सुकोशलचरित, रामपुराण-रामवलभद्रपुराण, षोडशकारण जयमाला, महावीरचरित, सन्मतिजिनचरित, करकडु चरित, अणथमीकथा, सिद्धचक्रचरित, जिणधरचरित, उपदेशरत्नमाला, आत्मसबोधन, पुण्याश्रवकथा, श्रीपालचरित, समस्तगुणनिधान, सम्यग्गुणरोहण, सम्यकत्वकौमुदी और सिद्धान्तार्थसार।[4]

१. प्रशस्ति संग्रह पृ० १२२-१२६।
२. अंतिम पुष्पिका—इय पाँडुपुराणे . . . सिरि गुणकित्ति
सीस मुणि जसकित्ति विरइय साधु वील्हा पुत्त हेमराज णामंकिए . . . . .
. . वही पृ० १२५।
३. उपर्युक्त हरिवंशपुराणादि के रचयिता और पांडवपुराण के रचयिता एक ही यशकीर्त्ति प्रतीत होते हैं, क्योकि दोनो के गुरु गुणकीर्त्ति हैं। अतः यह संवत् कुछ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। प्रशस्ति सग्रह के संपादक ने इस सं० को १५९७ पढा है जो ठीक लगता है। किन्तु १५९७ वि० स० तक यशकीर्त्ति कदाचित् ही इस योग्य रहे होगे कि वे ग्रंथ की रचना कर सकें।
४ पं० परमानंद जैन ने अपने रयधू विषयक लेख मे इन ग्रन्थो के नाम गिनाए हैं, अनेकान्त, वर्ष ५, किरण १२ पृ० ४०४। आमेर भंडार मे रयधू की निम्न

इन ग्रन्थो मे से अपभ्रंश भाषा मे कौन कौन है ठीक ज्ञात नही है। कुछ सुविधा-पूर्वक उपलब्ध हुए अपभ्रंश ग्रन्थो का सक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है

सुकौशलचरित[1]—चार सन्धियो मे समाप्त हुई सुकौशलमुनि के चरित्र, से सबधित रचना है। चारो सन्धियो मे ७४ कडवक हैं। प्रथम सन्धि मे वदना, आश्रयदाता का परिचय, मगधदेश, राजगृह नगर तथा श्रेणिक राजा के वर्णन है। श्रेणिक के जिनेश्वर से केवली सुकौशल का चरित्र पूछने पर गणधर कथा प्रारम्भ करते है। गणधर ने ऋषभ की उत्पत्ति-वैराग्य आदि का उल्लेख करके उनके वशधर अन्य इक्ष्वाकुवशीय राजाओ का सकेत करके दूसरी सधि समाप्त हुई है। इसी इक्षवाकुवश मे कीर्तिधर राजा हुए। उनकी भार्या सहदेवी ने एक पुत्र प्रसव किया जिसके कुशल होने के कारण 'कौशल' नाम रखा गया। राजा एक मुनि के प्रभाव से विरक्त हो गया। सहदेवी ने नगर में ऋषियो-साधुओ का प्रवेश वद करा दिया इस भय से कि कही उनको देखकर उसका पुत्र विरक्त न हो जाये। उसके इस व्यवहार से नगर जन वडे निराश हुए। उसने ससार मे अनुरक्त रखने के लिए पुत्र के वत्तीस रमणियो से विवाह करा दिये। एक दिन अट्टालिका के ऊपर से राजकुमार ने एक मुनि को देख लिया और सूपकार से कुमार को ज्ञात हुआ कि मुनि कुमार के पिता कीर्तिधवल थे और मुनियो का प्रवेश नगर मे वद होने के कारण उन्हे वांधा गया है। माता के अनुरोध करने पर भी कुमार घर से विरक्त होकर निकल जाते हैं। कालान्तर मे मरकर कर्मानुसार सहदेवी व्याघ्री हुई और कराल स्वभाव के अनुसार उसने सुकौशल को खा लिया। पिता पुत्र अत मे स्वर्ग को जाते हैं। सहदेवी जाति स्मरण होने पर सन्यासिनी होकर स्वर्ग को जाती है।

सुकौशलचरित की भूमिका अनुपात से अधिक है, मुख्य कथा वहुत सक्षिप्त

अपभ्रंश कृतियाँ उपलब्ध हैं:—आत्म संवोधकाव्य प्र० सं० पृ० ८५, धन्य-कुमार चरित प्र० स० पृ० १०५, पद्मपुराण वही पृ० ११६, मेघेश्वरचरित वही, पृ० १५६ श्रीपालचरित वही पृ० १७८ तथा सन्मतिजिन चरित पृ० १८०।

१. इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति के लिए दिल्ली के बाबू पन्नालाल जैन अग्रवाल का लेखक कृतज्ञ है। तथा जैन सिद्धान्त भास्कर जै० सि० भा० भाग १०, किरण २, मे डा० रामजी उपाध्याय का लेख 'सुकौशल चरित' सुकौशल-मुनि की कथा हरिषेणाचार्यकृत वृहत्कथाकोष (सिंघी जैन सीरीज)

है। दो एक साधारण वर्णनो के अतिरिक्त कृति मे काव्य की मात्रा बहुत कम है। अलकार और सुभाषितादि के भी प्रयोग आकर्षक नही हैं। छदो के विधान मे भी कोई नवीनता या विविधता नही मिलती।

कृति की रचना कवि ने अपने गुरु कुमार गणधर की आज्ञानुसार की थी। ग्रथ के प्रचार के लिए कवि ने आपासाहु के पुत्र रणमल्ल का आश्रय स्वीकार किया था। रणमल्ल राजा डूगरसिंह तोमर के समय मे थे। कृति की रचना कवि ने गोवग्गिर (गोपाचलगिरि) के दुर्ग पर स० १४९६ वि० मे की थी।[1]

सन्मत्तिनाथ चरित[2]—दश सन्धियो की इस रचना मे अतिम तीर्थंकर महावीर की कथा है। प्रार भ मे कवि ने बताया है कि श्रुतदेवी ने स्वप्न मे कवि को काव्य-रचना के लिए प्रेरित किया था। कवि के गुरु यशकीर्ति ने भी कवि को उत्साहित किया।[3] चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदन्त आदि तथा दुर्जनों का स्मरण करते हुए नम्रतापूर्वक कवि ने जबूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश, राजगृहनगर, श्रेणिकराज

---

१. प्रसंग से संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार है :
कुमरसेणु पुणु परमु जईसरु।
आसीवाउ विण्णु तहु राए। णेहु समप्पिवि अविरल वाए।
पुणु गुरुणा अपिउभो पंडिउ। रयधू णिसुणहि सालअ खंडिय।
.. .. ..
तहु सुकोसल चरिउ सुहंकरु। विरयहि भवसय दुक्खखयंकरु। १.२-३
रचना काल इस प्रकार दिया है।
सिरि विक्कम समयंतरालि
चउदह संवच्छरह अन्न। छण्णउव अहिय पुणु जाय पुण्ण।
माहहु जि किण्ह दहमादिणम्मि। अणुराहरिक्खि पयडिय सकम्मि।
गोवागिरि डुंगरणिवह्हुरज्जि। पहु पालंतइ अरिरायतज्ज।' ४.२३।

२. ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक दिल्ली निवासी बाबू पन्नालाल जी जैन अग्रवाल तथा आमेर शास्त्र भंडार जयपुर का आभारी है। दे० प्रशस्ति संग्रह पृ० १८०-१८४।

३. यथा भव्व कमरइ सर वोह पयंडो। वंदिवि सिरि जसकिहि असंगो।
तस्स पसाएं कव्वु पयासमि। चिरभवविविहिउ असुहु णिण्णासमि।
—१.३।
सुकौशलचरित मे रयधू के गुरु का नाम कुमार सेन मिलता है, संभव है उनके

का परिचय दिया है। श्रेणिक के प्रश्नानुसार गौतम ने महावीर के पूर्व जन्मो की कथा (सधि १-४), जन्म (सधि ५), केवल ज्ञानोत्पत्ति (स० ६), पुद्गलादि के विवेचन (सधि ७-८), तथा महावीर की चरमकल्याण प्राप्ति (सधि ९) की कथा कहकर अतिम सधि मे भद्रवाहु की कथा कहकर कृति को समाप्त किया है। कवि पर पुष्पदन्त का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। छद और भाषा की दृष्टि से रयघू साहित्यिक अपभ्रंश की परपरा मे आते है।

अपने गुरु यशकीर्ति की प्रेरणा से कवि ने इस कृति की रचना गोपाचलगिरि पर की थी। इस कृति को कवि ने सहजपाल के पुत्र तोसठ को समर्पित किया है।[1] कवि ने रचना तिथि का निर्देश नही किया है, अपनी कुछ कृतियो का कवि ने नाम-निर्देश किया है किन्तु सुकौशल-चरित का उनमे नाम नही है, सभव है उस कृति से इस कृति की रचना पहले हुई हो, और उस दशा मे इसका रचनाकाल स० १४९६ के पूर्व माना जा सकता है।

बलभद्रपुराण[2]—प्रस्तुत कृति मे राम की कथा है। दूसरी सधि मे रावण की दिग्विजय का वर्णन है, उसके यम और वालि से हुए कुछ युद्धो के भी उल्लेख हैं। तृतीय सधि मे हनुमत की उत्पत्ति, दशरथ और जनक की कथाएँ है। चतुर्थ

दो गुरु रहे हो। प्रो० गोपानी ने भारतीय विद्या के एक लेख मे यशकीर्ति को ही रयघू माना है, जो भ्रम है।
भारतीय विद्या भवन, बंबई १९९९ वि० पृ० ३४६ तथा कुछ अन्तर के साथ पृ० ३०५ पर भी मिलती है।

१. कृति के प्रारम्भ मे तथा प्रत्येक सधि की पुष्पिका मे कवि ने इसका उल्लेख किया है—यथा संधि प्रथम की पुष्पिका—
इय सम्मइ जिण चरिए णिरुवम संड्डयरयणसभरिए, वरचउवग्गपयासो, वुहयणचित्तरसजणिय उल्लासो सिरि पंडिय रयघू विरइए साहु सहज पाल सुयसिरि सघाहिव सहुएव लहु भायर तोसडसाहु णामकिए...
पढमोसग्गो। तोसड के वंश का विस्तृत परिचय कृति की प्रशस्ति मे दिया है। कृति की रचना तोमर राजा डूंगर सिंह के समय मे गोपाचलगिरि पर की थी। प्र० सग्रह, पृ० १८२-८७।

२. बलभद्रपुराण की त्रुटित प्रति के लिए दिल्ली निवासी बाबू पन्नालाल जी जैन अग्रवाल का लेखक कृतज्ञ है। प्रति के प्रारंभ का कुछ भाग तथा बीच के अनेक पत्र त्रुटित हैं। कृति का दूसरा नाम पद्मपुराण भी है दे० प्रशस्ति सग्रह पृ० ११६-११९।

सधि मे दशरथ और कैकेयी के विवाह की सूचना है। और आगे राम और सीता का विवाह, राम का बनवास, सीताहरण, हनुमदादि से मित्रता तथा सीता के लका में होने की सूचना (सधि ५), राम रावण युद्ध तथा रावण के स्थान पर विभीषण का राज्यारोहण, तथा राम का लका से बहुत सपत्ति लेकर लौटने की कथा दो सधियो (६-७) मे वर्णन करके आगे लोकापवाद के कारण सीता का निर्वासन, लवकुश जन्म तथा फिर सबके पुर्नमिलन की कथा एक सधि (८) मे कही गई है। सधि नौ मे सीता के शील की परीक्षा का करुण प्रसग है, वे अत मे दीक्षा ले कर सब त्याग देती है। राम उनकी वदना करते हैं। अतिम दो सधियों (१०-११) मे राम, लक्ष्मण, रावणादि, लवकुश के पूर्व जन्मो की कथा तथा निर्वाण गमन की कथा है।

रामकथा के लिए कवि ने जैन सप्रदाय में प्रचलित राम कथा की परपरा का ही अनुसरण किया है।[१] कृति कवि ने हरिसिंह साहु को समर्पित की है जिसका उल्लेख प्रत्येक सधि के अत मे तथा कही कही प्रारभ मे भी किया है[२] और गोपाचल-गिरि का भी उल्लेख किया है जिससे ऐसा लगता है कि कवि ने वही रचना समाप्त की होगी, अतिम पत्र त्रुटित होने के कारण रचना तिथि ज्ञात नही हो सकी। सुकौशल-चरित मे बलभद्रपुराण का उल्लेख मिलता है[३] अत. उसकी रचना उक्त कृति के पूर्व (स० १४९६) ही हुई होगी।

सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श मे रयूध ने रचना की। ऊपर उल्लिखित तेईस कृतियों के अतिरिक्त रयघू ने अन्य ग्रन्थो की भी रचना की होगी।[४] उनकी रच-

---

१. रविषेणाचार्य के पद्मपुराण के आधार पर प्रस्तुत कृति में कथा मिलती है।

२. इय बलहद्दपुराणे.... सिरि पंडिय रयधू..... सिरि हरसीहसाहुकद्दिठ-कंट्ठाहरणे..... परिच्छेउसमत्तो ।

३. बलहद्दह्व पुराण पुणु तीयउ। णियमण अणुराएं पइ कीयउ। सुकौशल चरित १.२ ।

४. सन्मतिजिन चरित मे उन्होंने मेघेश्वर चरित का उल्लेख किया है
पुणुमेहेसर चमुवइ चरियउ, लोइ पयासिय बहुरस भरियउ। १.९। इसके अतिरिक्त उसी कृति मे कुंथु पार्श्व विज्ञप्ति, सिद्धचक्रविधि, सुदर्शन शील कथानक, तथा धन्यकुमार चरित के भी उल्लेख मिलते हैं। सिद्ध चक्रविधि और श्रीपाल चरित एकही कृति हैं। धन्यकुमार चरित ४ सन्धियो मे समाप्त हुआ है। गोपाचलगिरि पर इसकी रचना की थी और भुल्लण को कृति सम-

नाओ मे प्राप्त सूचनाओ से ज्ञात होता है कि उनका बहुत दिनो तक गोपाचलगिरि पर निवास स्थान रहा। वहाँ के तत्कालीन तोमरवशीय डूगरसिंह तथा कीर्तिसिंह राजाओ के वे सम्मान के पात्र रहे होगे। सम्यक्त्व कौमुदी की रचना उन्होने कीर्ति सिंह के लिए की थी।[1] कीर्ति सिंह को ज्ञानार्णव की स० १५२१ वि० मे लिखित लेखक प्रशस्ति मे राज्य करता हुआ कहा गया है।[2] अत रयधू का रचना काल सुकौशलचरित के रचना काल से कुछ पूर्व स० १४९० वि० से स० १५२१ तक मान सकते है। यशकीर्ति और कुमारसेन रयधू के गुरु थे।[3] अपनी कृतियो मे जिस प्रकार की नम्रता का प्रदर्शन किया है उससे रयधू के सरल प्रकृति होने का अनुमान किया जा सकता है।[4] रयधू के पिता सघाधिप हरिसिंह थे, देवराज उनके पितामह थे।[5] जन्मादि का कही उल्लेख नही मिलता। ये दिगबर जैन सप्रदाय के थे।

रयधू के पीछे भी अपभ्र श मे रचित कई रचनाएँ मिलती है किन्तु इस परपरा का रयधू को अतिम प्रतिष्ठित आचार्य मान सकते है। उनके समय से पहिले अपभ्र श का साहित्य की भाषा के रूप मे स्थान रह गया था किन्तु मध्य देश मे बैठकर इतनी कृतियो की उस भाषा मे रचना करना एक महत्वपूर्ण बात है। उनकी कृतियो

र्पित की है। प्र० सं० पृ० १०५-१०७। मेघेश्वर चरित तेरह सन्धियो मे समाप्त हुआ है और खेमसीहसाहु को समर्पित किया गया है (दे० प्र० सं० पृ० १५६–१५९।) पुण्याश्रव कोश भी अपभ्रंश कृति है।

१. अनेकान्त, वर्ष ५, किरण १२, पृ० ४०४।

२. वही, पृ० ४०३।

३. सुकौशल चरित मे रयधू ने कुमारसेन को अपना गुरु कहा है, और सन्मतिजिन चरित मे यशकीर्ति को गुरु कहा गया है। यशकीर्ति काष्ठासंघ की माथुरान्वय परंपरा के थे तथा पुष्करगण भट्टारक इनकी उपाधि थी।

४. यथा : हउं तुच्छ मइ कव्वु किह कोरमि। विणुवलेण किं मरणमहिं धीरमि।
णो आयण्णिय वायरण तक्क। सिद्धंत चरिय पाहुड अवक्क।
अम्हारिसेहिं णियघर कईहिं, बुहकुलइ मज्झि उज्झियमईहिं।
—सन्मति जिन चरित, १.९।

५. अनेकांत, वही पृ० ४०१ तथा सुकौशल चरित-तं णिसुणिवि हरिसिंघहु णंदणु .१३।
प्रशस्ति संग्रह पृ० १८२, तथा पृ० १७९-८० हरिसिंघ संघविहु पुत्तु रयघू कहगुणगणनिलउ। वही पृ० १८० तथा वही पृ० १०६ आदि, १४७।

के अध्ययन से निश्चय ही बहुत सी नवीन महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलेगी। निश्चय ही रयधू के सम्मुख ऐसा पाठक समाज रहा होगा जिसको सम्मुख रख कर ही उन्होंने अपभ्रंश कृतियो की रचना की होगी।

नरसेन—८२ कडवको की कृति श्रीपाल चरित[1] एक सुदर प्रेम कथा है। आत्म विश्वासी, दृढ साहसी धार्मिक तथा अनेक गुणो से युक्त श्रीपाल का चरित्र कृति का मुख्य विषय है। अवन्ती नगरी के राजा प्रजापाल ने अपनी रूपवती और गुणवती पुत्री मयनासुदरी का विवाह रुष्ट होकर एक कुष्ट रोगी से कर दिया। पिता की आज्ञाकारिणी मयनासुन्दरी ने कोई आपत्ति नही की। समाधिगुप्त नामक मुनि के उपदेशानुसार उसने सिद्धचक्र पूजा की। जिनपूजा से उसके पति श्रीपाल का शरीर स्वस्थ हो गया। श्रीपाल अपनी राजधानी चपापुरी (अगदेश) चला जाता है। एक समय वह व्यापार के लिए वत्स देश पहुँचा जहाँ धवल सेठ था। धवलसेठ भी उसी सार्थवाह मे सम्मिलित हो गया। वे समुद्र मे यात्रा करते हुए रत्नद्वीप के समीप पहुँचते हैं। मार्ग मे वर्बर चोरो से श्रीपाल ने धवल सेठ की रक्षा की और हस द्वीप मे पहुँचकर राजकुमारी रत्नमजूषा से विवाह किया। कपटपूर्वक धवल सेठ श्रीपाल और रत्नमजूषा को प्रसन्न कर लेता है और रत्नमजूषा पर अनुरक्त हो जाता है। वह कपट करके श्रीपाल को समुद्र मे ढकेल देता है और उसकी स्त्री के पास प्रेम प्रस्ताव भेजता है। विकल रत्नमजूषा की प्रार्थना सुनकर जलदेवी प्रकट होती है तथा पूर्णभद्रदेव प्रकट होकर धवल को दड देता है और रत्नमजूषा को सान्त्वना देता है। उधर श्रीपाल भी किनारे जा लगता है और दलवट्टण नगर की राजकुमारी गुणमाला से विवाह करता है और वहाँ के राजा का प्रिय पात्र वन जाता है।

धवल सेठ का प्ररोहण भी उसी नगर मे पहुँचता है। धवल राजा को भेंट उपहार देने जाता है और श्रीपाल को देखकर चिंतित होता है। उसे राजा के यहाँ से अपदस्थ करना चाहता है। वह इस कार्य के लिए कुछ डोम लोगो को तैयार करता है। राजा के यहाँ वे नृत्य करते हैं और श्रीपाल को देखकर चिल्ला उठते हैं कुछ उसे अपना भाई कहते हैं कुछ पुत्र। राजा अपने जामाता को डोम समझ कर उसे मार डालने की आज्ञा देता है। किन्तु सब वस्तुस्थिति प्रकट होती है और राजा श्रीपाल को पुन अपनाता है। रत्नमंजूषा भी आ मिलती है। श्रीपाल धवल सेठ को क्षमा कर देता है। श्रीपाल कोकण देश जाता है और वहाँ के राजा की

---

१. कृति की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर के अधिकारियों का कृतज्ञ है। प्र० सं० पृ० १७६-७७।

पद्मावती आदि आठ कुमारियों द्वारा प्रस्तुत समस्याओं की पूर्ति करके उनसे विवाह करता है।[1] अनेक स्थानो पर भ्रमण करता हुआ श्रीपाल अवती पहुँचता है और विरह व्याकुल मयनासुदरी को प्रसन्न करता है। वे सब चपा नगरी जाते है। कालान्तर मे सजममुनि से अपने पूर्व भवो की कथा सुनकर जिनपूजा करता है। अत मे विरक्त होकर परम निर्वाण प्राप्त करता है।

श्रीपाल चरित्र सरल शैली[2] मे लिखी गई साहसपूर्ण प्रेम कथा है। इस प्रकार की सभी प्रेमकथाओ के नायको को जैन लेखको ने अनेक घटनाओ के बीच मे से विजयी होकर निकलते हुए दिखाया है और केवल एक परिणाम वे दिखाना चाहते है कि धार्मिक व्यक्ति ही सफल होता है और सब सुख पाता है। मैनासुदरी के द्वारा की गई जिनपूजा के फलस्वरूप श्रीपाल स्वस्थ हो जाता है और इतना सुदर हो जाता है कि सभी कुमारियाँ, जो उसे देखती है, मोहित हो जाती है। कृति मे जहाँ तहाँ सरल ढग से मानव मनोभावो का सुदर चित्रण हुआ है।[3] श्रीपाल का समुद्र-

१. एक दो समस्याएँ इस प्रकार हैं : सौभाग्य गौरी की समस्या जहं साहसु तहं सिद्धि।

सतु सरीरह आहतउ, दइया हत्तीबुद्धि।
कंतु सहाउ म छडियहं, जं साहसु तं सिद्धि।

२. कडवक-सन्धि-बद्ध शैली मे लिखी कृति है। कवि ने अधिक छंदों का प्रयोग नहीं किया। पद्धडिया, घत्ता प्रमुख हैं। नम्रता प्रकट करते हुए कवि ने कृति के प्रारंभ मे गाथा दोहा, छप्पय का उल्लेख किया है, कवि के समय में ये छद श्रेष्ठ माने जाते होगे।

तह गाह दोह छप्पय सरुव। जाणिय चउरासी बधरुव। १.७।

३. विदेश जाते हुए पति के प्रति मैनासुंदरी के सरल वचन

जणि वीसरहु हमारे सामिय। साहसु पुरिसायारु गुसामिय।
जण वीसरहु इक्खु परमक्खर। हियइदेव पणतीसउ अक्खर।
जण वीसरहु सुपिय आलाउह। रायणीइं छतीसउ आउह।
जण वीसरहु कहउ जगदुल्लहं। सामिय कज्ज करेव्वउ वल्लहं।
वयणु एक्कुपिय कहउ समासिय। जण वीसरइ णाह इहवासिय।

हसद्वीप की राजकुमारी रत्नमंजूषा और श्रीपाल के विवाह का वर्णन—

हरिहिं वंस तहिं मडपु रइयउ, चउरी भावरि सत्त दिवाविय।
रयणमजूस तासु परिणाविय।
गयवसु दिण्ण रयण असरालय रयणकचोल सुवण्णइ थालइ। १.३५।

यात्रा पर जाना और फिर वहाँ धवल सेठ द्वारा समुद्र मे फेका जाना और फिर मिल जाने का प्रसग मध्ययुग के अनेक काव्यो का प्रिय विषय है।[१]

नरसेन की दूसरी छोटी कृति वर्द्धमान कथा[२] है। इस कृति मे वर्द्धमान् तीर्थंकर का प्रसिद्ध चरित्र वर्णित है। कोई नवीनता नही है।

अपनी कृतियो मे नरसेन ने न तो अपने सबध मे ही कुछ कहा है और न रचना तिथि ही दी है। अनेक प्रयोग ऐसे मिलते है जिससे वे बहुत पुराने प्रतीत नही होते।[३] श्रीपाल चरित की एक हस्तलिखित प्रति स० १५१२ वि० की लिखित मिलती है और वर्द्धमान कथा की प्रति भी बहुत पुरानी प्रतीत होती है। अत निश्चय ही नरसेन विक्रम की पन्द्रहवी शती से पीछे के नही हो सकते।

जयमित्रहल—ग्यारह सन्धियो मे समाप्त वर्द्धमान चरित्र जयमित्र हल की कृति मे अतिम तीर्थंकर महावीर की कथा है।[४] कथा मे कोई नवीनता नही है। कृति के अत मे कवि ने अपना परिचय या रचना तिथि नही दी है। देवराम के पुत्र (?) होलिवर्मा को कृति समर्पित की गई है।[५] कवि ने अपने गुरु का नाम पद्मनदि दिया है जिससे भी कवि के काल का अनुमान लगाना सभव नही है।[६] कवि ने अपने पुत्र का नाम अल्ह साहु बताया है और उसके लिए मगल कामना की है।[७] कृति की सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति स० १५४५ वि० की

---

१. जायसी आदि की प्रेम कथाओ मे भी यह मिलता है। दे० आगे प्रभाव वाले भाग मे।

२. आमेर शास्त्र भडार, प्रशस्ति सग्रह, पृ० १७०-७१।

३. हमारे (टिप्पणी १ के उद्धरण में), टापू (द्वीप दीव टापू संघट्टहि १.४१) धोबी चमार घर करहिं भोज्जु (२.४९) इत्यादि।

४. दे० प्रशस्ति सग्रह जयपुर १९५० पृ० १६७-१७०. जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ११, किरण १ पृ० ३८-४०।

५. खदउ देवराम खंदणुधर होलिवम्मु कण्णवउ णयकर
एहु चरितु जेण वित्थारिउ लेहाविवि गुणियणउवयारिउ, वही, पृ० १६८।
तथा सधियो की अंत की पुष्पिकाओ में—
इय सिरी वड्ढमाणकव्वे पयडिय....विरइय जयमित्तहल्लसुकइ तो..
वहोलिवम्मकण (सूणा?) हरणे.. एयारहयो संधियरिछेउ समत्तो।

६. पउमणदि मुणिणाह गणिंदहु चरण सरणु गुरु कइ हरि इंदहु। वही पृ० १६८

७. अल्हसाहु साहसु मडु णंदणु, सज्जण जलमण णयणाणंदणु.
होहुचिराउ सणियकुलमंडण. मगगण जण दुहरोरविहंडण, वही, पृ० १६८।

है[1] अत कृति का रचनाकाल इससे पहिले होना निश्चित है।

हरिदेव—दो सन्धियो मे समाप्त 'मदन पराजय'[2] हरिदेव की एक रूपक कृति है। पहिली सधि मे मदन के अखड राज्य और वैभव का वर्णन है। दूसरी सधि मे मदन, पच इद्रिय, मिथ्यात्व, मूढत्व, मोहादि भटो को लेकर महावीर पर आक्रमण करता है। महावीर मदन और उसके भटो को परास्त कर देते हैं। कवि ने मोहादि भटो और ज्ञान के सघर्ष का वर्णन युद्ध की शब्दावली मे ही किया है जो हास्यपूर्ण लगता है।

कवि ने कृति के अतिम पद्य मे तथा सधियो की पुष्पिकाओ मे अपना नाम 'हरिदेव' दिया है। रचनाकालादि का उल्लेख नही किया।[3] कृति की प्रति सं० १५७६ की है अत कवि ने उससे पूर्व कभी कृति की रचना की होगी।[4]

माणिक्कराज—नागकुमार चरित और अमरसेन चरित दो अपभ्र श कृतियाँ माणिक्क पडित की उपलब्ध हुई है।[5] नागकुमार चरित मे नौ सन्धियाँ हैं और पुष्पदन्त की कृति के समान ही कथा है कोई परिवर्तन नही है। अमरसेन चरित

---

१. प्र० सं० पृ० १७०, पं० परमानन्द जैन ने कृति की एक सं० १६०८ वि० की प्रति का उल्लेख किया है। जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण १ पृ० ३८-४०।

२. हस्तलिखित प्रति के लिये लेखक आमेर शास्त्र भंडार के अधिकारियों का कृतज्ञ है।
दे० प्रशस्ति संग्रह पृ० १५३-५४, कृति के प्रारंभ के ९ कडवक नहीं मिलते हैं।

३. यथा :—मयणपराजए ण विरइय कह हरएवि रंजिवि बुहयणसह. २.२५
इय मयणपराजयचरिए हरिएव कइ विरइए. . बुइज्जउ परिच्छेउ सम्मतो।

४. प्र० सं० पृ० १५४। दे० नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५०, अंक २-३, पृ० १२० पर डा० हीरालाल जैन द्वारा कृति की एक अन्य प्रति की सूचना।

५. माणिक्क पंडित की कृतियों का अध्ययन लेखक ने आमेर शास्त्र भंडार में किया था। माणिक्क पडित की कृतियों के अस्तित्व का साहित्यिक जगत को प्रथम परिचय देने का श्रेय आमेर भंडार को ही है। अन्यत्र कदाचित् कहीं लेखक की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। दे० प्रशस्ति संग्रह पृ० ७९-८५ तथा ११३-११६। दे० जैन सिद्धान्त भास्कर ११.१ पृ० ३८-४०।

मे सात सन्धियाँ है। पहिली कृति मे अमरसेन के पूर्वजन्मो की कथा वर्णित की है। वह गो-चरवाहा था। उसने गुरु का उपदेश सुना किन्तु गुरु ने पुष्पादि से जिनपूजा करने का उपदेश दिया था जिसको वह अर्थाभाव से न कर सका। तब गुरु ने व्रत उपवास करने का उपदेश दिया जिसका उसने दृढतापूर्वक पालन किया। अपने स्वामी के आग्रह करने पर भी उसने व्रत भग नही किया न रात्रि भोजन ही किया। इस प्रकार व्रत करते हुए जीवन समाप्त करने के पश्चात् वह सनत्कुमार स्वर्ग को गया। उसको दूसरा जन्म कलिग देश के राजा के यहाँ मिला, अमरसेन नाम रखा गया। उसकी सौतेली माँ ने उसे कलकित करना चाहा, कुपित होकर पिता ने उसके वध की आज्ञा दी। किसी प्रकार प्राण बचाकर अमरसेन चला गया और कचनपुर का राज्य प्राप्त किया। गुरु उपदेश सुनने से वह प्रव्रज्या व्रत लेना चाहता है। पूर्व जन्मो की कथा सुनने से उसे जाति स्मरण हो आता है। वह राज्य त्याग देता है। और अन्त मे सद्गति पाता है।

नागकुमार चरित और अमरसेन चरित दोनो की कृतियो पर पूर्व कवियो का पर्याप्त प्रभाव दिखता है। नागकुमार चरित पर पुष्पदन्त की कृति का स्पष्ट प्रभाव है और अमरसेन चरित मे अमरसेन के कचनपुर का राजा बनने की कथा पर स्पष्ट ही करकडु चरित (कनकामरकृत) की छाया लक्षित होती है। माणिक्क पडित की दोनो ही कृतियाँ सरल शैली मे लिखी गई हैं। काव्यात्मक स्थल बहुत ही कम हैं। प्रारभ मे दुर्जन प्रसगादि वर्णन परपरानुकूल हैं। छदो के प्रयोग मे भी कोई विविधता नही मिलती। पद्धडिया, घत्ता आदि प्रमुख छद है।

कवि ने अपना तथा अपने आश्रयदाता का विस्तृत परिचय कृतियो की प्रारभिक तथा अतिम प्रशस्तियो मे दिया है।[1] कवि ने अपना नाम कृतियो की सधियो की पुष्पिकाओ मे माणिक्क या माणिक्कराज दिया है।[2] इनके पिता का नाम बुध-

---

१. प्रशस्ति सग्रह पृ० ७९-८५ तथा पृ० ११३-११६। तथा अनेकान्त अक्टू०-नवं० १९४९ पृ० १६०-१६२ पर प० परमानंद जैन शास्त्री का लेख 'सोलहवीं शताब्दी के दो अपभ्रंश काव्य।'

२. इय वय पंचमिसिरि णायकुमार चारुचरिए . सिरि पडिय माणिक्कराज विरइए .. (नागकुमार चरित संधि १)
इय महाराय सिरि अमरसेणचरिए चउवग्गसुकह कहा.. सिरि पंडिय मणिमाणिक्क विरइए...(अमरसेन चरित संधि १.)

सूरा और माता का दीवा था। जैसवाल कुल के थे।[1] कवि ने अपनी गुरु परपरा का भी उल्लेख किया है और पद्मनदी को अपना गुरु बताया है।[2] अमरसेन चरित की रचना कवि ने 'रोहियासपुर' (वर्तमान रोहतक) मे स० १५७६ वि०-मे की। चौधरी देवराज की प्रेरणा मे कृति की रचना की थी और उन्ही को कृति समर्पित की है। कवि ने आश्रयदाता का विस्तृत परिचय दिया है।[3] नागकुमार चरित की रचना सवत् १५७९ वि० मे की तथा जैसवाल कुलोत्पन्न जगमी के पुत्र टोडरमल को कृति समर्पित की है।[4]

अज्ञात—किसी अज्ञात कवि की रचना 'हरिषेण चरित' मे जैन सम्प्रदाय के एक चक्रवर्ती हरिषेण का चरित्र ४ सधियो मे समाप्त हुआ है। प्रारम में कवि ने मगलाचरण तथा अपनी विनम्रता प्रकट करते हुए काम्पिल्य नगरी का वर्णन किया है। हरिषेण उसी नगरी का राजकुमार था। वह चपा के वन मे जाता है, कवि ने वन का सुदर वर्णन प्रस्तुत किया है। द्वितीय सधि मे हरिषेण और सिंधु देश की राजकुमारी कन्याकुमारी (कण्णकुमारी) के प्रेम के प्रसग का वर्णन है अन्त मे दोनो का विवाह होता है। तीसरी सधि मे हरिषेण और एक विद्याधर के युद्ध का वर्णन है। हरिषेण विद्याधर को परास्त करके चपा लौट जाता है। अतिम सधि मे हरिषेण के निर्वाण प्राप्त करने की कथा है।

कडवक बद्ध इस चरित काव्य के रचयिता ने अपना नाम नही दिया है प्रारम के एक पद्य मे हर्ष (?) कवि सिंह और सिद्ध का उल्लेख किया है और उनकी रचना जबू चरित का उल्लेख किया है।

नवि सुललिय वाणि ताहि हरिसु, कवि सीहहु जंबू असमसरिसु
तथा-पणवेवि सिद्ध पुणु कहमि कह ।

सिद्ध या सिंह का काल भी निश्चित नही है अत इसमे प्रस्तुत रचना के काल

---

१. दे० नागकुमार चरित के प्रारंभ के पद्य, पृ० ११३-१४ प्रशस्ति।
अमरसेन चरित—प्रारभिक अंश, प्रशस्ति० पृ० ७९।
२. वही, पृ० ८० आदि।
३. वही पृ० ११४-११५ कृति की हस्तलिखित प्रति सं० १५९२ की है।
रचनातिथि इस प्रकार दी है—
विक्करायइववगयकाले, लेस मुणीस विसर अकाले,
पणरहसयगुणासिय उरवालें, फागुणचंदिण पक्लि ससिकालें
णवमी सुहणक्लित्तु सुहवालें, सिर पिरथीचंदु पसायं सुंदरु।
४. कृति की हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक आमेर शास्त्र भंडार का कृतज्ञ है।

पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। कृति की हस्तलिखित प्रति सं० १५८३ की है अतः कृति का रचनाकाल इससे पूर्व अवश्य होना चाहिए।[1]

श्रुतकीर्ति —श्रुतकीर्ति की दो अपभ्रंश रचनाएँ कडवकबद्ध प्राप्त हुई हैं ६० सन्धियों की परमेष्ठिप्रकाशसार[2] और ४४ सन्धियों की हरिवंशपुराण।[3] दोनों ही कृतियों के कथा विषय में कोई नवीनता नहीं है। प्रथम ग्रंथ की रचना कवि ने वि० सं० १५५३ में मालवा में स्थित डवचल (?) ग्राम में की थी वहाँ जयसिंह सघपति थे।[4] और दूसरी कृति की रचना गगा यमुना की अतर्वेदी में स्थित अभयपुर नगर के काष्ठसघ के चैत्यवर में की।[5] कदाचित् कवि ने किसी 'धर्मपरीक्षा' कृति की भी रचना की थी जैसा एक उल्लेख से प्रतीत होता है—

विरइय पढमतिमहि विस्थारिय, धम्मपरिक्ख पमुह मणहारिय।

—प्र० सं० पृ० १२२

भगवतीदास—भगवतीदास का मृगाँकलेखाचरित्र (या चंद्रलेखा)[6] कदाचित् सबसे अतिम अपभ्रंश कृति है जिसका रचनाकाल वि० सं० १७०० है।[7] कृति में कडवक बद्ध शैली का पालन तो किया गया है किन्तु समयानुकूल प्रभाव के अनुकूल दोहों के प्रयोग भी मिलते हैं तथा बीच बीच में तत्कालीन काव्यभाषा का भी

---

१. दे० प्र० सं० पृ० २००.।

२. दे० प्रशस्ति संग्रह, पृ० १२०-१२२।

३. वही, पृ० १९५-१९८।

४. रचना तिथि इस प्रकार दी है :

दहपणसयलेवण गयवासइं पुण विक्कमणिवसंवच्छर हैं।
तह सावणमासहु गुरपंचमिसहुं गंथु पुण्णु तयसहसतहं हे
मालव देस दुगार्में डवचलु वट्टइ सहियासु महायलु
साहिण सीरुणाम तह णंदणु रायबम्म अणुरावड बहुगुणु।
पुज्जराजु वणिभंति पहाणइं ससरदासु गयंदहं आणइं
जइसिंघु तह संघवइ पसत्थइ संकर णेमदासु बुहतत्थइ

वही, पृ० १२१ आदि।

आश्रयदाता का वंश परिचय और भी दिया है।

५. दे० वही, पृ० १९६ आदि।

६. दे० वही, पृ० १५३-१५४। दे० जैन सिद्धान्त भास्कर ११.१. पृ०३८-४०।

७. वही, पृ० १५५।

व्यवहार मिलता है। अपभ्रंश परंपरा की यह कदाचित् अंतिम कृति है। भगवती दास देहली के भट्टारक गुणचंद्र के प्रशिष्य तथा भट्टारक महेन्द्र सेन के शिष्य थे। इन्होंने हिन्दी में अनेक ग्रन्थों की रचना की है।[1]

जैन अपभ्रंश साहित्य का जो अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह किसी भी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अनेक छोटे बड़े कडवक बद्ध चरित काव्य,[2] व्रत कथाएँ[3] तथा अन्य कृतियों में स्वतंत्र पद्य उद्धृत[4] मिलते हैं। शास्त्र भंडारों

---

१. दे० हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १००-१०३।

२. कुछ कृतियाँ इस प्रकार हैं—गुणभद्र के शिष्य पूर्णभद्र कृत पाँच सन्धियों में समाप्त काव्य सुकुमाल चरिउ की खंडित प्रति आमेर शास्त्र भंडार में है, कृति अपभ्रंश में है, उसी प्रकार आसवाल कृत 'पासणाह चरिउ' की एक अपूर्ण प्रति सं० १८९१ की लिखी है दे० ना० प्र० पत्रिका सं० ५०-३-४ पृ० १२० तथा जैन सिद्धान्त भास्कर ११.१. पृ० ३८-४० तथा महाचंद्र कृत शान्तिनाथ चरित (सं० १४८७ वि० में रचित वही पृ० ४० तथा अनेकान्त वर्ष ५, किरण ६-७) संधिबद्ध काव्य की प्रति प्राप्त हुई है। एक या दो सन्धियों में समाप्त होनेवाली छोटी छोटी अनेक कथा कृतियाँ मिलती हैं। यथा—आमेर शास्त्र भंडार के गुटकों में प्राप्त कुछ कृतियाँ इस प्रकार हैं नवकार महात्म्य (५ कडवक), सुदर्शन पायडी (७ कडवक) बाहुबलि पाथडी (९ कडवक), द्वादशानुप्रेक्षा (१६ कडवक), अणथमी संधि (१६ कडवक), मणुय संधि (८ कडवक), शिवकुमार जयमाल (कवडक २९), रोहिणी विधान कथानक (२ संधि, कडवक १७) इत्यादि।

३. व्रत कथाओं का बाह्य रूप संधिबद्ध चरित काव्यों के समान ही है। अनेक सुंदर काव्यमय व्रत कथाएं मिलती हैं, निर्झर पंचमी व्रतकथा आदि सुंदर कथा कृतियाँ हैं।

४. अनेक प्राकृत कृतियों में अपभ्रंश के पद्य बिखरे हुए मिलते हैं : महावीर चरित (स० ११३९) में गुणचंद्र ने पद्धडिया, रड्डा, घत्ता आदि छंदों में लगभग ७० अपभ्रंश पद्य उद्धृत किए हैं। (दे० पृ० ३, २९, ५२-५६, ७५-७६, ८०, ११३-११५, १२०-२, २१५, २३२, २९७ तथा ३११-१२ इत्यादि) देवेंद्रगणि या नेमिचंद्र के महावीरचरित (सं० ११४१ वि०) में रोला, रड्डा, पद्धडिया छंदों में अपभ्रंश के ५२ पद्य मिलते हैं. इन पद्यों में जिन स्तुतियाँ मिलती हैं (दे० याकोबी, स० कु० च० भूमिका, पृ० २२)

मे भी अभी निश्चय ही बहुत सी सामग्री मिलेगी। पीछे के पृष्ठो मे जो ऐतिहासिक परिचय जैन अपभ्र श का दिया गया है उसमे साहित्यिक स्वच्छदता यद्यपि कम है तथापि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अपभ्रश साहित्य के सभी रूप और सभी विशेषताएँ जैन अपभ्र श साहित्य मे सुरक्षित रह गई हैं। विषय की दृष्टि से सभी प्रकार की रचनाओ मे एक नीरस समानता है। चाहे पुराण प्रसिद्ध कथा नायक हो, चाहे लोक से लिए गए हो सभी को धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त चित्रित किया गया है। लेकिन एक पूर्व निश्चित उद्देश्य को सामने रखते हुए भी जैन काव्यो का नायक मनुष्यलोक का ही व्यक्ति है, उसे कवियो ने 'अद्भुत' रूप कभी प्रदान नही किया। शुभ कर्म करने वाले को शुभ फल और चरम फल निर्वाण की प्राप्ति कराना भारतीय चिन्ता धारा की सामान्य विशेषता है। इन काव्यो में से कुछ को खंड काव्य कहा जा सकता है कुछ को महाकाव्य, पौराणिक इतिवृत्तात्मकता को छोड़ कर महाकाव्य की सभी विशेषताएँ इनमे मिल सकती है। जगत् और जीवन के प्रति एक बहुत ही सतुलित वैराग्यपूर्ण, नश्वरता की झलक लिए दृष्टि कोण जैन अपभ्र श की समस्त रचनाओं मे मिलता है।

छदो की दृष्टि से सभी चरित काव्य एक समान हैं। कडवक बद्ध शैली का सभी मे अनुसरण किया गया है। कड़वको के मूल भाग मे चाहे किसी छंद का प्रयोग हो कडवकान्त मे घत्ता का प्रयोग ही किया गया है, आगे हिन्दी मे इस विधान का पूरा अनुकरण किया गया है, घत्ता का स्थान दोहा ने अवश्य ले लिया है। अलकार विधान मे जैन कवि कुछ उन्मुक्त अवश्य दिखते हैं। कवि परंपरा से प्रसिद्ध उपकरणो के साथ साथ उन्होने आसपास के जीवन से भी कभी कभी अप्रस्तुत विधान के लिए पदार्थों, कल्पनाओ को ग्रहण किया है। एक विशेषता प्राय सभी जैन साहित्य की यह है कि सभी बडी कृतियाँ किसी न किसी आश्रय-

---

वर्धमान के आदिनाथचरित (सं० ११६० वि०) तथा देवचंद्र के शान्तिनाथ चरित (सं० ११६०) में भी अनेक अपभ्रंश पद्य मिलते हैं (ए० भं० ओ० रि० इं० १६.१-२ पृ० ३८-३९) लक्ष्मणगणि की कृति सुपार्श्वनाथ चरित (सं० १२०० वि०) में विविध छंदो में लगभग ६८ अपभ्रंश पद्य मिलते हैं (दे० याकोबी, वही, पृ० २२) क्षेमराज की उपदेश सप्ततिका की टीका (सं० १५४७) में लगभग ३५३ अपभ्रंश पद्य डूलते हैं, कुछ संधि बद्ध कथाएं हैं यथा समरविजयकथा, दमदन्त राजर्षि कथा (दे० याकोबी, वही, पृ० २२-२३) इत्यादि।

दाता का सहारा लेकर ही लिखी गई है, कभी कभी इन आश्रय दाताओ मे राजा भी होते थे। इन आश्रयदाताओ का विस्तृत परिचय जैन कवि देता है और अत मे कृति के रचना काल का स्पष्ट निर्देश करना भी जैन कवि कभी नही भूलता। अत कवियो के समकालीन इतिहास की दृष्टि से यह कृतियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस समस्त साहित्य ने किसी न किसी रूप मे समकालीन साहित्य तथा आगे के हिन्दी साहित्य को अवश्य प्रभावित किया है जिसका अध्ययन आगे किया गया है। जो हो, प्रस्तुत अपूर्ण अपभ्र श साहित्य की रूपरेखा अपभ्र श साहित्य के विस्तार और मूल्य की एक झलक प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। चिन्तको, कवियो के एक विशाल समूह ने ससार और मनुष्य के प्रति क्या विचार रखे है, किसको चरम सत्य समझा है, यह प्रकट करने के लिए यह साहित्य पर्याप्त है। मध्ययुगीन भारतीय चिन्ताधारा को समझने तथा भारतीय समाज के सगठन को समझने के लिए यह साहित्य अमूल्य सामग्री प्रस्तुत करता है। सस्कृत साहित्य की बहुरूपी किन्तु विशेष सीमाओ मे बद्ध परपराओ के अतिरिक्त साहित्यिक परपराओ की झलक देने के लिए यह साहित्य पर्याप्त है।

५

धार्मिक अपभ्रंश : बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ

बौद्ध धर्म की महायान शाखा की परिणति वज्रयान, मत्रयान, कालचक्रयान, सहजयान, तत्रयान आदि के रूप मे हुई[१]। बौद्ध सिद्धाचार्यो ने वज्रयान आदि 'यानो' के सिद्धान्तो की व्याख्या के लिए अपभ्र श को भी माध्यम बनाया। इस सप्रदाय के सिद्धो की जो अपभ्र श रचनाएँ अभी तक उपलब्ध हुई है उनका बडे उत्साह के साथ विद्वानो ने अध्ययन किया है। सबसे पहिले म० म० प० हर प्रसाद शास्त्री ने अनेक बहुमूल्य ग्रन्थो के उद्धार के साथ 'बौद्ध गान ओ दोहा' नाम से सिद्धाचार्यों की रचनाओ को अद्वय वज्र की सस्कृत टीका सहित सन् १९१६ मे बगीय साहित्य परिपद् कलकत्ता से प्रकाशित कराया । इन कृतियो की भाषा पर विस्तृत विचार डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी ने किया है[३]। डा० शहीदुल्ला ने इन रचनाओ मे व्यक्त भावधारा भापा आदि का अध्ययन मूल-कृति के अशो के अनुवादादि को फ्रेंच भापा मे तथा मूल पाठको रोमन लिपि मे प्रकाशित कराया[४]।

---

१. क. डा० बी० भट्टाचार्य, ए पीप इन्टु द लेटर बुधिज्म' ए० भा० ओ० रि० इं० भाग १०, १९२९ ।

ख०. भूमिका : साधनमाला गा० ओ० सी० न० ४१ भाग २ बड़ौदा १९२८।

२. पूरा नाम इस सग्रह का था 'हाजार बछरेर पुराण बांगाला भाषाय बौद्ध गान ओ दोहा' बौद्धगानो के साथ सरह और कान्ह के दोहा कोष भी थे तथा तीसरी कृति डाकार्णव भी थी ।

३. आ० डें० बं० लें० परि० ६०-६३ ।

याकोबी सनत्कुमार चरित भूमिका पृ० २७ ।

४. पेरिस, १९२८ ई० ले० शाँ मिस्तीक, द कान्ह ए सरह, ले दोहाकोष, ए ले चर्या, डा० शहीदुल्ला के इस अध्ययन में अनेक भूलें हैं, नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धो का वे ठीक ठीक निराकरण नहीं कर सके हैं वही, पृ० २० ।

तीसरा प्रयास डा० प्रबोधचन्द्र बागची का है, उन्होंने इन रचनाओं के तिब्बती अनुवाद की सहायता से मूल पाठ का उद्धार किया।[1] चतुर्थ प्रयास फिर डाक्टर शहीदुल्ला ने किया, उन्होंने डा० बागची के पाठ मे कुछ सशोधन करते हुए अंग्रेजी भाषानुवाद के साथ बगला अक्षरो मे चर्यागीतो को प्रकाशित कराया[2]। डा० सुकुमार सेन ने चर्यापदो को लेकर काफी ऊहापोह की है, किन्तु अध्ययन मे कोई नवीनता नही है[3]। इधर हिन्दी जगत को इस साहित्य से परिचय कराने का श्रेय महापंडित राहुल सांकृत्यायन को है। तिब्बती साहित्य के अनुसधान द्वारा उन्होंने सिद्धो की कविता का परिचय प्रकाशित कराया।[4] राहुल जी का सरह का दोहा कोश नया प्रयास है जिसमे तिब्बती मे प्राप्त सरह की रचनाओ का तिब्बती के साथ साथ हिन्दी पद्य बद्ध अनुवाद भी दिया है।[5]

---

१. दोहाकोश—जर्नल अव् द डिपार्टमेंट अव् लैटर्स, भाग २८, कलकत्ता-यूनिवर्सिटी, १९३५। तथा मेटिरियल फार द क्रिटिकल एडीशन अव् द चर्याज, वही, भाग ३० अव् १९३९ ई०, बंगला अक्षरो में मूल पाठ है, तथा तिब्बती अनुवाद रोमन मे है।

२. ढाका यूनीवर्सिटी स्टडीज, १९४०।

३. इडियन लिंग्विस्टिक्स भाग १०, १९४८ ई० में अंग्रेजी मे पद्यानुवाद, मूल चर्यागीति व्रजगीति बंगला अक्षरों मे दिए हैं। धर्मदास की प्रहेलिकाएँ क्यो दी हैं, कोई कारण नहीं दिया। उसी के भाग ९ मे इन रचनाओ के शब्दों की सूची दी है। 'चर्यागीति पदावली' नाम से डॉ० सेन ने बंगला अक्षरो में एक और संस्करण प्रकाशित कराया है—वर्धमान, १९५८ ई०। इन प्रयासों के अतिरिक्त एक प्रयास और हुआ है जिसमे कोई नवीनता नहीं है। एक सुगम संस्करण बंगाली पाठकों को अवश्य मिला है, चर्यापद, संपा० मनीन्द्रमोहन वसु, कलकत्ता। डॉ० बागची और भदन्त शान्ति भिक्षु शास्त्री ने देवनागरी अक्षरों मे चर्या पदों का नया संस्करण निकाला है, विश्वभारती १९५६।

४. पहिले उनका यह अध्ययन गंगा पुरातत्वांक मे प्रकाशित हुआ था पीछे वही अंश पुरातत्व निबंधावली मे 'हिन्दी के प्राचीनतम कवि' नाम से प्रकाशित हुआ, प्रयाग, १९३७।

५. सरह का दोहा कोश, 'विहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना १९५८, यह संस्करण सरह की भावधारा को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

सिद्धो की इन अपभ्र श रचनाओ मे दो प्रकार की भावधारा मिलती है एक रूप है सप्रदाय के सिद्धान्तो से सबधित विवेचन का, और दूसरा रूप है जिसमे उपदेश, खडन मडन आदि का स्वर प्रधान है। वज्रयान का प्रमुख तत्व शून्यवाद है जिसको वज्रयानी शून्य, विज्ञान और महासुख तीन तत्वो से युक्त मानते है। वज्र 'शून्यता' का भौतिक प्रतीक है, वज्रयान का अर्थ है सब बुद्धो का ज्ञान। शून्यता के साथ वज्रयानियो ने देव की कल्पना भी की और अपने नवीन आदर्शों को करुणा का आश्रय दिया। समस्त जगत् के प्राणियो के लिए मोक्ष प्राप्ति की वे प्रतिज्ञा करते थे और कहते थे कि ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसने जगत् की मुक्ति के लिए अपने को समर्पित कर दिया है, कुछ भी असभव नही है। कालान्तर मे करुणा का यह सिद्धान्त रूढि मात्र रह गया और वे कहने लगे कि योगी के लिए वे सभी कर्म क्षम्य है जिनके करने से साधारण व्यक्ति को नरक मिलता है,[1] और फिर तीनो लोको को अपने आनन्द के लिए उत्पन्न हुआ बताने लगे।[2] वज्रयानियो ने मत्र, मुद्रा, मडल, देवताओ को सिद्धि या निर्वाण मे सहायक मानने वाला आदि अनेक बातें महायान से ग्रहण की। मत्रो की वे आश्चर्यमयी शक्ति और रहस्य से युक्त बताते थे। वे विधिपूर्वक नियोजित मत्र से सब कुछ सभव बेताते थे।[3] मत्रो को गुप्त रखा जाता था अत इन मत्रो ने अपने चारो ओर एक रहस्यमय वातावरण बना लिया।

वज्रयान की दूसरी विशेषता सर्ववाद की भावना है। सबसे प्रधान देव वज्रधर है जिनसे पाच ध्यानी बुद्ध अमिताभ, अक्षोभ्य, रत्न सभव, वैरोचन और अमोघसिद्धि उत्पन्न हुए माने जाते है। विशेप मुद्राएँ और वर्ण ही इनके स्वरूपो को स्पष्ट करती है। प्रत्येक ध्यानी बुद्ध की एक शक्ति है जिसके द्वारा अनेक बोधिसत्वो की सृष्टि होती है। ध्यानी बुद्ध, उसकी शक्ति और उनसे उत्पन्न बोधिसत्व मिलकर एक 'कुल' कहलाते है। इस प्रकार मिलकर पाच कुल है, आराधक कौलिक तथा आराधना कुलसेवा कही जाती है। वज्रयानियो के लिए देवमूर्ति, इन्द्रियाँ,

---

१. कर्मणा येन वै सत्वाः कल्पकोटिशतान्यपि।
पच्यन्ते नरके घोरे तेन योगी विमुच्यते॥

२. संभोगार्थमिदं सर्वं त्रैधातुकमशेषतः
निर्मितं वज्रनाथेन साधकानां हिताय च।

३. किमस्त्यसाध्यं मन्त्राणा योजितानं यथाविधि। साधनमाला, भाग २ पृ० ५७५।

ज्ञान सपन्न शरीर भी, बाह्य जगत की वस्तुए अनत्य है। शून्य और करुणा मिल कर बोधिचित्त कहलाते है, बोधिचित्त का ही अस्तित्व सत्य है। अनेक उद्देश्यो के लिए शून्य का आह्वान किया जाता है और ध्यान किए गए बीजमत्र के अनुसार शून्य ही यह देवस्वरूप हो जाता है जिसका ध्यान उपासक करता है। इन साधन मार्ग मे अनेक सिद्धियो की प्राप्ति भी उद्देश्य हो गया था। सिद्धिप्राप्त साधक सिद्ध पदवी को पहुँच जाता था। सिद्धियो के अतिरिक्त वज्रयानी साधक अन्य असाधारण शक्तियो शान्ति, वशीकरण आदि की प्राप्ति के लिए भी प्रयत्न करते थे। आगे अनेक आचार इस सम्प्रदाय मे आगए। पचमकारादि—मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा और मैथुन—को किसी न किसी प्रकार उचित बताकर सम्प्रदाय मे प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है।

सिद्धो की प्राप्त वाणियो मे वज्रयान के सिद्धान्तो का क्रम बद्ध विवेचन नही प्राप्त होता और न सभी आचारादि का ही सकेत मिलता है। टीकाकारो की व्याख्या द्वारा उनकी वाणियो मे सम्प्रदाय के स्वरूप की झलक मिलती है, वैसे सभी की वाणियो मे प्राय परमानद के अनुभव को अर्थात् सिद्धि महासुख की अनुभूति को स्पष्ट करने का प्रयास मिलता है।

प्राप्त पद्य चौबीस सिद्धो[1] की रचनाएँ हैं। सम्पूर्ण सैंतालीस चर्यागीत[2] मिलते हैं। पद्यो की सख्या परिमाण के अनुसार इस प्रकार है

१	कान्हपाद या कृष्णाचार्य	१३ चर्यागीति तथा दोहाकोष मे ३२ दोहे
२	भुसुकपाद	८ चर्यागीति
३	सरहपाद	४ चर्यागीति तथा दोहे।

१. वज्रयानी सिद्धों की संख्या तिब्बती परपरा के अनुसार ८४ है। पु० नि० पृ० १४४ व से १४७; वर्णन रत्नाकर रा० ए० सो० बगल कलकत्ता १९४० मे चौरासी सिद्धो की जो नामावली दी है उसमे ७८ सिद्धो के नाम हैं, राहुल जी द्वारा संकलित नामावली और वर्णरत्नाकर की नामावली मे भी भेद है; दे० नाथ संप्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद १९५०।

२. म० म० पं० हरप्रसाद सास्त्री ने पद्य सग्रह का नाम 'चर्याचर्यविनिश्चय' निश्चित किया था। डाक्टर शहीदुल्ला ने आश्चर्यचर्याचर्य नाम उपयुक्त समझा था, चर्या० २४, २५, तथा ४८ का मूल अपभ्रंश रूप नहीं मिलता, तिब्बती अनुवाद के आधार पर इनका फिर संस्कृत मे अनुवाद किया गया है। कुल चर्याएँ इस प्रकार पचास थीं।

४	कुक्कुरीपाद	३	चर्यागीति।
५	लूइपाद	२	चर्यागीति।
६	शवरपाद	२	चर्यागीति।
७.	शान्तिपाद	२	चर्यागीति।
८	विरुपाद	१	चर्यागीति।
९	गुढरीपाद	१	चर्यागीति।
१०.	चाढिलपाद	१	चर्यागीति।
११.	कामलिपाद (कम्वलपाद)	१	चर्यागीति।
१२.	डोम्वीपाद	१	चर्यागीति।
१३	महीधरपा]	१	चर्यागीति।
१४	वीणापा]	१	चर्यागीति।
१५	आर्यदेव]।	१	"
१६	ढेण्ढणपा	१	"
१७	दारिकपा	१	"
१८.	भादेपा ।	१	"
१९	ताडकपाद	१	गीति।
२०.	कंकणपाद	१	"
२१.	जयनदीपा	१	"
२२	धामपा	१	"
२३	तन्त्रीपा	१	"
२४	तिलोपाद	३५	पद्य दोहा कोष मे।[1]

सिद्धो की अपभ्र श रचनाओ मे व्यक्त भावधारा एकसी है। प्रत्येक सिद्ध ने भिन्न भिन्न प्रकार से एक ही तथ्य को व्यक्त किया है। इन सिद्धो की सख्या चौरासी बताई गई है। वास्तव मे सिद्ध चौरासी ही हुए थे और उसके पश्चात् परपरा टूट गई अथवा चौरासी सख्या का कोई विशेष महत्व है कहना कठिन है। राहुल जी ने तिब्बती परपरा का उल्लेख करते हुए चौरासी सिद्धो की नामावली दी है। वर्णरत्नाकर मे भी चौरासी सिद्धो की नामावली दी है। जिससे प्रकट होता

१. इसके अतिरिक्त सिद्धो की वाणियाँ इधर उधर और बिखरी मिलती हैं। साधनमाला, सेंकोद्देश टीका, बडौदा, १९४१, पृ० ४८।१, ४८।२, ४८।३, ४८।४, ६३।

है कि चौरासी सिद्धो की परपरा काफी पुरानी है। सिद्धो की अपभ्र श वाणियो मे व्यक्त भावधारा सक्षेप मे इस प्रकार है

ससार की अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अन्तर्गत रहने वाले सहजानन्द की प्राप्ति को प्रत्येक सिद्ध ने सर्वश्रेष्ठ बताया है। अन्य मार्गों को टेढा बताकर सहजमार्ग को अत्यन्त सीधा कहा गया है।

उजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक।
निअड़ि बोहि मा जाहुरे लाक।
हाथेर काकन मा लेउ दापन।
अपने अपा बुझत निअमन। —चर्या ३२, सरह

'अर्थात् सीधे को छोडकर टेढे को मत अपनाओ, बोधि निकट है, दूर मत जाओ, हाथ में कगन है, दर्पण मत लो, आत्मा को जानो।'

इस सहज मार्ग की प्राप्ति होने पर ससार का मोह नष्ट हो जाता है। यह निर्वाण या सहजानद एक प्रकार से अहभाव से मुक्त होने की दशा है।[1] साधक जिस समय भव-मोह को छोडकर धर्मकाय, तथता या शून्यता मे लीन हो जाता है उस समय इस दशा का अनुभव प्राप्त करता है, करुणा और शून्य दोनो के मेल से ही निर्वाण प्राप्त होता है।

कमल कुलिस बेवि मज्झठिउ जोसो सुरत विलास।
को स रमइ णह तिहुअणे हि कस्स ण पूरइ आस[2]।
सरह, दोहा, पृ० १४१।

शवरिपा के एक पद मे सहजानन्द (परम निर्वाण) की प्राप्ति का क्रम से वर्णन मिलता है। योगी के शिर मे सहस्रार कमल चक्र होता है। जब साधक का चित्त, गुरु उपदेश द्वारा चित्त को अचित्तता मे लीन करके नैरात्मा (परिशुद्धावधूती) के सत्य रूप को पहचान लेता है तो उसका समस्त अज्ञान दूर हो जाता है, चित्त की इस आनन्दावस्था को प्राप्त होने पर शिरस्थित महासुख चक्र (सह-

---

१. सरह चर्या ३९। अद्भुअ भव मोहरे दिसइ पर अप्पना।
ए जग जलबिम्बाआरे सहजे सुन अपना।

२. कमल-कुलिश, शून्य और करुणा के वाचक हैं, यथा, सुण्ण तरुवर पुल्लिअउ करुणा विविह विचित। अण्णा भोअ परत्तफलु, एहु सोकल पर चित्त। दोहाकोष पृ० ३८, १०८।

स्त्रार- कमल) मे प्रवेश कर वह चित्त लीन हो जाता है, इसी अवस्था को महा-निर्वाण कहते हैं[1] ।

चित्त को तथा शरीर की वृत्तियों के शमन का सिद्धों ने वार वार उल्लेख किया है। लूइपा चित्त की चंचलता का उल्लेख करते हैं और साथ ही जगत को, जल, में प्रतिविम्वित चन्द्र के समान न झूठ कहते है न सत्य (चर्या० १.२) भूसुक आनन्द की स्थिति इस काव्य और चित्त से परे वताते हैं।

हरिणी बोलइ हरिणा सुनतो
ए वन छाड़ी होहु भान्तो ।
भवतरंगे हरिणार खुर न दीसह ।
भूसुक भणइ मूढ हिअहि ण पइसइ[2] । चर्या० ८

'हरिणी नैरात्मा कहती है, ए हरिण-चित्त ! सुनो। इस वन-काय रूपी चित्त को छोड़कर अन्यत्र भ्रमण करो। ससार के त्रास से हरिण के खुर नहीं दिखते। भुसुक कहते हैं मूर्ख के हृदय मे यह तत्व नहीं प्रवेश करता।'

यह सहजसुख सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। सिद्धो ने इस आनन्द की प्राप्ति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक मानी है। विना सद्गुरु के इस तत्व का वोध नहीं हो सकता, वारवार गुरु की सहायता के उल्लेखो से इस साधन पथ की दुरूहता का अनुमान किया जा सकता है। भूसुक कहते हैं कि जगत् के मायाजाल से सद्गुरु ही मुक्ति दिला सकते हैं :—

माआ जाल पसरिउ रे बाधेलि माआ हरिणी ।
सद्गुरु बोहे बूझिरे कासु कहिनि ।[3] चर्या० १०

सरह ने कहा है कि गुरु का उपदेश अमृतरस है उसके विना शास्त्रादि के अध्येता प्यासे मरुस्थली मे भटकनेवालो के समान हैं, और वे गुरु के वचनो मे दृढ भक्ति करने का आदेश देते हैं[4] ।

---

१. डा० स्ट० पृ० ६५, चर्या ३९ ।

२. जगत् के भ्रामक रूप का भूसुक ने इस प्रकार उल्लेख किया है—
आइए अणुचना ए जग रे भान्तिएं भी पडिहाइ ।
राज साप देखि जो चमकिउ, साचे कि ता बोडो खाय ।
ढाका० स्ट० गीति ४१

३. अन्य उल्लेख : सद्गुरु बोहे करह सो निच्चल भूसुक ।

४. चिन्ताचित्त वि परिहरहु तिम अच्छहु जिम बालु ।
गुरु वअणें दिढभत्ति करु होइ जइ सहज उलालु । दोहाकोष ।

इसी प्रकार काह्नूपा कहते है कि 'मन और इन्द्रियो का प्रसार गुरु की कृपा से ही नष्ट हो सकता है। मन-वृक्ष की पाच इन्द्रिया शाखाएँ है, आशादि फल और पत्ते है। गुरु वचन कुठार से काटने पर फिर यह वृक्ष हरा नही होता।' –

मन तरु पाच इन्दि तसु साहा, आसा बहल पात फल बाहा।
वरगुरुवअणे कुठारें छिजअ, कान्ह भणलहतरु पुण न उइजइ।
ज० डि० लै० चर्या ४५।

तिलोपाद ने अपने पद्यो मे अनेक बार गुरु की आवश्यकता बताई है[1]। कम्ब-लाम्बरपाद चित्तरूपी नौका को निर्वाण पथ की ओर ले जाने का रहस्य गुरु वाक्यो मे बताते हैं

सोने भरिली करुणा नावी

बाहुउ कामलि सद्गुरु पुच्छि ।

डोम्बीपाद सकेत करते है कि भवसागर को पार करके सद्गुरु की कृपा से ही महासुख प्राप्त होता है।

सद्गुरु पाअपसाए जाइब पुनु जिनउरा ।

निर्वाणमार्ग राजपथ है और मायामोह का समुद्र अगाध है, उससे पार होने के लिए गुरु से मार्ग पूछना आवश्यक है[2]। गुरु की आज्ञा से विषयेन्द्रियो का सुख भी वर्जित नही है[3]। सिद्धो का परम उद्देश्य महासुख परमानन्द की प्राप्ति है। इस सुख की अनिर्वचनीयता का अनेक बार उल्लेख हुआ है, वाक पथ से वह सुख अतीत है, उसकी किसी से समता नही की जा सकती। ताडक उस आनन्द के विषय मे कहते है, कि ससार का भय, जन्म, मृत्यु इत्यादि सब कुछ इस आनन्द की प्राप्ति से विस्मृत हो जाता है।

बांडकुरुण्ड सन्तारे जानी ।
वाक्पथातीत काहि बखानी । चर्या ३७

इस वाणी द्वारा व्यक्त न हो सकने वाले सहजसुख का गुरु आभास मात्र प्रदान कर सकते हैं, सपूर्ण रूप से इसकी व्याख्या नही कर सकते। काह्नूपा कहते हैं :—

---

१. पद्य ६, ८, २६ तथा ३१।
२. शान्तिपाद चर्या १५, भादेपा चर्या ३५, एवें मइ बूझिल सद्गुरु बोहें।
३. दारिकपा चर्या ३४।

आले गुरु उएसइ सीस ।
वाक् पथातीत कहिब कीस ।
जेतेंइ बोली ते तवि टाल,
गुरु बोव से सीसा काल ।
भणइ कह्नु जिन रअण वि कइसा ,
कालें बोव संबोहिअ अइसा । चर्या ४० ।

'गुरु शिष्य को व्यर्थ ही उपदेश देते हैं, वाणी से यह परे है, कैसे कहें, सहज के सम्बन्ध में जो कहा जाता है वह उसकी अपव्याख्या ही है, गुरु गूंगा है और शिष्य बधिर। कान्हु कहते हैं कि अतीन्द्रिय सहजानन्द का समझाना बधिर का संकेत द्वारा गूंगे को समझाने के समान है'।

इस अमृतस्वरूप सहजावस्था को न गुरु समझता है न शिष्य

णउ तस्वामहि गुरु कहइ राउ तस्बुज्झइ सीस ।
सहजापन्थो अमिय रसु कासु कहिव्वजइ कीस

'न तो उस तत्व को गुरु कहता है, न उसको शिष्य ही समझता है, वह सहजावस्था अमृतरस है, कैसे और किससे कहा जाय'।

इस महासुख की प्राप्ति से संसार के दुःख नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान-प्रकाश का उदय होता है[1]। कुछ सिद्धों ने परमसुख में मग्न होने की इस लोकातीत दशा का बड़े भावुक ढंग से वर्णन किया है।

चेअन न वेअन भर निद गेला, ।
सअल सुफल करि सुहे सुतेला ।
स्वपने मइ देखिल तिहुवन सुन,
घोरिअ अवनागमन विहुन । कृष्ण० चर्या ३६

'सहजानन्द योग निद्रा में चेतना, वेदना कुछ नहीं रही है। जगत् के सब व्यापारों को समाप्त कर के वे ज्ञान-निद्रा को प्राप्त हुए हैं। स्वप्नवत् सब जगत् अलीक दिखता है, त्रिभुवन शून्यमय दिखता है। जन्म मरण से वे मुक्त होगए हैं'[2]। जिस प्रकार लवण समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाता है उसी प्रकार मन

1. घोरान्धएँ चन्दमणि जिम उज्जोअ करेइ ।
परम महासुह एक्कुखणे दुरिआसेस हरेए । सरह दोहाकोष दोहा ९७
2. अन्य इस प्रकार की अनुभूति के वर्णन चर्या ३ विरुपाद, चर्या ४ गुंडरीपाद, चर्या ४७, धामपाद, चर्या ४६, जयनन्दीपाद, चर्या ४५ कंकणपाद, चर्या ३७ ताड़कपाद, चर्या १६ महीधरपाद ।

शून्यता मे मिलकर समरस हो जाता है[1] ।

इस सहजसुख की प्राप्ति के लिए मन्त्र, तन्त्र, आगमादि शास्त्र ज्ञान की आवश्यकता नही है, और न शास्त्र ही उसके स्वरूप को व्याख्या कर सकते है, जिसका वर्ण, चिह्न रूप कुछ ज्ञात नही है उसको आगम वेद कैसे बता सकते है ।

जाहेर वाणचिन्हरुव ण जाणी ।
सो कइसे आगम वेएं वखाणी ।   लूइपा, चर्या २९ ।

दारिकपा कहते है कि मन्त्र, तत्र द्वारा किए गए ध्यान से यह महासुख प्राप्त नही हो सकता, चर्या ३८ ।[2] इसी प्रकार कृष्णाचार्यपाद कहते है कि पडित और आचार्य अर्थात् केवल पुस्तकीय विद्या द्वारा यह पाश नही छूट सकता ।

पाशि न चाहइ मोरि पाण्डिआचाए ।   चर्या ३६ ।

इन कोरे शास्त्र ज्ञानियो से सरह ने और भी खरे शब्दो मे कहा है ।

पंडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ,
देहहि वुद्ध वसन्त न जाणअ ।
अवणागमण ण तेणवि खंडिअ,
तो वि णिलज्ज भणइ हउं पडिअ ॥
बागची-दोहाकोष पृ० १२६ ।

'पडित सब शास्त्रो की व्याख्या करते है किन्तु देह मे निवास करते हुए बुद्ध को नही जानते । आवागमन को नष्ट नही कर सके किन्तु निर्लज्ज अपने को पडित कहते है ।[3]

सरह ने अन्य मतो ब्रह्म, ईश्वर, अर्हन्त, बौद्ध, लोकायत और सांख्य षड् दर्शनो का खडन किया है, ब्राह्मणो के जातिभेद, चार वेदो, यज्ञादि का खडन करते हुए वे कहते है कि उनसे मुक्ति नही हो सकती है । ये अलीक है, और उन्हे छोडने का उपदेश देते है

---

१ भूसुक, चर्या ४३ ।

२ सरह मन्त्रादि को विभ्रम का कारण बताते हैं :

मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण,
सव्वइ रे वड विब्भम कारण ॥   दोहा । पृ० २० ।

तथा कान्हपा दोहा० पद्य २८-२९ ।

३. कान्हपा ने भी शास्त्रज्ञान मे अनास्था प्रकट की है, दोहा० पद्य० २, १२ ।

छड्डहु रे आलीका बन्धा,
सो मुंचहु जो अच्छहु धन्धा ॥ वही पृ० १७।

और कही कही सरह के पद्यो मे ससार मे शुभकर्म करने का उपदेश भी मिलता है, जैसे, दान, परोपकार आदि का —

परउआर ण किअऊ अत्थि ण दीअउ दाण।
एहु ससारे कवण फलु वर छड्डहु अप्पाण ॥ वही पृ० ३९।

चर्यागीतो मे सिद्धो ने अपने भावो को प्राय रूपको का सहारा लेकर व्यक्त किया है। सिद्धो ने कही कही इस प्रकार से दुरूहता को प्राप्त हुई क्लिष्टता का स्वय सकेत भी किया है ढेंढणपा कहते है।

निते निते षियाला सिहे समजूझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले बूझइ ॥ चर्या ४१।

इसी तरह ताडकपा भी सकेत करते है—जो बूझइ ता गले गलपाश—चर्या ४५। अपनी साधना को सिद्धाचार्य कदाचित् अनधिकारी व्यक्तियो से छिपा कर रखना चाहते थे इसीलिए असाधारण रूप मे अप्रचलित शब्दावली का उन्होने प्रयोग किया है। इस विशेष प्रकार की शब्दावली के प्रयोग के कारण ही कदाचित् चर्यापदो के टीकाकार ने उनकी शब्दावली को 'सन्ध्या भाषा' कहा है[1], जिसका अर्थ टीकाकारो द्वारा व्यवहृत अर्थ के प्रकाश मे रूपक की भाषा, अलकार की भाषा या सम्प्रदाय मे प्रचलित भाषा-अर्थ लिया जा सकता है[2]। और यह सत्य है कि इस सन्ध्या भाषा का ठीक ज्ञान हुए विना टीका की सहायता से भी अपभ्रंश (—लोक भाषा) के इन पद्यो का अर्थ समझना सहज नही है।

---

१ उदाहरणार्थ, भुसूक के गीति चर्या ६ की व्याख्या के प्रारंभ मे टीकाकार कहता है "हरिणा शब्द. सन्ध्या भाषया कथयति", इसी प्रकार कम्बलाम्बरपाद (चर्या ८) की वाणी की व्याख्या करते समय 'करुणेति सन्ध्याभाषया तमेव बोधिचित्तं नावीति उत्प्रेक्षालंकार पर बोद्धव्यम्' कहा है।

२ म० म० प० विधुशेखर भट्टाचार्य संध्या भाषा या संधावचन से आभिप्रायिक वचन या नेयार्थवचन अर्थ लेते हैं।
डा० विनयतोष भट्टाचार्य भूमिका साधनमाला, प्रथम भाग बडौदा।
डा० बागची हेवज्रतंत्र के आधार पर इसे संध्याभाषा न कहकर संधा भाषा मानते हैं तथा इससे अभिप्राय समझते हैं प्रतीकात्मक भाषा, जो शब्दो के वाच्यार्थ से भिन्न अर्थ का संकेत करती है, स्टडीज इन द तन्त्राज भाग १ पृ० २७, कलकत्ता, १९३९ ई०।

सिद्धो ने प्राय व्यावहारिक जीवन के पदार्थों को ही अपने रूपको का उपकरण बनाया है। प्रधान रूपक इस प्रकार है [1]

नौका के रूपक का सहारा कान्ह, डोम्बी, कम्बलाम्बरपाद और भरह ने लिया है, चर्या १३, १४, ३८, ८।

चूहे का रूपक-भूसुक द्वारा चर्या २१ मे प्रयुक्त हुआ है।

वीणा का रूपक—वीणापा ने चर्या १७ मे इसका प्रयोग किया है।

हाथी का रूपक—महीधरपाद तथा काह्नूपा द्वारा चर्या १६, ९, १२ मे प्रयुक्त हुआ है।

हरिण का रूपक—भूसुक चर्या ६।

डोम्बी से सयोग शृगार का रूपक—काह्न, चर्या १०, १९।

सभोग शृगार का रूपक—विरूपाद, चर्या ३।

रुई धुनने का रूपक—शान्तिपाद चर्या २६।

इन रूपको मे ध्यान देने योग्य रूपक प्रेम परक हैं, जिनमे डोम्बी, शुडिनी को परिशुद्धावधूती नैरात्मा माना गया है और नैरात्मा के साथ मे जो ब्रह्मानन्द मिलता है उसको शुडिनी के रूपक द्वारा व्यक्त किया है (गीति ३), विवाह का रूपक देखने योग्य है, जो यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि सिद्धाचार्य संसार मे बिलकुल उदासीन नही थे

भव निर्वाणे पडह मादला,
मन पवण वेणि करण्डकशाला।
जउ जअ दुन्दुहि साद उछलिआ,
कान्ह डोम्बी विवाहे चलिया।
डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम,
जउतुके किअ आणुतु धाम। कृष्णापा, चर्या १९।

जिस प्रकार विवाह मे वरयात्रा के समय पटह, ढोल, दुन्दुभि, पालकी चलते है और विवाह मे दहेज (जउतुक) मिलता है उसी शब्दावली द्वारा सहजसुख की व्याख्या की है, भव और निर्वाण का ठीक ज्ञान करके महासुख को ग्रहण करके मनपवनादि (चित्त) विकल्पों से रहित शून्य और करुणा अभिन्न रूप मे मिल गए हैं। और चित्त के ऊपर विजय हुई इससे अनाहत शून्यता शब्द हो रहा है,

---

१. डा० बागची ने इन रूपको का सुन्दर अध्ययन अपनी कृति 'स्टडीज इन द तंत्राज' में प्रस्तुत किया है, वही पृ० ७४ और आगे।

अविद्या के प्रभाव से काह्न मुक्त हो गए हैं, डोम्बी को पाकर जन्मादि से छूट गए हैं और सर्वश्रेष्ठ निर्वाणावस्था अक्लेश ही प्राप्त हुई है।

चौपड, करह, वृक्ष, कमठ (कच्छप) आदि अन्य अप्रस्तुत उपकरण सिद्धो की रचनाओ मे मिलते हैं। जो रूपको की क्लिष्टता चर्या पदो मे मिलती है वह दोहाकोष मे सग्रहीत पद्यो मे नही है। गीत शास्त्रीय हैं और सप्रदाय मे दीक्षित शिष्यो के लिए है तो दोहा कोष के पद लोकप्रिय और लोक सामान्य की भावधारा के द्योतक हैं।

सिद्धो की वाणियो मे प्रयुक्त छदो मे बहुत विविधता नही है। चर्यागीति गेय पदो के रूप मे है। प्रत्येक चर्या के प्रारभ मे किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है[1] जिससे अनुमान किया जा सकता है कि यह पद्य गेय रूप मे प्रचलित रहे होगे। अत- मात्राओ की सख्या एक गीति के सभी चरणो मे एक समान नही मिलती। सभी छद मात्रिक हैं। दोहाकोष मे प्रधान छद दोहा है जिसके प्रथम द्वितीय चरणो मे १३, ११ मात्राएँ मिलती है और यही क्रम तीसरे चौथे चरणो मे भी दुहरायागया है। दूसरा छद सोरठा है जो दोहे के क्रम को उलट देने से बन जाता है, अर्थात् पहिले और तीसरे चरणो मे ११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे मे १३ मात्राएँ मिलती है, तीसरा छद पादाकुलक है (हिन्दी की चौपाई)। अन्य छद अडिल्ला, पज्झटिका, गाथा, रोला, उल्लाला, रागध्रुवक[2] पारणाक[3], द्विपदी, महानुभाव, मरहट्टा प्रयुक्त हुए हैं[4]। प्राय अन्त्यनुप्रास का प्रयोग सभी पद्यो मे हुआ है किन्तु कुछ मे इसके व्यतिक्रम भी मिलते है[5]। एक एक गीत मे कई छदो का भी मिश्रण हुआ है, यथा, चर्या ४७ (धामपाद) मे रगडा ध्रुवक,

---

१. निम्नलिखित २४ रागों मे चर्यापद रखे गए हैं: पटमंजरी, मलारी, भैरवी कामोद, गवड़ा, देशाख, रामक्री, वराड़ी, गुंजरी, गुर्जरी, अरु, देवक्री, मनसी, बड़ारी (वराड़ी), इंद्रताल, शबरी, वल्लाडि, मालसी, मालसी गवुड़ा, कह्न गुंजरी, बंगाल, और पटल।

२. चर्या ४७ धामपाद पद्य १।

३. चर्या ४७ धामपाद पद्य ३।

४. कुछ पंक्तियो में इस प्रकार का मात्रा क्रम मिलता है कि कोई छंद उस प्रकार का नहीं मिलता। दे० ले शां मिस्तीक भूमिका पृ० ५७ और आगे।

५. यथा चर्या ३४ दारिकपा, चिए, कुलें, पंक्ति १ २, चर्या ३७ ताड़कपा पद्य ३, चर्या ४७, धामपा, पद्य २, आगि पानी इत्यादि।

पारणक, पद्धडिया छदो का प्रयोग है । चतुष्पदी छदो का प्रयोग द्विपदी के समान किया गया है और दो चरणो से ही छद पूरा हुआ मान लिया गया है।

सिद्धो की कविता की भाषा का अच्छा अध्ययन किया गया है और इन रचनाओ की भाषा मे दो प्रकार के रूप मिलते हैं। एक रूप है जिसमे पूर्वी अपभ्र श का रूप मिलता है लेकिन जिसमे पश्चिमी अपभ्र श के भी शब्दरूप मिलते हैं[1] तथा दूसरा रूप पश्चिमी अपभ्र श (शौरसेनी) का मिलता है। चर्यागीतो मे पूर्वीरूप की प्रधानता है और दोहाकोष के पद्यो का रूप पश्चिमी अपभ्र श का है।[2]

सिद्धो के समय के विषय मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। एक वर्ग सिद्धो का प्रारभ आठवी शती ईस्वी मानता है और दूसरा वर्ग सिद्धो का काल १००० ई० के लगभग मानता है। राहुल साकृत्यायन ने सबसे आदिम सिद्ध सरहपा का काल आठवी शती ई० का उत्तरार्द्ध और नवमी का पूर्वार्द्ध माना है।[3] ऐतिहासिक प्रमाणो का राहुल जी ने विवेचन नही किया है। इन सिद्धो मे बहुत से एक दूसरे के समसामयिक थे,[4] ऐसा नही है कि कालक्रम से इन ८४ सिद्धो की गुरु शिष्य जैसी परपरा सी हो। जो हो इनका काल दो सौ वर्ष तक अवश्य चलता रहा होगा।[5] इनमे से अनेक सिद्धो ने अनेक कृतियो की रचना की थी।[6] सिद्धो की रचना मे अक्खडपन, वैराग्यभावना आदि बातें सामान्यरूप से मिलती हैं

---

१. पूर्वी रूपो के कारण उत्साहपूर्वक चर्यापदो को मैथिली, बगाली, उड़िया, भोजपुरी विद्वान अपनी अपनी भाषाओ का पूर्वरूप बताते हैं।

२ दे० सु० कु० चै०, ओ० डि० बै० लैं०, पृ० १११-११२, तथा ले शां मिस्तीक पृ० ३३ और आगे।

३. दे० पुरा० निब० पृ० १६०-२०४, सिद्धो का काल राहुल जी ने ८००-१२०० ई० तक माना है।

४. यथा सरह, शवर, लूइपाद आदि का काल राहुल जी ने प्राय एक ही दिया है, दे० वही।

५ सु० कु० चैटर्जी भाषा के आधार पर इन सिद्धो का समय ९५० ई० से १२०० ई० तक मानते हैं। ओ० डि० बै० लैं० पृ० १२३।

६ राहुल जी ने सिद्धो की कृतियो की सूचियाँ दी हैं, किन्तु उनमे से कितनी वास्तव मे अपभ्र श मे हैं या रही होगी कहना बहुत कठिन है। दे० पु० नि० वही लेख।

और आगे यह सब प्रवृत्तियाँ हिन्दी के सत कवियो मे भी मिलती है. । बौद्ध सिद्धो का क्रीड़ा क्षेत्र पूर्वी भारत था । बहुत से सिद्ध विहार मगध, बगाल और वर्तमान उडीसा के रहने-वाले थे ।

तन्त्र शास्त्र से सबधित दूसरी अपभ्र श कृति 'डाकार्णव तन्त्र' है ।[१] कृति का पूरा नाम 'श्री डाकार्णव महायोगिनी तन्त्रराज' है । डाकार्णव मे बौद्धदर्शन के योगाचार और माध्यमिक बौद्ध दर्शनो पर आधारित बौद्धतन्त्र या वज्रयान का विवेचन है । कृति मे वज्रयान, शून्य, मत्र, यत्र, मुद्रा, धारणी, योग और समाधि को सिद्धि प्राप्ति के लिए साधन बताया गया है । इस साधना मे गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है अत डाकार्णव मे गुरु की आवश्यकता बताई गई है । डाकार्णव मे भी सिद्धो की वाणियो के समान ही विवेचन शृंखलाबद्ध नही है ।

कृति की भाषा शौरसेनी अपभ्र श पर आधारित अपभ्र श है । इस भाषा पर पूर्वी भाषा का भी प्रभाव पडा है,[२] कृति मे मात्रिक छदों का प्रयोग हुआ है जिनमे चौपाई आदि प्रमुख है । छदो मे छदशास्त्र के नियमो का पूरा पालन नही किया गया है, सभव है गेय रूप मे होने के कारण मात्रा सख्या मे यह शिथिलता रही हो ।[३] भाषा के आधार पर डाकार्णव का रचनाकाल विद्वानो ने बारहवी शती ई० माना है ।[४] साहित्य की दृष्टि से डाकार्णव का कोई मूल्य नही है । भाषा और भावधारा की दृष्टि से ही उसका महत्व है ।

---

१. डाकार्णव, संपा० डा० नगेन्द्र नारायण चौधुरी, कलकत्ता, १९३५ ई० ।
२. वही, पृ० १९ और आगे ।
३. वही, पृ० ३३ आदि ।
४. वही, पृ० १६-१७ ।

६

धार्मिक अपभ्रंश : शैवों की अपभ्रंश रचनाएँ

काश्मीर अद्वैत या त्रिक् शैव सप्रदाय के अनुयायियो द्वारा रचित कुछ साप्रदायिक कृतियाँ मिलती हैं जिनमे अपभ्रंश का प्रयोग किया गया है। अभिनवगुप्त का तन्त्रसार काश्मीर शैव सप्रदाय का एक प्रधान ग्रन्थ है। कृति मे शैव-मत की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि व्यक्ति स्वय परमशिव है, मल के कारण अज्ञान प्रच्छन्न होने के कारण परमशिव को देख नही पाता। व्यक्ति ज्ञान की सहायता से अपने मे परमशिव का अनुभव करता है। अभिनवगुप्त कृत तन्त्र-सार उनकी वृहत् कृति तन्त्रालोक का सार है। परमशिव (अद्वैत) ज्ञान या त्रिक् की अनुभूति के लिए तन्त्र सार मे दो मार्ग बताए है, एक बिना किसी क्रिया की सहायता द्वारा और दूसरा इच्छा, ज्ञान और क्रिया पर आधारित सम्भव शास्त्र और आणव उपायो द्वारा। यह त्रिक् या अद्वैत शैव मत अन्य शैव दर्शनो से भिन्न है। त्रिक् दर्शन मे अद्वैतवाद के समान ही परमेश्वर शिव, शक्ति आदि की मान्यता है।[१]

तन्त्रसार[२] मे २२ आह्निक (–अध्याय) है। समस्त कृति सस्कृत गद्य मे है। कुछ आह्निको के अन्त में सस्कृत और कही प्राकृत अपभ्रंश पद्य मिलते हैं। प्रत्येक अध्याय मे विवेचित वस्तु का जैसे साराश इन पद्यो मे दिया गया हो। प्राकृत या अपभ्रंश को क्यो यह स्थान मिला, विचारणीय प्रश्न है। महार्थ मजरी मे प्राकृत को एक स्थान पर सप्रदाय की भाषा कहा गया है, सभव है कि सप्रदाय की भाषा होने के कारण ही अपभ्रंश को आचार्य न भुला सके हो, या जनता मे अपने दर्शन को प्रचारित करने के लिए अपभ्रंश को अपनाया होगा। तन्त्रसार

---

१. डे० जगदीशचन्द्र चैटर्जी, काश्मीर शैविज्म, श्रीनगर, १९१४ ई०।

२ तन्त्रसार, सपा० म० म० मुकुंदराम शास्त्री, काश्मीर सीरीज अव् टैक्स्ट श्रीनगर, १९१८ ई०।

मे १६ अपभ्रंश पद्य मिलते हैं[1]। कुछ पद्यों मे प्राकृत का प्राधान्य है। कृति के विभिन्न अध्यायों के विवेच्य विषय का ही इन पद्यों मे विवेचन मिलता है, एक पद्य उदाहरण के रूप मे देख सकते हैं यथा कृति के प्रथम आह्निक का विषय है, विज्ञान भेद। आत्मा प्रकाशरूप शिव है, स्वतंत्र है, इसको इस प्रकार कहा है

एहु पआसरूउ अताणत सच्छन्दउ ढक्कइ णिअरूउ।
पुणु पअडइ झडि अह कमयस्य एहत परमार्थण शिवरसु।

'यह प्रकाशरूप आत्मा स्वच्छंद है, अपने रूप को ढक लेती है। और शीघ्र ही पुन प्रकट कर देती है तथा क्रमश यह परमार्थ शिवरस को प्रकाशित करती है। पाचवे आह्निक मे प्राण और अपान के कार्यों का वर्णन है तथा निजानंद, निरानन्द, परानन्द, ब्रह्मानन्द, महानन्द और चिदानन्द आनन्द भूमियो का उल्लेख किया है, अन्तिम आनन्द जगदानन्द है। अन्तिम दोहे मे परमपद की इस प्रकार व्याख्या की है।

सुण्णउ रविससि दहन सउ उस्सउ एहु सवीरु।
उंहि अच्छन्नउ परमपउ पावइ अचिरें वीरु॥ आ० ५।

इन पद्यो मे दोहा, पादाकुलक, पद्धडिया, महानुभाव, सोरठा आदि छदो का प्रयोग हुआ है। भाषा मे कुछ विचित्र प्रयोग मिलते हैं, जैसे 'हत का प्रयोग 'हउ' के लिए मिलता है।[2] तन्त्रसार की रचना अभिनवगुप्त ने सन् १०१४ ई० के आसपास की।

एक दूसरी अद्वैत शैव सिद्धान्तो का विवेचन करने वाली कृति भट्ट वामदेव माहेश्वराचार्य की जन्ममरणविचार है।[3] कृति मे कहा गया है कि एक ही आदि-

---

१. आह्निक १ के अत मे एक पादाकुलक, २. पादाकुलक ३, १ दोहा तथा एक और पद्य, ४. १ दोहा, ६ एक पद्य, ७ एक महानुभाव छंद, ९. २ दोहा, १२ एक दोहा, १३. एक दोहा और एक सोरठा, १४. पादाकुलक छंद, १९ एक पद्धडिया छंद, २०. एक दोहा छंद, और २१ एक पादाकुलक छद। कुछ पद्यो मे प्राकृताभास मिलता है और अपभ्रंश की विशेषताएँ भी लक्षित होती हैं।

२. यथा आह्निक ४ के अंत मे।
हंत सिवणाहु 'अहं शिवनाथो' आदि।

३ काश्मीर संस्कृत ग्रंथावलि १९, संपा० म० म० प० मुकुंदराम शास्त्री, श्रीनगर १९१८ ई०।

देव की स्वातन्त्र्य महिमा ससार मे व्याप्त है। परम शिव की स्वातन्त्र्योद्भूत-शक्ति का विवेचन करते हुए एक अपभ्र श पद्य उद्धृत किया गया है जिसमे आत्मा के स्वरूप का विवेचन किया गया है। पद्य दोहा छद मे प्रतीत होता है।[1] ग्रथ का रचना काल ११ वी शती ईस्वी का अन्तिम भाग माना जा सकता है क्योंकि माहेश्वराचार्य के गुरु योगीश्वराचार्य थे, जो अभिनवगुप्त के शिष्य थे।

गोरक्षनाथ के अमरौघशासन[2] मे भी एक अपभ्र श पद्य मिलता है जिसमे जीव के आवागमन जन्म मरण के सबध मे कहा गया है कि वह मरने के लिए जन्म लेता है और जीव काल के वश मे ही रहता है। वह कन्दुक के समान उमे फेंकता रहता है।

काश्मीरी भाषा का सबसे प्राचीन नमूना लल्ला के वचनो लल्लावाक्यानि[3] मे मिलता है। लल्लेश्वरी का समय यद्यपि १४ वी शती ईस्वी है तथापि उनके गीतो को लिखित रूप बहुत पीछे दिया गया अत उसमे भाषा की प्राचीनता ज्यो की त्यो नही मिल सकती। भाषा के सम्बन्ध मे जो भी कहा जा सके भावधारा की दृष्टि से ललेश्वरी की वाणियो मे शैवतांत्रिक सम्प्रदाय के रहस्यवाद का ऐसा व्यापक स्वरूप मिलता है जो अन्य मर्मियो के समान ही सार्वदेशीय, गूढ और उदात्त है।

काश्मीरी अपभ्र श मे शितिकठाचार्य ने अपनी कृति महानय प्रकाश लिखी है।[4] कृति मे लगभग ९४ अपभ्र श पद्य हैं जो १४ उदयो मे विभक्त है। शैव वर्णन के त्रिक् सप्रदाय का कृति मे विवेचन है। कृति कृष्णदेवी की वदना से प्रारम्भ होती है और महार्थ प्रकाश अथवा शिव के स्वरूप का विवेचन है। कृति मे शारदा लिपि

१. पद्य इस प्रकार है, सअल उत्त पुरिपुण्ण उ, सअल्लउत्त उत्तिण्ण।
परि आणहु अत्ताणउ परिमसिवेण समाणउ। वही, पृ० ५
छंद के प्रत्येक चरण मे १२ मात्राए हैं। चतुर्थ चरण मे 'समाणउ' के स्थान पर 'सताण' या समण्ण होना चाहिये।

२. काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली २० पृ० ९, गोरक्षनाथ की गोरखवाणी मे संग्रहीत रचनाओ मे अपभ्रंशाभास मिलता है, कदाचित् उनका सच्चा रूप वह नहीं है।

३ लल्लावाक्यानि, सपा० ग्रियर्सन और बारनेट, रायल एशियाटिक सोसायटी, लदन, १९२० ई० तथा काश्मीर सस्कृत ग्रंथावलि श्रीनगर।

४ महानयप्रकाश, काश्मीर सं० ग्रंथ० २१, श्रीनगर १९१८ ई०।

के अक्षरो के रहस्यात्मक गुणो का भी विस्तृत विवेचन है। शितिकठाचार्य ने अपने मूल अपभ्र श पद्यो पर सस्कृत टीका भी लिखी है।

कृति की भाषा उस समय की अपभ्र श है जब अपभ्र श धीरे धीरे काश्मीरी का रूप ले रही थी।[1] कृति का रचना काल १५वी शती ईस्वी का उत्तरार्द्ध है।[2] शितिकंठ की कृति मे मात्रिक छदो का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक छद मे चार चरण मिलते हैं। पहिले और तीसरे चरणो मे १६, १६ मात्राएँ मिलती हैं तथा दूसरे और चौथे चरणो मे १५, १५ मात्राएँ मिलती हैं। इस प्रकार का अपभ्र श मे कोई छद नही मिलता। कृति के छदो मे मात्राओ का क्रम सवैया मे कुछ मिलता है।[3]

शैव सम्प्रदायानुयायियो की अपभ्र श का जो परिचय दिया गया है उसमे साहित्यिकता का अभाव है। सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का ही विवेचन प्रधान है। महानय प्रकाश के अपभ्र श पद्यो का अर्थ तो टीका की सहायता से भी समझ सकना कठिन है। इस अपभ्र श का महत्व दो दृष्टियो से है। इन रचनाओ से अपभ्र श भाषा के प्रयोग के क्षेत्र का विस्तार और उसकी मान्यता की सूचना मिलती है और अन्यत्र व्यवहृत छदादि की सर्वप्रियता का परिचय मिलता है। इन रचनाओ का सबसे अधिक महत्व है भावधारा की दृष्टि से। मध्ययुग मे उत्तरी भारत के प्राय प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक सम्प्रदाय के ऐसे मर्मियो, गूढवादियो की रचनाएँ मिलती हैं जिनका साधना मार्ग बहुत उदार और प्रशस्त था। बौद्ध सिद्धो ने ऐसी रचनाएँ पूर्वीय प्रान्तो मे की और उसी प्रदेश मे उन्होने जाति-वर्ण भेद को मिटाकर, घर मे ही रहने वाले देव का उपदेश दिया, जैन मर्मियो ने तथा गोरखनाथ आदि ने मध्य-प्रदेश मे रहकर इस उदार रहस्यवाद का प्रचार किया। और अद्वैत शैवमत के अनुयायियो ने काश्मीर प्रदेश मे उसी उदार, वैराग्यपूर्ण निरीह अक्खड भावधारा का उपदेश दिया। मध्ययुग के साधन पथो को समझने के लिए काश्मीर शैवो की यह कृतियाँ बहुत महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं। भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी उनका पर्याप्त महत्व है भले ही उसमे साहित्यिक सजीवता न हो और वे नीरस हो। अपभ्र श की दिग्विजय के सूचक इन कतिपय अपभ्र श पद्यो का इसी दृष्टि से महत्व है।

---

१ दे० ग्रियर्सन : द लैंग्वेज अव् द महानय प्रकाश मेम्वायर्स अव् द रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता १९२९ ई०।

२. दे० वही पृ० ७४।

३. वही, पृ० ७८–७९।

७

ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य

पीछे के पृष्ठो मे अपभ्रंश साहित्य का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उसमे साहित्यिकता का पूर्णरूप से न तो अभाव है और न प्राधान्य। साहित्यिक दृष्टिकोण भी अनेक कृतियो मे प्रधान है किन्तु विशेष साम्प्रदायिक या धार्मिक दृष्टिकोण को सामने रखकर ही जैन, बौद्ध या शैव अपभ्रंश कृतियो की रचना हुई प्रतीत होती है। साहित्यिक वातावरण होते हुए भी अनेक कृतियो को धार्मिक आवरण पहनाया गया है। फलस्वरूप इस समस्त साहित्य मे एक सुनिश्चित धार्मिक उद्देश्य मिलता है और उसी उद्देश्य के कारण साहित्यिक सौन्दर्य को थोडी बाधा पहुची है। विशुद्ध ऐहिकतापरक थोडी सी अपभ्रंश रचनाएँ भी मिलती है जो धार्मिक या साम्प्रदायिक विचार-धारा से मुक्त है। अलकार शास्त्र से सबधित ग्रन्थो से ऐसे कुछ प्रबन्ध काव्यो के अस्तित्व की भी सूचनाएँ मिलती है किन्तु अभी तक उनमे से एक भी ग्रथ उपलब्ध नही हुआ है।[1] थोडा सा जो इस प्रकार का साहित्य उपलब्ध है उसे दो वर्गो मे रखा जा सकता है। एक वर्ग मे वे मुक्तक-स्वतत्र पद्य आते है जो अलकार शास्त्र, छदशास्त्र, व्याकरणशास्त्रादि की कृतियो मे उदाहरण स्वरूप उद्धृत हुए है। काव्य सौन्दर्य, सजीवता, आदि की दृष्टि से इस प्रकार के मुक्तक पद्य बहुत ही सुन्दर है। इस प्रकार के पद्यो मे सहज कल्पना एक या दो प्रकार के छदो का प्रयोग और भाषा का सरल रूप मिलता है। ध्वनि विषयक उत्कृष्टता के कारण ही इन पद्यो को काव्य समीक्षको ने उदाहरणो के लिए चुना होगा। दूसरे वर्ग मे प्रबन्धात्मक कृतियो को रखा जा सकता है जिनकी रचना

---

१. हेमचद्र ने काव्यानुशासन मे अपभ्रंश के सन्धिबद्ध 'अब्धिमथन' तथा ग्राम्य भाषा के 'भीम काव्य' का उल्लेख किया है। का० नु० ८ सू० ६ तथा विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे एक अपभ्रंश काव्य का उल्लेख किया है। दडी द्वारा उल्लिखित आसारबन्ध काव्य भी हमारे सामने नहीं हैं।

किसी प्रकार के कथा सूत्र को लेकर हुई है। इन रचनाओ मे अनेक प्रकार के छदो का प्रयोग हुआ है तथा भाषा का रूप भी साहित्यिक (तथाकथित परिनिष्ठित) ही है। इन्ही दो वर्गो मे विभक्त करके इस साहित्य का सक्षिप्त अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

१. स्फुट या मुक्तक काव्य :

कालिदास . विक्रमोर्वशीय (चतुर्थ अक) मे कुछ अपभ्रंश पद्य विक्षिप्त राजा पुरूरवा के मुख से कहलाये गए हैं। इन पद्यो के कालिदास कृत होने मे पडितो मे गहरा मतभेद है।[1] कालिदास कृत इन पद्यो को न माननेवाले पडितो ने यह सकेत नही किया है कि यह पद्य किस काल के रचे कहे जा सकते है। इन पद्यो के रचयिता, रचनाकाल आदि प्रश्नो को छोडकर उनके काव्य सौन्दर्य पर ही विचार करना प्रस्तुत प्रसग मे सगत होगा। डा० पीशेल ने पन्द्रह पद्य अपने सकलन मे उद्धृत किए है।[2] इन पद्यो मे कालिदास की मनोरम और सजीव कल्पना के अनुकूल ही गीति काव्य का सौन्दर्य मिलता है। कुछ पद्यो मे केवल कुछ प्राकृतिक दृश्यो का ही वर्णन है और कुछ मे उर्वशी के सबध मे उर्वशी के सदृश गुण, धर्म वाले जीवो से राजा के प्रश्न है। रूढि मुक्त वातावरण इन पद्यो मे मिलता है। रचयिता या पीछे के सपादक ने इन पद्यो को गेय शीर्षको के साथ रखा है जैसे चर्चरी[3], कुटिलिका, मल्लघटी[4], खडिका[5] आदि गीतो का शीर्षक देकर इन पद्यो को उद्धृत किया है। पद्यो के छद लय प्रधान मात्रिक, अडिल्ला, चर्चरी, रासावलय, दोहा, विद्याधरदाम, पज्झटिका आदि है। भरत के नाटच शास्त्र मे प्राप्त ध्रुवागीतो

---

१ दे० भूमिका विक्रमोर्वशीय शंकरपांडुरग पडित द्वारा सपादित, बंबई १९०१ ई०। तथा डा० ए० एन० उपाध्ये परमात्मप्रकाश, भूमिका, पृ० ५६। अपभ्रंश पद्यो के लिए पंडित का सस्करण देखिए, अंक ४ एपेन्डिक्स १।

२ मार्टेरिआलिएन त्सुर केन्टनीस डेजापभ्रंश, पृ० ५७-६४।

३. विकामोर्वशीय के टीकाकार रंगनाथ ने चर्चरी को गीति विशेष कहा है, वि० एपें० पृ० १४९।

४ टीकाकार ने कुटिलिका तथा मल्लघटी को नाटच विशेष कहा है, वही, पृ० १५३-४।

५. टीकाकार ने खन्डक को विरह से व्याप्त प्राकृत भाषा निबद्ध गीत कहा है। वही, पृ० १५१-१५६। टीकाकार के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि चर्चरी आदि लोकगीति नृत्य रहे होगे।

और प्रस्तुत पद्यो मे पर्याप्त वस्तु साम्य है। विक्रमोर्वशीय के अतिरिक्त अन्य किसी सस्कृत रूपक मे अपभ्र श पद्य नही मिलते हैं। इससे लगता है कि कालिदास के पीछे यह पद्य उनकी कृति मे सम्मिलित किए गए होगे। भाषा के आधार पर इनका काल निश्चित नही किया जा मकता।

चंड—वैयाकरणो मे सर्वप्रथम चड ने अपभ्र श का उल्लेख किया है तथा दो अपभ्र श दोहे भी उद्धृत किए हैं जिनमे से एक मे योगी को सबोधित करते हुए आत्मा को जानने का उपदेश दिया गया है।[1]

आनन्दवर्धन—ध्वन्यालोक मे एक अपभ्र श दोहा उद्धृत हुआ मिलता है जिसमे मनुष्य को चेतावनी दी है। इम पद्य को आनन्दवर्धन ने स्वरचित बताया है।[2] विषय की दृष्टि से इस दोहे मे ऐसा लगता है कि भक्ति विषयक, चेतावनी, तथा उपदेश विषयक पद्यो की रचना अपभ्र श मे होती थी।

भोज—सरस्वतीकठाभरण मे भोज ने अठारह अपभ्र श पद्य उद्धृत किए हैं। शृगार रस, ऋतु वर्णन आदि इनकी परिचित भावधारा है। अपने आप मे यह पद्य पूर्ण और मुक्त है। प्रधान छद दोहा है, कुछ पद्य अडिल्ला, रासावलय छद मे भी हैं।[3] भोज की दूसरी कृति शृगार-प्रकाश मे भी अपभ्र श पद्य उद्धृत हुए हैं।[4] उसी प्रकार कुछ अपभ्र श दोहे रुद्रट के काव्यालकार[5] तथा एक दोहा धनजय

---

१. चड के प्राकृत लक्षण का रचनाकाल ईस्वी छठी शती माना जाता है। परमात्मप्रकाश भूमिका पृ० ६६। अपभ्र श का नामोल्लेख मात्र ही चड ने किया है दोहा इस प्रकार है

कालु लहेविणु जोइया जिम जिम मोहु गलेइ।
तिव तिव दसणु लहइ जो, णियमे अप्पु मुणेइ।

'हे योगी, काल पाकर जैसे जैसे यह योगी मोह को नष्ट करता है तैसे तैसे दर्शन प्राप्त करता है और नियम से आत्मा को जानता है।' यह दोहा परमात्म प्रकाश मे भी मिलता है प० प्र० दोहा १८५।

२ ध्वन्यालोक, काव्यमाला, १९३५ ई० तथा माटेरिए० पृ० ४५, दोहे मे कहा है कि अपना समझने वाले मनुष्य को काल वर्जित करता है लेकिन तो भी वह जनार्दन का ध्यान नहीं करता।

३ सरस्वती कठाभरण, काव्यमाला, बबई सस्करण।

४. भोज. शृगार प्रकाश, मैसोर।

५. काव्यालंकार, पृ० ४.१५, ४.२१ तथा ५.३२।

के दशरूपक[1] मे भी मिलता है। रुद्रट के पद्य स्वरचित है किन्तु धनजय ने उसे अन्यत्र से उद्धृत किया है। कुछ अन्य कृतियो मे[2] भी इसी प्रकार के अपभ्रंश पद्य मिलते हैं, किन्तु इन सब उद्धरणो मे सख्या मे अधिक तथा महत्त्वपूर्ण उद्धरण हेमचद्र ने दिए हैं।

हेमचद्र—हेमचद्र ने अपने प्राकृतानुशासन मे अपभ्रंश का व्याकरण प्रस्तुत करते समय अपभ्रंश के उदाहरण देते हुए पद्य उद्धृत किए है।[3] इन उद्धरणो मे नाना प्रकार के भावो का चित्रण हुआ है। शृगार तथा प्रेम वर्णन, वीररसात्मक उत्साह पूर्ण उक्तियाँ, वर्णन, नीति, सुभाषित, अन्योक्ति, भक्ति एव प्रसिद्ध पात्रो के उल्लेख इन पद्यो मे हैं। सभी पद्य मुक्तको के रूप मे है। कुछ पद्यो मे नायिकाओ का सौन्दर्य वर्णन मिलता है, यथा—'गौरी (सुदरी) के वदन की कचनकान्ति प्रकाश से पराजित होकर, देखो, प्रफुल्लित कणिकार वनवास कर रहे हैं।'[4] या, 'देखो, गौरी के मुख मे पराजित होकर मृगाक बादलो मे जा छिपा है, और भी जो पराजित हुए हैं क्या वे निशक भ्रमण करते हैं।'[5] नायिकाओ के रूप वर्णन के साथ कही नायक के रूप का भी उल्लेख किया है, यथा 'विट श्यामल वर्ण है और प्रिया चम्पक पुष्प के वर्ण की है, कसौटी पर सोने की रेखा के सदृश वह प्रतीत होती है।'[6] सयोग के अतिरिक्त वियोग के ऊहात्मक तथा स्वाभाविक दोनो प्रकार के चित्र कुछ पद्यो मे मिलते हैं। कही अश्रुओ से अञ्चल को भिगोती और उच्छ्वासो से सुखाती हुई वियुक्ता नायिका का चित्र है[7] और विरहानल की ज्वालाओ मे घिरे वियुक्त नायको के चित्र हैं।[8] एक वियुक्ता नायिका का एक वर्णन इस प्रकार हैं —

---

१ दशरूपक ४.३४, निर्णयसागर १९४१, दोहे का विषय शृगार वर्णन है किन्तु अस्पष्ट है।

२. दे० वेताल पचविंशतिका, लाइपजिग १९१८, इत्यादि।

३. पद्य पूरे हैं, कुछ के केवल कुछ चरण ही हैं। १७९ पद्य हैम० ने उद्धृत किए हैं।

४ पूना संस्करण, पृ० १६१ सूत्र ३९६।

५. वही, सूत्र ४०१ २ पृ० १६१-६२।

६. सू० ३३०।

७. वही सू० ४३१।

८. वही सू० ४२९।

वलयावलि निवडण भएण धण उद्धभुय जाइ।
वल्लह विरह महादहहो, थाह गवेसइ णाइ।
सू० ४४४।

'विरह से दुर्बल नायिका कगन के गिर जाने के भय से हाथ ऊपर उठाकर चलती है मानो वल्लभ विरह महासागर की थाह ले रही हो।'

पति की वीरता पर प्रसन्न होने वाली नायिकाओ की वीरतापूर्ण उक्तियो[1] तथा युद्धोत्साह प्रकट करने वाली नायिकाओ के वचनो[2] मे भी पर्याप्त सजीवता हैं। कुछ पद्यो मे वलि, व्यास, कापालिक, उज्जैन, वनारस, लक्ष्मी, काम, जिनवर के उल्लेख तथा दान, कृपणता, योग, चरित्र के उल्लेख मिलते हैं। कुछ मे अन्योक्ति पद्धति के सहारे सज्जनो की सज्जनता का वर्णन, वृक्षो की सदाशयता का उल्लेख करके किया है।[3] एक भाग्यवती को सबोधित करते हुए कहा गया है कि आलस्य मे वैठे रहने से सम्मुख आई हुई वस्तु का आदर करना अच्छा है (सूत्र ३८८ का उदाहरण)। भ्रमर, नेत्र, सत्पुरुष, पपीहा, मेघ, स्नेहादि पर भी अनेक सरस उक्तियाँ इन पद्यो मे मिलती हैं। व्यजना का एक उदाहरण निम्न पद्य मे देख सकते हैं

गयउ सु केसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइं हरिणाइं।
जसु केरइं हुंकारडएं मुहहुं पडन्ति तृणाइं।
सूत्र ४२२।

'हरिणी। निश्चिन्त होकर जल पिओ, वह सिंह चला गया जिसकी हुँकार से तुम्हारे मुख की घास के तिनके गिर पडते थे।'

कुछ पद्यो मे वैराग्य भावना तथा ईश्वर के प्रति प्रेम की भी व्यजना मिलती है[4] एक पद्य मे कहा गया है कि 'मैं उस देश जाऊँगी जहाँ अपने प्रियतम का प्रमाण पा सकूगी अथवा मैं उसी जगह निर्वाण प्राप्त करूँगी।'—सूत्र ४१९ का उदाहरण। कही कही सरल पशुओ के भावो का चित्रण तथा मनुष्य के मन की कुटिलता के

१ प्राकृता सू० ३५१, ३८३।
२. वही सू० ३७६, ३८३ पृ० १५८ तथा एक पद्य मे माता सुपुत्र के वीर होने से ही जीवन की सार्थकता वताती है। सूत्र ३९४।
३. वही सू० ३३६, ४४५, तथा हाथी और भ्रमर को सकेत करके कही हुई अन्योक्तियाँ सूत्र ३८७ के उदाहरणो में हैं।
४. वही सू० ४१८ योग के सकेत सूत्र ४२२ का उदाहरण।

उल्लेख, कही सीधे पुरुषो को बैल कही जाने वाली लोकोक्तियो का उल्लेख है। दो एक लोकोक्तियाँ इस प्रकार देख सकते है ·

जेवडु अन्तरु रावण रामहं, तेवडु अन्तरु पट्टण गामहं।

सू० ४०७।

'जितना अन्तर रावण और राम मे है उतना ही अन्तर नगर और ग्राम मे होता है।'

इस लोक सरलता के द्योतक वातावरण के साथ ही कुछ पद्यो मे काव्य रसिको के प्रिय वातावरण की भी झलक मिलती है। एक पद्य इस प्रकार है

चम्पक कुसुमहो मज्झि सहि भसलु पइट्ठउ।

सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ बइट्ठउ।

सू० ४४४।

'सखि! भ्रमर ने चम्पक पुष्प मे प्रवेश किया है और ऐसा चमकता है मानो इन्द्रनील मणि को सोने मे जड दिया हो।'

हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत हुए पद्य समाज के साहित्य-रसिक और सरल ग्रामीण दोनो वर्गो का स्पर्श करते है। अत परपरागत साहित्यिक कल्पना के साथ इन पद्यो मे आडवरहीन सरल उक्तियाँ भी मिलती है। साहित्यिक और लोक जीवन दोनो के ही चित्र इन पद्यो मे मिलते है। पद्यो मे दोहा छद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है इसके अतिरिक्त सोरठा, सम चतुष्पदी वर्ग के छद, तथा दो वर्गो के छदो से बने हुए छदो का प्रयोग हुआ है। सभी छद मात्रिक है। हेमचद्र ने यह पद्य विभिन्न क्षेत्रो से सकलित किए है, सभव है कुछ पद्य उनके स्वरचित भी हो। पद्यो के मूल रचयिताओ या स्रोतो का पता लगाना सभव नही है। पीशेल ने अनुमान किया है कि यह पद्य सतसई के सदृश किसी सग्रह ग्रथ से लिए गए होगे।[1] भाषा भेद तथा कल्पना के विभिन्न स्तरो से भी इनके विभिन्न आधारो का अनुमान करना सगत प्रतीत होता है।[2]

इसी प्रकार के अनेक पद्य हेमचद्र के छदोनुशासन मे है, किन्तु उनमे मुक्तक

१. कुछ पद्यो के आधार ज्ञात हो चुके हैं, कुछ पद्य पाहुड दोहा मे मिलते हैं प्रा० दो० भूमिका पृ० २२-२३। कुछ पद्य परमात्मप्रकाश में मिल जाते है, वही भूमिका पृ० ४५-४६ और कुछ पद्य राजस्थानरादूहा मे मिलते हैं। दे० ग्रामाटिक, परिच्छेद ३०।

२ हेमचंद्र के समय पर पीछे विवेचन किया गया है।

की स्वतत्रता नही प्राप्त होती। कदाचित् छदो के उदाहरणो के लिए हेमचद्र ने इन पद्यो की रचना स्वय की होगी। जैसी वचन विदग्धता उनके व्याकरण में सग्रहीत अपभ्र श पद्यो मे मिलती है वैसी छदोनुशासन के अपभ्र श पद्यो मे नही।

प्राकृत पैंगलं[1]—कथा का सकेत करने वाले तथा कही कही मुक्तक पद्य प्राकृत पैंगलं मे भी मिलते है। कुछ पद्यो मे बडी मार्मिक उक्तियाँ है, वर्षा ऋतु के सबध मे एक कृषक की उक्ति इस प्रकार है कि वर्षा तभी सुखकर होती है जब घर की छत ऊँची हो, स्वच्छ घर विनयशील तरुण स्त्री हो और घर धन से पूर्ण हो।[2] इसी प्रकार की मार्मिक उक्ति एक दरिद्र व्यक्ति की इस प्रकार है कि यदि एक सेर घी मिल जाता तो बीस मडा पकाता और यदि एक टक नमक मिल जाता तो जो रक है वह राजा हो जाता।[3] ऋतुओ के वर्णन भी कुछ पद्यो मे मिलते हैं।[4] कथा या व्यक्तियो से सबधित पद्यो मे देवताओ के उल्लेख है जिनमे शिव, कृष्ण तथा सेतुबध की कथा के सकेत है।[5] राजाओ मे काशीराज दिवोदास, कर्ण, हम्मीर, चद्रेश्वर के उल्लेख हुए है।[6] सेना और युद्ध, तुरक और हिन्दुओ के युद्धो का भी कुछ पद्यो मे सकेत हैं।[7] हेमचद्र के पद्यो के समान प्राकृत पैंगल के रचयिता ने भी पद्य विभिन्न क्षेत्रो से लिए होगे, इन पद्यो की भाषा स्वयभू या पुष्पदंत की अपभ्र श के समान साहित्यिक अपभ्र श नही है किन्तु सरल अपभ्र श है जिसको परिवर्तनकालीन अपभ्र श कहा जा सकता है।

प्राकृत पैंगल के रचयिता और रचना काल के सबध मे निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नही हो सका है। परपरा द्वारा प्रसिद्ध पिंगल सूत्रो के रचयिता पिंगल के इस कृति का कोई सबध स्थापित नही किया जा सकता। कृति मे हम्मीर का उल्लेख

---

१. प्राकृत पैंगल के दो सस्करण हो चुके हैं, एक कलकत्ते से बिब्लियोथेका सीरीज मे कलकत्ता, १९००-२ ई० ,तथा दूसरा बम्बई से। प्राकृत टैक्स सोसाइटी से कृति का एक नया सस्करण अभी निकला है, जिसमे हिन्दी अनुवाद भी दिया है, बनारस १९५९ ई०।

२. प्राकृत पैंगलं १.१७४ कलकत्ता सस्करण।

३. वही, १.१३०।

४. वही वर्षा का एक दृश्य २.१९५, वसत० २.१९७। २.२०३।

५. वही १.८२, ९८, १९५, २०७, २०८ और २.४६।

६. वही १.७०, ७२ आदि।

७. वही १.६०, १५७ इत्यादि।

है तथा कुछ शब्दो के प्रयोग जैसे सुलतान (१ १०८), खोरासान और उल्ला (१ ४४७) साही तथा तुल्क (तुर्क) तथा हिंदू (१ १५७) तथा प्रस्तुत कृति पर अनेक सस्कृत टीकाएँ मिलती हैं जिसमे से सभी सोलहवी शती के पीछे की है। कृति को तेरहवी शती के पहिले का नही माना जा सकता। चौदहवी या पद्रहवी शती उसका सकलन काल माना जा सकता है।

मेरुतुंग—मेरुतुगाचार्य द्वारा रचित प्रबंधचिन्तामणि[1] (वि० स० १३६१) मे अपभ्र श के अनेक पद्य मिलते हैं। विक्रम, मूलराज, मुज राजाओ से सबधित प्रसग इन पद्यो मे है।[2] तैलग देश के राजा द्वारा बदी किए मुज के पद्य बडे ही हृदय-द्रावक है। तैलगाधिपति की वहिन मृणालवती के धोखा देने पर मुंज स्त्री जाति को इस प्रकार धिक्कारता है

सउ चित्तइ सट्ठी मनहँ (?) बत्तीसडा हियाइ।
अम्मी तेनर डड्ढसी जे वीससइं तियांह। पृ० २३।

'वे नर मूर्ख है जो स्त्री पर विश्वास करते है, जिस स्त्री के चित्त मे सौ, मन मे साठ और हृदय मे बत्तीस आदमी बसते हैं।'

रस्सी मे बाँधकर भिक्षार्थ घुमाए जाते हुए मुज की एक उक्ति इस प्रकार है

झोली तुट्टवि किं न मुउ किं हुउ छारह पुंजु।
हिंडइ दोरी वोरियउ जिम मंकडु तिम मुंजु।
पृ० २३।

'बदर के समान डोरी मे बाँध कर घुमाया जाता हुआ मुज झोली के टूट जाने से (बाल्यावस्था मे) क्यो न मर गया या आग मे जलकर राख क्यो न हो गया।'

मुज द्वारा कहलाए गए ये मर्मस्पर्शी पद्य स्त्री चरित की दुरूहता, लक्ष्मी

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला शान्तिनिकेतन, बंगाल, १९३३ ई०।

२. प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोश, पुरातन प्रबन्ध संग्रह ग्रंथों के विविध प्रबन्धो मे जो अपभ्र ंश पद्य मिलते हैं उनके आधार पर यह अनुमान करना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि ये विभिन्न पद्य अनेक स्वतंत्र कृतियो मे से लिए गए हैं जो अब उपलब्ध नहीं है। मुंज, पृथ्वीराज आदि राजाओ से संबंधित स्वतंत्र अपभ्र ंश कृतियो के अस्तित्व की कल्पना उन राजाओ से संबंधित प्राप्त पद्यों के आधार पर सहज ही की जा सकती है।

की अस्थिरता[1] तथा भाग्य की चपलता को सबोधित करके लिखे गए है। इसके अतिरिक्त भोज भीम प्रबध, तथा कुमारपाल प्रबध में अपभ्र श के पद्य मिलते हैं, शेप प्रबन्धो मे भी यत्र तत्र कुछ पद्य बिखरे हुए हैं। प्राय सभी पद्य दोहा छद मे है।

राजशेखरसूरि—राजशेखर सूरि कृत प्रबधकोश[2] (वि० स० १४०५) मे भी सुभापित, उपदेश, शृगारात्मक कुछ अपभ्र श पद्य मिलते हैं। ऊहात्मक वियोग का एक पद्य मे इस प्रकार वर्णन है—

पसु जेम पुलिंदउ पउ पियइ पथिउ कवणिण कारणिण।
कर बेवि करपिअ कज्जलिण मुद्धह अंसु निवारणिण, पृ० ३२।

'पथिक! पुलिंद, पशु की भाति जल किस कारण पी रहे हो। मुग्धा के अश्रुओ को रोकने के लिए दोनो हाथो को पीछे किए हूँ अत पशु की भाँति जलपान कर रहा हूँ।' प्रबन्धकोश के पद्य भी प्राय दोहा छद मे है, सोरठा के प्रयोग भी मिलते हैं।

पुरातन प्रबन्ध सग्रह—पुरातन प्रबन्ध सग्रह[3] मे भी इसी भाँति कुछ अपभ्र श पद्य मिलते हैं। इस कृति के उद्धृत पद्यो मे से कुछ पद्य प्रबध चिन्तामणि के भी मिलते हैं। एक पद्य हेमचद्र के व्याकरण मे पाया जाता है।[4] प्रस्तुत कृति के पृथ्वीराज प्रबन्ध मे उद्धृत चार अपभ्र श पद्य विशेष मनोरजक हैं।[5] इन चार पद्यो मे से दो पट्पदी पद्य कुछ रूप परिवर्तन के साथ पृथ्वीराज रासो के वर्तमान रूप मे भी मिलते है। इन पद्यो के आधार पर रासो के रूप के सबध मे कुछ भी निर्णयात्मक

---

१. एक पद्य मे लक्ष्मी की चचलता का सजीव चित्रण इस प्रकार है, एक स्त्री पड्डो (भैंस के बच्चे) को छाछ पिला रही थी। मुंज ने कहा कि इन पड्डो पर गर्व न कर, मुंज के चौदह सौ छहत्तर हाथी थे, पर वे भी चले गए, वही, पृ० २४।

परन्तु उस स्त्री ने जो उत्तर मुज को दिया था वह और भी सुदर है 'जिसके घर चार बैल हैं, दो गाए हैं और मै मिष्टभाषिणी स्त्री हूँ, ऐसे कुटुम्ब को ए मुंज! हाथी बाँधने की क्या जरूरत है? वही पृ० २४।

२. सिंघी जैन ग्रथमाला ६, कलकत्ता १९३५ ई०।

३. सिंघी जैन ग्रंथमाला २, कलकत्ता, १९३६ ई०।

४. झुल्लउ सामलउ घण चंपा वन्नी। छज्जइ....वही, पृ० २१।

५. वही, पृ० ८६ तथा आगे।

रूप से नही कहा जा सकता । मुज, हमीर के सबध मे जिस प्रकार प्रबध मिलते हैं उसी प्रकार पृथ्वीराज के सबध मे भी इस प्रकार के पद्य रहे होगे और 'पृथ्वी-राज रासो' मे उन्हे भी सकलित किया गया होगा ।[1] या सभव है कोई छोटी कृति पृथ्वीराज से सबधित हो उसी मे से पुरातन प्रबन्ध सग्रह के सग्रहकर्ता तथा रासो-कार दोनो ने इन पद्यो को लिया होगा । और पुरातन प्रबन्ध भी निश्चित रूप से इतना प्रामाणिक नही माना जा सकता है कि वर्तमान पृथ्वीराज रासो के सबध मे कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके ।

इन अर्द्ध ऐतिहासिक सग्रह ग्रन्थो मे प्राप्त अपभ्र श पद्य प्रधान रूप से दोहा छ द मे है । भाषा का उनमे बहुत सरल रूप मिलता है और कही कही राजस्थानी औरगुजराती का भी प्रभाव मिलता है । परिवर्तनयुगीन भाषा का रूप उनमे प्राप्त होता है । इस प्रकार की अपभ्र श परपरा का स्थान धीरे धीरे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ ने ले लिया । माधवानल कामकदला (गणपतिरचित)[2] तथा ढोला मारूरा दूहा[3] तथा कबीर की वाणियाँ इसके आगे की विकसित रचनाएँ है । राज-स्थान रादूहा[4] मे विभिन्न विषयो से सबधित दोहे सकलित हुए है, जिनमे से कुछ

---

१. इन पद्यो के आधार पर 'रासो' के सम्बन्ध मे कुछ विद्वानो ने बड़े आशा और उत्साहपूर्ण शब्द कहे है तथा रासो के संभावित अपभ्रंश रूप की भी कल्पना की है जो बहुत उचित नहीं कही जा सकती । यथा दे० भूमिका, पु० प्र० सं० आदि ।

२. गायकवाड्ज ओरिएंटल सीरीज मे प्रकाशित, बड़ौदा, १९४२ ई० ।

३. काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९९१ वि० ।

४. कुछ अन्य इस प्रकार के पद्य वेताल पंचविशतिका, लाइपजिग १८८१, ऊले के संस्करण मे तथा भट्टारक द्वात्रिंसिका, लाइपजिग १८८१, तथा पंचतंत्र, हर्वर्ड ओरिएंटल सिरीज, एजरटन द्वारा संपादित मे भी मिलते हैं। तथा विदग्धमुख मंडनं, निर्णयसागर, बंबई, १९१८ ई० मे अपभ्रंश मे अनेक प्रहेलिकाएं मिलती है । उनमे काव्य की सरसता नहीं है । दे० परिच्छेद ३ । इसी प्रकार संस्कृताभास लिए दो अपभ्रंश पद राग गूजरी और राग मारू मे जयदेव कृत गुरुग्रंथ साहब मे मिलते हैं, दे० पारिजात १९४७ ई० में रामसिंह तोमर का लेख । 'जयदेव और उनकी अपभ्रंश कविता' तथा चैटर्जी, ओ० डि० बैं० लैं० पृ० १२४ । जयदेव के गीतगोविंद की भाषा यद्यपि संस्कृत है किन्तु लय, छंद, ढंग सब लोकभाषा के समान हैं दे० वही पृ० १२५ तथा पीशेल ग्रा० परि० ३२ ।

का रूप श्रुति परपरा मे रहने के कारण बहुत कुछ बदल गया है वह भी इसी प्रकार की रचना है। साहित्यिक अपभ्र श की मुक्तकधारा के यही कतिपय पद्य उपलब्ध है। यह पद्य वैराग्य, शृगार, उपदेश और सुभाषित तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो से सबधित हैं। शृगार, उपदेश और सुभाषित धारा अविच्छिन्न रूप मे हिन्दी साहित्य मे भी प्रवाहित होती रही।

मुक्तक पद्य यद्यपि मात्रा मे कम ही मिले है तथापि जो विविधता उनमे मिलती है उसमे शृगार, उपदेश, वैराग्य, नीति आदि भाव धाराओ के साथ साथ काव्य की सजावट का भी ध्यान रखा गया है। एक दोहा छद को इस प्रकार के अनेक विषयो का माध्यम बनाया गया है। अपभ्र श के इन दोहा पद्यो की धारा अपने पूरे वैभव और अनेकरूपता के साथ हिन्दी मे भी प्रवाहित होती रही। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, शैव सभी ने अपभ्र श मे वैराग्य, अध्यात्म ज्ञान के उपदेशो से पूर्ण पद्यो की सृष्टि की है यह धारा भी प्राचीन हिन्दी काव्य मे प्रवाहित होती रही। मुक्तको की यह धारा इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से लगभग एक सहस्र वर्ष तक उत्तरी भारत मे बहती रही। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल मे आकर इस मुक्तक धारा का आध्यात्मिक स्वर मद हो गया किन्तु काव्य की सजधज वाला शृगारपरक रूप और भी पुष्ट होकर प्रवाहित हुआ।

२. प्रबंधात्मक रचनाएं

दंडी, हेमचद्र और विश्वनाथ आदि के प्रमाणो के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपभ्र श मे उच्च ऐहिकता मूलक, धार्मिकता के बोझ से मुक्त साहित्यिक प्रबधात्मक कृतियो की भी रचना हुई थी। हेमचद्रादि द्वारा निर्देशित की हुई कृतियाँ अभी तक उपलब्ध नही हुई हैं। किन्तु अपभ्र श की प्रबन्धात्मक धारा का आंशिक दृष्टि से प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रथ अब्दुल रहमान कृत सदेश रासक[1] और विद्यापति कृत कीर्तिलता[2] तथा कीर्ति पताका[3] हैं, जिनका सक्षिप्त अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

---

१. डॉ० एच० सी० भायाणी द्वारा संपादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला २२, बंबई २००१ वि०। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और उनके शिष्य—विश्वनाथ त्रिपाठी का एक नया संस्करण प्रकाशित हुआ है—हिंदी ग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई—१९६० ई०। प्रस्तुत संस्करण की विशेषता हैं—मूल कृति की संस्कृत अवचूरिका (संक्षिप्त टीका) का हिन्दी रूपान्तर दे दिया गया है। भायाणी की अँग्रेजी भूमिका

सन्देश रासक : कालिदास के मेघदूत की तरह संदेशरासक २२३ पद्यो मे समाप्त सदेश काव्य है। तीन प्रक्रमो मे कवि ने कृति को विभक्त किया है। प्रथम चालीस पद्यो मे मगलाचरण तथा भूमिकारूप अपनी कृति-रचना के औचित्य का प्रसग है। मुख्य विषय का प्रारभ विजयनगर की एक विरहिणी नायिका के वर्णन से होता है। वह एक पथिक द्वारा जो सामोरु[1] नगर से आया था और खभात तीर्थ जा रहा था, अपने पति को सदेश भेजना चाहती है। खभात मे ही उस नायिका

के भी कुछ भागो को हिन्दी मे अनूदित कर दिया गया है। आचार्य द्विवेदी ने 'संदेश रासक के विचारणीय पाठ और अर्थ' अध्याय मे कुछ कठिन स्थलो पर विचार किया है। उनके यह सुझाव इसके पहिले नागरी-प्रचारिणी पत्रिका मे निकल चुके थे। स्थान स्थान पर यह कहकर कि 'यदि ऐसा पाठ होता तो अधिक सुंदर होता' सुंदर अर्थो की कल्पना की गई है। जयपुर मे प्राप्त एक नई हस्तलिखित प्रति के संबंध मे प्रशंसापूर्ण शब्द कहे हैं। प्रति के एक पृष्ठ का चित्र भी दिया गया है किन्तु प्रति के पाठ भेदों की कहीं चर्चा नहीं की गई है और जहाँ तहाँ पाठ बदल दिए गए हैं जिनके आधार का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। अवचूरिका मे कई स्थलो का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है, ऐसे स्थलो को स्पष्ट करने की चेष्टा संपादकों ने की है किन्तु कहीं कल्पना के सहारे विचित्र अर्थ कर डाला है—जो हो हिन्दी पाठकों को एक संस्करण मिल गया।

२. कृति के दो संस्करण ऐतिहासिक महत्त्व के हैं, (१) बगानुवाद समेत म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संपादित, १९२८ ई० तथा (२) हिन्दी अनुवाद, भूमिकादि सहित डॉ० बाबूराम सक्सेना द्वारा संपादित, काशी, प्रथम संस्करण १९३२ ई०, दूसरा संस्करण। एक तीसरा संस्करण इधर निकला है जिसकी भूमिका—में अपभ्रंश के बिना पर्याप्त आधारों के दो भेदो—परिनिष्ठित और अवहट्ठ के विषय में चर्चा की है। संस्करण पाठ की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व नहीं रहता—विद्यापति और उनकी कीर्तिलता, संपादक–शिवप्रसाद सिंह, काशी।

३. कीर्तिपताका अभी तक अप्रकाशित है। एक अधूरी प्रति लेखक को डा० उमेश मिश्र से प्राप्त हुई थी। साहित्य की दृष्टि से कृति महत्वपूर्ण नहीं है।

१. सामोरु नगर का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। वही, पद्य ४२-६५।

का पति रहता था, अत उस नगर का नाम सुनते ही वह भावविह्वल होकर पथिक को अपना करुणापूर्ण सदेश कहने लगती है। आश्वासन देता हुआ पथिक उसे धैर्य बधाता है। अपने भावो को व्यक्त करने मे असमर्थ पाकर वह पथिक से उसकी दशा का वर्णन करने का आदेश देती है। इसी प्रसग मे ऋतुओ का विस्तृत वर्णन भी कवि ने किया है। प्रत्येक ऋतु से सबधित नवीन उत्साह, पर्व आदि का कवि ने उल्लेख किया है। एक ओर सयोग अवस्था वालो को जो ऋतुएँ सुख देती है, दूसरी ओर इस विरहिणी नायिका को वे ऋतुएँ सतप्त करती है।[1] अपने दु ख का वर्णन कर वह पथिक को प्रिय वचनो से युक्त सदेश कहने की विनती कर आशीर्वाद देकर उसे विदा करती है। इसी समय दक्षिण दिशा से वह अपने पति को आता हुआ देखती है। हर्ष से वह उल्लसित हो जाती है। पाठको को मगल कामना करता हुआ कृतिकार ग्रथ को समाप्त करता है।

कवि ने विरहिणी नायिका के भावो का चित्रण बडी सवेदना और गहनता से किया है। यो तो ऋतु वर्णन एक ओर उद्दीपन के रूप मे प्रयुक्त हुआ है किन्तु अपने आप मे वह कृति का सब से मौलिक और पूर्ण अग है। परपरागत ऋतु वर्णन की शैली से भिन्न इस वर्णन मे कही अधिक सरसता और साहित्यिकता है। दीपावली, कुन्द चतुर्थी, वसतपचमी तथा होली के वर्णन तन्मय होकर कवि ने प्रस्तुत किए हैं। कही कही कवि ने अनावश्यक नामावली दी है। वृक्षो की नामावली इसी प्रकार की नीरस सूची है। वेदयावाड के वर्णनादि, पथिक द्वारा नायिका के सौंदर्य की प्रशसा ऐसे स्थल हैं जो अनुपात की दृष्टि से कुछ विस्तृत हैं।[2]

सदेशरासक सरल साहित्यिक अपभ्र श मे निर्मित हुआ है। कुछ पद्य प्राकृत[3] में तथा प्राकृत मे प्रभावित हैं।[4] हेमचद्र के दोहो के समान कृति मे पश्चिमी अपभ्र श का रूप मिलता है। कृति मे देशी, तथा ध्वन्यात्मक शब्दो के बडे स्वाभाविक प्रयोग हुए हैं।[5] मात्रिक तथा अनुप्रासयुक्त वर्णवृत्तो के प्रयोगो की कृति मे प्रधानता

---

१. स० रा०, पद्य ६६ से २२२।

२. वही, प्रक्रम २।

३. सं० रा० १, १७, ३२, ४०, ७२, ८४, ९०, ९३, १२६, १२९, १४९, १५२, १५३, १७२, २१३, २२१, १०६।

४. वही, १००, १७१, १७३।

५. वही, झंखर १२२, झंखडु १९२, ढंखर, तडतडिय खहखह ३ १३२ आदि।

है।[1] प्राकृत पद्य गाथा छद मे हैं।

रचयिता ने अपने सवध मे वताया है कि पश्चिम मे पूर्व काल के प्रसिद्ध मलेच्छ नामक देश मे मीरसेन नामक तन्तुवाय (जुलाहा) रहता था। उसका पुत्र कुल-कमल प्राकृत काव्य तथा संगीतादि मे निपुण अद्दहमाण (अब्दुलरहमान)[2] हुआ और उसने सदेशरासक की रचना की। कवि ने सस्कृत, प्राकृत, अवहट्ठ और पैशाची भाषाओ में भी काव्य रचना करने का उल्लेख किया है।[3] प्रसग वश कृति मे कुछ स्थानो के नाम आए हैं। विरहिणी विजयनगर[4] की निवासिनी थी, पथिक ने अपने आने तथा जाने के स्थान क्रमश 'सामोरु'[5] तथा 'खंभाहत'[6] वताए है। टीकाकारो ने 'सामारु' को मुख्य स्थान (मुल्तान) तथा खंभाहत्त' को स्तम्भ तीर्थ[7] वताया है। डाक्टर कात्रे मूलस्थान को वर्तमान मुल्तान निश्चित करते हैं और खभात वर्तमान खभात है, विजयनगर को उन्होने मालवा का विद्यानगर वताया है[8] और मुनि जिनविजय जी ने टीकाकारो का अनुसरण करते हुए विजय-नगर को विक्रमपुर माना है। विक्रमपुर वर्तमान जैसलमेर मे एक स्थान का नाम है।[9] इन स्थानो के उल्लेखो से यह अनुमान किया जा सकता है कि कदाचित् कवि

---

१. छंदो के विवेचन के लिए भायाणी के सं० रा० की भूमिका दृष्टव्य। सबसे अधिक रासक छंद का प्रयोग हुआ है।

२. अद्दहमाण से अब्दुल रहमान की व्युत्पत्ति संतोषजनक नहीं प्रतीत होती। किन्तु संदेशरासक के टीकाकार ने अब्दुलरहमान नाम दिया है, इसी आधार पर विद्वानों ने इस नाम को स्वीकार किया है। कृति के प्रारंभ का एकेश्वरवादी प्रकार का मंगलाचरण तथा अन्त मे जो निर्देश किया है तथा कृति मे वेश्यावाड तथा कुछ अन्य ऐसे वर्णन हैं जिनके आधार पर कृति का रचयिता मुसलमान हो सकता है।

३. वही : पद्य ३-४ तथा ६।

४. विजय नयरहु कावि वररमणि, प्रक्रम २ का प्रारंभ।

५. वही पद्य ४२।

६. वही पद्य ६५।

७. क्रमशः पद्य ४२ तथा ६५ की टीकाएं।

८. कात्रे : 'ए मुस्लिम कान्ट्रिब्यूशन टु अपभ्रंश लिटरेचर' द कर्नाटक हिस्टा रिकल रिव्यू, भाग ४ अंक १-२, पृ० १८-१९।

९. सं० रा० प्रस्तावना पृ० १२।

का संबध मुल्तान से रहा होगा। अब्दुल रहमान ने बडी सहृदयता के साथ हिन्दुओ के तीर्थो, सामाजिक प्रथाओ, उत्सवो, स्त्रियो के आभूषणो तथा अन्य अनेक शास्त्रीय तथा लौकिक बातो के एललेख किए हैं।[1] सभव है वे पहले हिन्दू रहे हो या समन्वय वादी सहानुभूतिपूर्ण उदार दृष्टिकोण के मुसलमान ही हो।

कवि ने अपने तथा अपनी रचना के निर्माण काल के सबध मे कोई उल्लेख नही किया है। सदेश रासक की टीका स० १४६५ वि० की लिखी हुई प्राप्त हुई है अत इसके पूर्व ही कृति की रचना हुई होगी। मुल्तान के वर्णन से ऐसा लगता है कि उस समय वह नगर समृद्धिपूर्ण था। मुहम्मद गोरी ने उसे नष्ट नही किया था। खम्भात कवि के अनुसार व्यापार,का अच्छा केन्द्र था। सिद्धराज तथा कुमार-पाल चालुक्य राजाओ के पश्चात् उस नगर की दशा गिर गई थी। अत कृति का काल विक्रम की तेरहवी शती अनुमित किया जा सकता है।[2] कवि की अन्य किसी रचना का पता नही लगा है।

विद्यापति : विद्यापति ने सस्कृत, अपभ्रश और मैथिली मे अपनी कृतियाँ लिखी। अपभ्रश (अपभ्रष्ट-अवहट्ठ) मे उनकी पूर्ण कृति कीर्तिलता प्राप्त हुई है। कीर्तिलता ऐतिहासिक चरित काव्य है। अपने आश्रयदाता कीर्ति सिंह के यश वर्णन के लिए इसकी रचना हुई है। प्रारभ मे सस्कृत पद्यो मे मगलाचरण है,[3] आगे आश्रयदाता की प्रशसा,[4] दुष्टो का स्मरण और फिर अपभ्रश भाषा मे लिखने के लिए सफाई दी है।[5] इस सक्षिप्त प्रस्तावना के अनन्तर कवि ने भृगी और भृग के प्रश्नोत्तर के रूप मे कृति की प्रधान कथा का प्रारभ किया है। कीर्तिसिंह के यशादि तथा वीरता के वर्णन के साथप्र थम पल्लव, समाप्त हुआ है। कृति चार पल्लवो मे विभक्त हैं।

दूसरे पल्लव मे पिता के वध करने वाले तथा राज्यापहरण करने वाले तुरुक असलान से बदला लेने के लिए कीर्तिसिंह तथा उनके भाई वीरसिंह के बादशाह से सहायता लेने के लिए जौनपुर जाने का वर्णन है। जौनपुर के मार्गो, तथा अन्य

---

१. भाषाओ, भरतनृत्य, वेद, लक्षण छंद रामायण रासक आदि के उल्लेख।
२. सदेश रासक : प्रस्तावना पृ० ११-१५।
३. कीर्तिलता : सक्सेना संस्करण, पद्य १-३।
४. वही, पद्य ४-५।
५. वही, पृ० ६-८।

अनेक दृश्यो, मुसलमानो की उद्धतता तथा हिन्दुओ की दयनीय दशा के अनेक सुन्दर वर्णन इस पल्लव मे मिलते हैं।[1]

तीसरे और चौथे पल्लवो मे सेना के प्रस्थान, युद्ध तथा कीर्ति सिंह की विजय और राज्य अभिषेक के वर्णन है, आशीर्वाद और मगल कामना के साथ कृति समाप्त हुई है।

कीर्तिलता मे काव्य-वैभव बहुत ही कम है। विभिन्न स्थानो, दशाओ के वर्णन कुछ स्वाभाविक और आकर्षक हैं, कही कही इन वर्णनो मे ग्राम्य प्रयोग भी मिलते है।[6] आश्रयदाता की दीनदशा का चित्रण कवि की स्पष्टवादी प्रकृति का द्योतक कहा जा सकता है। कृति मे गद्य, पद्य दोनो का व्यवहार हुआ है, गद्य मे भी एक प्रकार की लय का प्रयोग मिलता है। पद्य भाग मे दोहा, छप्पय, अडिल्ला, भुजंग-प्रयात, मनवहला, गीतिका, रड्डा आदि प्रयुक्त हुए हैं। कीर्तिलता की भाषा पर मैथिली का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, कीर्तिलता की भाषा का प्रमुख आधार शौरसेनी अपभ्रंश है।[2]

डा० सुकुमार सेन ने 'विद्यापति गोष्ठी' मे एक पद्य विद्यापति का उद्धृत किया है। उन्होने अनुमान किया है कि वह पद्य कीर्तिपताका मे है। इस पद्य मे देवसिंह के परलोकगमन और शिवसिंह के सिंहासन पाने का वर्णन है। शकाब्द १३२४ का उल्लेख इस पद्य मे है।[3] विद्यापति की दूसरी कृति कीर्तिपताका है। जिसमे कुछ अपभ्रंश पद्य पाए जाते है। राजा शिवसिंह का यश प्रस्तुत कृति मे वर्णित है। बीच बीच मे सस्कृत तथा मैथिली मिश्रित गद्य भाग है। प्रारभ मे शिव, सरस्वती और गणेश की वदना है और फिर क्रमश सज्जन और दुर्जनो का स्मरण किया गया है। विद्यापति का समय ई० १४वी–१५वी शती है।[4]

विद्यापति की अपभ्रंश कृतियो मे अपभ्रंश की नैसर्गिकता का अभाव है। सदेशरासक और कीर्तिलता दोनों ही अपभ्रंश युग के समाप्ति काल की रचनाएँ हैं किन्तु जो काव्य सौन्दर्य, सहज चित्रण, सवेदनामूलक कल्पना और विषय के

---

१. जैसे पृष्ठ ४२, पंक्ति १.२
२. दे० वही, भूमिका, पृ० ५ और आगे।
३. दे० विद्यापति गोष्ठी, पृ० ९४-९६, साहित्य सभा, वर्द्धमान, बं० सं० १३५४।
४. दे० विद्यापति ठाकुर : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद तथा कीर्तिलता भूमिका पृ० ४ और आगे।

साथ तन्मयता सदेशरासक मे मिलती है वह विद्यापति की कृतियो मे नही मिलती। साहित्यिक अपभ्र ंश मे इन्ही कतिपय प्राप्त कृतियो की रचना हुई होगी ऐसा विश्वास किसी प्रकार नही किया जा सकता। इन कृतियो के रचयिताओ के सामने काफी समृद्ध अपभ्र श साहित्य रहा होगा और उसी से प्रेरणा पाकर इन कवियो ने अपनी कृतियो की रचना की होगी। आश्चर्य का विषय है कि बहुत ही कम अजैन अपभ्र श साहित्य सुरक्षित रहा। अपभ्र श और समस्त प्राकृत साहित्य को कदाचित् लोग मध्यकाल मे भूलने लगे थे, सस्कृत का अध्यपन, अध्यापन अवश्य चलता रहा। प्राकृतो का अध्ययन सस्कृत छाया के माध्यम द्वारा ही होने लगा था। इस उपेक्षा के कारण अधिकाश अपभ्र श साहित्य नप्ट हो गया। जैनो ने अपने साहित्य को किसी प्रकार सुरक्षित रखा। इस प्रकार जो भी अपभ्र श साहित्य इस समय उपलब्ध है वह, जहाँ तक अपभ्र स साहित्य के प्रमुख प्रतिनिधि काव्य रूपो का सबध है, अपभ्र श की काव्य धाराओ का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। किन्तु, अपभ्र श काव्य मे जो विविधरूपता रही होगी उसका पूर्ण रूप आज सामने नही है। इसलिए जो रूप हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य का मिलता है उसके पूर्णरूप के पूर्ण चित्र की, जैनेतर अपभ्र श साहित्य के लुप्त हो जाने से, कल्पना करना थोडा कठिन है। यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दी के कवियो के सामने निश्चित ही वे समस्त काव्यरूप और भावधाराएँ थी जिन्हे उन्होने अपनाया है, इनमे से अधिकाश की स्पप्ट और कुछ की अस्पष्ट झलक पीछे प्रस्तुत किए गए प्राकृत और अपभ्र श साहित्य मे मिल जाती है इसका सक्षिप्त अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्वितीय भाग

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य
का
हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

९

काव्य के रूपों पर प्रभाव

प्राकृत और अपभ्र श साहित्य की जो रूपरेखा पीछे प्रस्तुत की गई है उसमे निम्नलिखित काव्यरूप मिलते हैं

१. प्राकृत प्रबन्धकाव्य

अ साहित्यिक महाकाव्य, सेतुबन्धादि ।

आ जैन धार्मिक प्रबन्धात्मक रचनाएँ—महावीरचरितादि ।

इ गद्य-पद्य-मिश्रित कथा कृतियाँ वसुदेवहिंडी तथा समराइच्चकहा ।

२. मुक्तक

अ गाथा सप्तशती, वज्जालग्ग जैसे मुक्तक सग्रह ।

आ अन्य कृतियो मे बिखरे मुक्तक या गीतात्मक पद्य ।

३. रूपकादि मे प्रयुक्त पद्य तथा प्राकृत भाषा निबद्ध सट्टक रचनाएं ।

अपभ्र श

१. प्रबन्धात्मक काव्य

अ. चरित काव्य—विशाल पुराण जिनमे अनेक पात्रो की कथाएँ है, जैसे, पुष्पदन्त का महापुराण आदि तथा एक ही पात्र की कथा से सबधित काव्य । पौराणिक, जैसे, रामायणादि, तथा लोक के सामान्य व्यक्तियो के चरित्रों से सबधित प्रेमप्रधान चरित काव्य, जैसे, भविष्यदत्तकथादि ।

आ. खंड काव्य : १ कल्पना प्रधान विशुद्ध काव्य कृतियाँ, जैसे, सदेश रासक ।

२ ऐतिहासिक खड काव्य या चरित काव्य—कीर्तिलता ।

३ व्रतादि से सबधित छोटी छोटी पद्यबद्ध कथाएँ ।

२. मुक्तक : १ दोहाबद्ध वैराग्य उपदेश प्रधान धारा ।

२ दोहाबद्ध शृगार प्रधान धारा, हेमचद्रादि के दोहे।
३. पद शैली के गीति—बौद्ध सिद्धो के गीति।

नाटय समीक्षको ने नाटको मे प्रयुक्त भाषाओ मे अपभ्र श को कोई स्थान नही दिया। कदाचित् इसी कारण विक्रोमोर्वशीय के अतिरिक्त किसी रूपक भेद या उपरूपक मे अपभ्र श का न तो प्रयोग ही मिलता है और न स्वतत्र कृति की ही रचना हुई है, सभव है कुछ श्रव्यकाव्यो को ही गाकर सुनाया जाता होगा और दृश्य काव्यो का आनद उनसे लिया जाता होगा। रासक या नाटयरासक कृतियो की कदाचित् अपभ्र श मे रचना होती होगी और उनको गीत नृत्य की सहायता से अभिनीत किया जाता होगा, और दृश्यकाव्य के अभाव की पूर्ति इनसे होती होगी।[1]

जैसा पीछे के अध्ययन से स्पष्ट होना चाहिए, अपभ्र श काव्यो की रचना प्रधान रूप से हिन्दी के प्रारम्भ काल तक होती रही, इसको यो कहा जाय तो अधिक सगत होगा कि अपभ्र श की काव्यधाराएँ धीरे धीरे कालान्तर मे परिवर्तित रूप के साथ हिन्दी साहित्य मे भी प्रवाहित होती रही हैं। वास्तव मे जिस प्रभाव की चर्चा आगे की जावेगी उसके द्वारा लेखक का अभिप्राय यह दिखाना है कि जो रूप, शैली आदि हिन्दी के मध्ययुगीन प्राचीन साहित्य मे मिलता है उसका अनायास १४वी या १५वी शती से ही प्रारभ नही हुआ किन्तु वह क्रमश विकासशील कुछ अपभ्र श काव्य धाराओ का विकसित और पुष्ट रूप है। मध्यकाल के प्राप्त हिन्दी साहित्य के समस्त रूपो का प्रारभ वास्तव मे कई सौ वर्ष पूर्व अपभ्र श के कवियो ने किया था यही दिखाना इस अध्ययन का उद्देश्य है। 'प्रभाव' से लेखक का यह तात्पर्य कदापि नही है कि किसी विशेप कवि ने सीधे अपभ्र श की किसी रचना को पढकर अपनी कृति की रचना की, अथवा कोई विशेप अपभ्र श काव्य धारा जैसी की तैसी हिन्दी मे अपना ली गई है। वास्तव मे अपभ्र श के विविध काव्य रूपो मे से कुछ का सबध सीधा जनता से था और समयानुसार उस सबध को स्थिर रखने के लिए उन्ही काव्य रूपो मे केवल परिवर्तित भापा का प्रयोग होने लगा जिसे हिन्दी काव्य धारा कहा जा सकता है। भावधारा के लिए मध्ययुगीन अनेक हिन्दी कवियो ने सस्कृत साहित्य की ओर देखा है किन्तु काव्य के बाह्य समस्त रूपो के लिए वे अपभ्र श की ओर झुके हैं। आगे के पृष्ठो मे अपभ्र श और हिन्दी काव्य की इन्ही सामान्य विशेपताओ की ओर सकेत किया गया है। अपभ्र श

---

१. दे० आगे इसी अध्याय मे।

साहित्य की ओर खोज तथा अध्ययन करने पर हिन्दी काव्यधाराओ की पूर्ववर्ती समस्त लुप्त कड़ियो का उद्‌घाटन किया जा सकेगा ऐसा लेखक का दृढ विश्वास है। जिस रूप और मात्रा मे अभी अपभ्र श साहित्य मिल सका है उसके आधार पर भी हिन्दी काव्य की कई धाराओ के प्रारभ को कम से कम आठवी शती ईस्वी तक तो ले ही जाया जा सकता है।

उत्तर मध्यकालीन तक के हिन्दी काव्य के रूपो की प्रमुख धाराएँ निम्न हो सकती हैं

१. प्रबन्धात्मक रूप

१. चारण काव्य : रासो या रासक नामक रचनाएँ तथा (ऐहिकता मूलक) राजाओ की प्रशसा मे लिखे गये चरित काव्य।

२. धार्मिक साहित्यिक चरित काव्य—रामचरित मानस आदि। धार्मिक साहित्यिक शिथिल प्रबन्धात्मकता वाले काव्य—सूरसागर आदि।

३. आध्यात्मिक झलक लिए प्रेमकथाएं—पद्मावत आदि।

४. ऐहिकतामूल प्रेमकथाए—ढोलामारूरा दूहा आदि। तथा

५. साहित्यिक प्रबन्धकाव्य—रामचन्द्रिका।

२. मुक्तकरूप

१. विषय-प्रधान मुक्तक—पदशैली मे गोरख कबीर आदि के पद्य। विषय प्रधान मुक्तक, दोहाशैली—बिहारी आदि के दोहे तथा विविध छदबद्ध रीतिकाल के सवैया आदि।

२ उपदेश, नीति, शृगार, सुभाषितादि से युक्त मुक्तक।

३. गीति काव्य—विद्यापति, सूर, मीरा आदि के विषयि प्रधान गीति।

मध्ययुग के हिन्दी साहित्य मे दृश्य काव्य का कोई भी रूप नही मिलता, क्योकि अपभ्र श साहित्य मे यह धारा कभी नही थी। इस अध्याय मे इन विभिन्न काव्य रूपो पर अपभ्र श साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है।

चारण साहित्य—चारणो का उल्लेख ब्राह्मण धर्म के प्राचीन पुराणादि ग्रथो तथा जैन पुराणो में देवताओ तथा ऋषियो के साथ मिलता है।[1] कही कही

---

१. वाल्मीकि रामायण में अनेक बार चारणो का उल्लेख मिलता है, बाल-काड १७.९, २३, ४५.४५, ४८.३३ इत्यादि। महाभारत, आदिपर्व १२६।

उनको ईश्वर की स्तुति गाते हुए चित्रित किया गया है। मध्ययुग के राज यश या युद्धो गायकमे वीरो का उत्साह बढाने वाली राजस्थान की चारणजाति तथा उस की उत्तराधिकारिणी वर्तमान चारण जातियो का ऐतिहासिक सबध पुराणो के देवताओ और ऋषियो से तो स्थापित नही किया जा सकता किन्तु जहाँ तक यश गाने का सबध है दोनो मे समान प्रवृत्तियाँ ढूढ निकाली जा सकती है। एक ईश्वर या उसके भक्तो का यश गाते थे तो दूसरे वीरो का, और आश्रयदाताओ का। जो हो, बहुत प्राचीन समयसे राजसभाओमे चारण भाट रहते थे और उनका स्थान बहुत सम्मान का था।[1] काव्य रचना मे चारण भाट निपुण और अभ्यस्त होते थे और कुशल तथा कला मर्मज्ञ होते थे। प्रस्तुत अध्ययन मे केवल चारण जाति विशेष द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य को ही नही लिया गया है किन्तु चारण परम्परा मे आने वाले हिन्दी साहित्य को चारण साहित्य के अन्तर्गत माना गया है और उसकी भी कुछ प्रमुख कृतियोको ही स्थान दिया गयाहै। राजाओ, आश्रयदाताओ, प्रसिद्ध वीर पुरुषोतथा जनसमूह को प्रभावितकरने वाले युद्धया घटना से सबधित कृतियो को इस काव्य रूप के अन्तर्गत लिया गया है। तात्पर्य यह है कि केवल सुविधा के लिए इसनाम काप्रयोग किया गया है, यो लेखक 'रासकपरपरा' अच्छा नाम समझता है।

हिन्दी के व्यापक क्षेत्र को ध्यान मे रखते हुए चारण साहित्य को सुविधा की दृष्टि से दो वर्गो मे रखा जा सकता है। एक वर्ग मे ब्रज भाषा (पिंगल) प्रधान रचनाएँ रखी जा सकती है और दूसरे मे डिंगल भाषा प्रधान रचनाएँ। गुजराती रास परपरा को भी एक अलग वर्ग मे रखा जा सकता है और वह चारणीय साहित्य नही है। इस प्रकार निम्न रचनाएँ चारण साहित्य की सामने आती है। इन दोनो ही वर्गो की कृतियो मे विषय, शैली, छद आदि अनेक दृष्टियो से समानता मिलती है।

११, द्रोणपर्व ३७.१४ इत्यादि। मत्स्यपुराण २४८.३५-३६, ब्रह्मपुराण ३६.३६, वायुपुराण आदि अनेक पुराणो में चारणो के उल्लेख हुए हैं, उनको देव माना गया है। कहीं ऋषि और सिद्ध कहा गया है। जैन पुराणो में चारणो का मुनि के रूप मे उल्लेख मिलता है। दे० झवेरचंद मेघाणी . चारणों अने चारणी साहित्य, अहमदाबाद १९४३।

१. राजसभा मे सात अगो का होना आवश्यक माना जाता था

विद्वांसः कवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः।
इतिहास पुराणज्ञा सभा सप्तांग संयुता॥

१. प्रथम वर्ग की रचनाएँ [1] भाव धारा की दृष्टि से इन रचनाओ को दो वर्गों मे पुन विभाजित किया जा सकता है अजैन रचनाएँ और जैन रचनाएँ।
अ अजैन रचनाएँ

इन रचनाओ के दो रूप प्राप्त होते हैं। पहिला रूप अधिक स्वाभाविकता लिए हुए है। इस रूप में कथा को या वर्ण्य विपय को अत्यत सरल ढग से विना अधिक सजावट के प्रस्तुत किया गया है। काव्य भार से उसे वोझिल नही वनाया गया है। इस वर्ग की हिन्दी रचनाओ मे वीसलदेव रासो सर्वप्रमुख कृति है। दूसरे वर्ग की रचनाओ मे निम्न प्रतिनिधि कृतियो को रखा जा सकता है

१ पृथ्वीराज रासो[2] चदवरदाई कृत।
२ वीरसिंह देव चरित केशवदास, स० १६६४ वि०।
३ राजविलास मानकृत रचना स० १७३४-१७३७ वि०।
४ छत्रप्रकाश गोरेलाल कृत, रचना स० १७६४ वि०।
५ जगनामा श्रीधर कृत रचना स० १७६९ वि०।
६ सुजान चरित सूदन कृत रचना स० १८०२-१८१० वि०।
७ हिम्मत बहादुर विरदावली · पद्माकर कृत, र० स० १८५६ वि०।
८. हम्मीररासो जोधराज कृत रचना स० १८८५ वि०।
९ हम्मीरहठ चन्द्रशेखर कृत र० स० १९०२ वि०।
१० करहिया को रायसौ गुलाब कवि चतुर्वेदी, र० स० १८२४ वि०[3]।
११ भगवतरासा सदानदमिश्र र० स० १७९२ वि०[4]।

---

१. केवल उपलब्ध रचनाओ को ही यहाँ लिया गया है, जिनके केवल नाम मिलते हैं, कृतियाँ अप्राप्य हैं उनका विशेष उल्लेख आवश्यक नहीं समझा गया है।
२. हिन्दी साहित्य के इतिहासों मे 'खुमाण रासो' का उल्लेख भी मिलता है लेकिन वह इतनी प्राचीन रचना प्रतीत नहीं होती। दे० ना० प्र० पत्रिका भाग ४, सं० १९९६ मे अगरचंद नाहटा का लेख जिसमे उन्होंने इस कृति को बहुत पीछे की सिद्ध किया है। इसी प्रकार की अस्थिर रूप वाली कृति 'आल्हखड' है। इन कृतियो के विषय मे, इनका कोई रूप निश्चित न होने के कारण, यहाँ चर्चा नहीं की गई है।
३. ना० प्र० प० भाग १०, १९८६, पृ० २७१–२८९।
४. वही भाग ५, १९८१, पृ० १०३-३१।

१२ कायमरासा जान कवि कृत[1]।

फुटकर सग्रह शिवराज भूपण—भूपणकृत ।

ऊपर की सभी रचनाओ मे प्रवन्धात्मकता है। चरित नायक प्राय ऐतिहासिक वीर पुरुप हैं, उनके पराक्रम का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। नानाविध छदो का प्रयोग हुआ है। कुछ असमानताएँ भले हो लेकिन सब कृतियो के रूप प्राय एकसे ही हैं। वर्णन के ढग आदि प्रतिभा के अनुकूल भिन्न हैं, अन्यथा प्रकार मे अन्तर नही है।

आ. जैन रचनाएं :

हिन्दी (व्रज) मे अनेक रास नामक जैन कवियो की कृतियाँ मिलती है जिनमे काव्यत्व अपेक्षाकृत कम मिलता है किन्तु काव्यरूप उपर्युक्त कृतियो मे बीसलदेव रासो आदि के समान है। अन्तर इतना है कि अनेक कवियो ने किसी राजा या योद्धा की वीरता को या यशगान को ही अपनी कृतियो का विषय बनाया है, जैन कवियो ने किसी धार्मिक व्यक्ति या व्रतादि की कथाओ को अपनी कृतियो मे प्रधानतया स्थान दिया है। काव्यसौन्दर्य को छोडकर काव्य परपरा को समझने के लिए इन कृतियो का भी महत्व है, इस प्रकार की कुछ कृतियो का यहाँ उल्लेख करना उचित होगा

जवूस्वामीरास की रचना धर्मसूरि ने स० १२६६ मे,[2] गोतमरासा की स० १४१२ मे उदयवत, श्वेताम्बर साधु, ने,[3] सघपति समरशाह के जीवन से सवधित 'समराशाह रास' की रचना अवदेव ने स० १३७१ मे की।[4] सार सिखामनरास स० १५४८, त्रेपनक्रियारास १६८४ वि०, अजनासुदरीरास तपागच्छीय महानदकृत स० १६६१, यशोधररास सोमकीर्तिकृत सं० १६००, श्रुतपचमीरास पृथ्वीपाल

---

१. राजस्थान भारती मे अगरचंद नाहटा का लेख जानकवि पर।

२. प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह, बड़ौदा १९२० पृ० ४१-४६। संपादको ने इस संग्रह मे संग्रहीत रचनाओ को प्राचीन गुजराती कहा है किन्तु कुछ के व्याकरण की रूपरेखा देखने से सुविधा के साथ इनको बीसलदेवरासो के साथ रखा जा सकता है। जैनो द्वारा रचित परिवर्तनयुगीन भाषा साहित्य में बहुत साम्य है। काव्य परंपरा की दृष्टि से तो यह एक ही धारा है।

३. दे० हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, कामता प्रसाद जैन, पृ० ६५।

४. प्रा० गू० का० सं० पृ० २७-३८।

कृत स० १६९२, सोलह कारण व्रत रास भी इसी प्रकार की रचनाएँ है।[1] तथा नेमिजिनेश्वररास की रचना स० १६१५ वि० कडवकवद्ध पश्चिमी हिन्दी में हुई है। श्रावकाचार रास की भट्टारक प्रतापकीर्ति ने स० १५७४ मे रचना की। विक्रम की सत्रहवी शती के पूर्वार्द्ध मे ब्रह्मचारी रायमल्ल ने कडवकवद्ध 'परदवण-रास' 'सीलसुदर्शनरास' तथा 'श्रीपाल रास' की रचना की। 'सम्यक्त्वरास' और 'यशोधररास' की रचना सत्रहवी शती मे जिनदास ने की। धर्म रासो की रचना स० १७२३ मे अचलकीर्ति ने की, इसके अतिरिक्त श्रीपति का रत्नपालरास स० १७३०, तथा आदिपुराणरास की प्रतियाँ भी मिलती हैं।[2]

इन समस्त जैन रास रचनाओ में एक विचित्र समानता है। सभी कृतियाँ आकार मे लघु हैं। इनमे से कुछ रचनाओ मे छदो की सख्या भी दी गई है। यथा, प्रद्युम्न रास मे इस प्रकार छद सख्या दी है —

हो कडवा एकसो अधिक पचाणू, हो रासरहस परदमन वखाणो
—प्रद्युम्न रास की हस्तलिखित प्रति से।

उपर्युक्त उद्धृत पक्ति के समान दो और पक्तियाँ मिलाकर एक कडवा प्रस्तुत कृति मे माना गया है। अन्य जैन रास कृतियो का आकार प्राय. इतना ही बडा है। इन जैन रास कृतियो मे किसी गभीर विषय या सिद्धान्त का विवेचन नही है और न युद्ध, रौद्र, वीभत्स के गभीर प्रसग ही हैं। शात, शृगार और त्यागपूर्ण उत्साह के प्रसग उनमे मिलते हैं। जो विपुल अपभ्र श जैन चरित काव्यो मे मिलते हैं उन्ही को सरल ढग से इन कृतियो मे प्रस्तुत किया है। सभी चरित पौराणिक है, या सभी रास कृतियो मे व्रत कथाएँ हैं ऐसी बात नही है। दानशील व्यक्तियो के चरित्रो को भी रास रचनाओ मे स्थान मिला है। समरागाह रास मे शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धारक समरागाह सेठ की दानवीरता का चित्रण है। इन समस्त जैन कृतियो की एक अन्य विशेषता है, छदों के प्रयोग की। चौपाई, दोहा, छप्पय के प्रयोग तो मिलते हैं। इनके अतिरिक्त देशी लोकप्रचलित गेय छदो का प्रयोग इन कृतियो मे अधिकता से हुआ है। जिस प्रकार प्राकृत और अपभ्र श मे रचना करके जैन कवियो ने अपने आपको लोकभाषा, जनरुचि के समीप रखा उसी प्रकार इन

१. हि० जै० सा० स० इ० क्रमश: पृ० ३५, ६७-६८, १३५, १०८, ११०, १३५, १३५, १४०।

२. लेखक इन समस्त कृतियो के अध्ययन के लिए आमेर शास्त्र भंडार जयपुर का कृतज्ञ है।

रास कृतियो मे देशी, ढाल, जकड़ी छंदों का प्रयोग करके लोकरुचि की ओर ध्यान दिया है।[1] काव्य रूप की दृष्टि से जैन रचनाओ की श्रेणी मे वीसलदेव रासो आता है। अन्य रास नामान्त कृतियाँ कृत्रिम साहित्यिक वातावरण से ओतप्रोत हैं।

डिंगल मे रचित इस प्रकार के काव्यरूपों के उदाहरण छन्द राउ जइतसीरउ[2] तथा वचनिका रतन सिंघ री[3] हैं। राणा रासो,[4] विजयपाल रासो[5] आदि कृतियाँ इस प्रकार के अन्य उदाहरण हो सकते हैं। पिंगल अजैन कृतियो और डिंगल की इन कृतियो मे असमानता की अपेक्षा समानताएँ अधिक हैं। दोनों ही वर्ग की कृतियो की रचना प्राय आश्रयदाता ऐतिहासिक पात्रो को आधार बनाकर हुई है, और उन्ही को केंद्र बनाकर और अन्य कथाएँ आई है। राजाओ के पूर्वजो की प्रशंसा आदि प्राय· एक सी शैली मे मिलती हैं। इन कृतियो मे एक ही प्रकार के छंदो का प्रयोग किया गया है। काव्य के शास्त्रीय पक्ष पर इनके रचयिता कवियो की दृष्टि निश्चित ही बराबर रही है।

तीसरे वर्ग की प्राचीन गुजराती रास रचनाओं का भी सक्षेप मे उल्लेख किया जा सकता है सबसे प्राचीन गुजराती रास कृति शालिभद्र सूरिकृत, स० १२४१ मे रचित, भरतेश्वर बाहुबलि रास[6] है। इसमे ऋषभ के पुत्र भरतेश्वर और बाहु-

---

१. आगे छंदो के अध्याय मे इसका विशेष विवेचन किया गया है।

२. बिब्लियोथेका इंडिया में डा० एल० पी० तेसीतोरी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित, कलकत्ता १९२०। कृति मे रचयिता चारण बिठू नगराजीत ने अपने आश्रयदाता बीकानेर के राव जैतसी की कामरान के ऊपर विजय का वर्णन और प्रशंसा की है। इसी विषय से संबंधित अन्य कृतियो की भी डिंगल में रचना हुई है। दे० वही भूमिका पृ० १० और आगे। छन्द राउ० का रचनाकाल सं० १५९८ के लगभग है।

३. डा० तेसीतोरी द्वारा संपादित, वि० ई० कलकत्ता १९१७। गद्य, पद्यमयी इस रचना मे जगमाल ने रतलाम के राजा रतनसिंह की उज्जैन के युद्ध में वीरतापूर्ण मृत्यु का यश गाया है। घटना सं० १७१५ की है।

४. दे० राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा पृ० ६५। कृति मे ऐतिहासिक तथ्यो का सहारा लिया गया है।

५. दे० वही पृ० ४१ करौली के राजा विजयपाल से संबंधित ऐतिहासिक आधार को लेकर कृति की रचना हुई है।

६. भारतीय विद्या भवन बंबई, १९९७ वि० संपा० मुनि जिनविजय।

वलि की पौराणिक कथा को सरल गुजराती मे वर्णित किया है। वस्तु, चौपई, चौपाई, रास, दोहा आदि छदो का कृति मे प्रयोग हुआ है। कुछ रास कृतियाँ प्राचीन-गुर्जर काव्य सग्रह मे सकलित की गई मिलती हैं। महेन्द्रसूरि के शिष्य धर्म द्वारा स० १२६६ मे रचित जबूस्वामीरास[1] का पीछे सकेत किया गया है। कृति मे जबू की चरित्रविषयक दृढता की परीक्षा का चित्रण है। प्रभव चोर अनेक प्रकार के तर्क देकर जबू के हृदय मे ससार के प्रति अनुराग उत्पन्न कराना चाहता था किन्तु वह स्वय प्रभावित होकर विरक्त हो जाता है। लोक प्रचलित[2] छदो का कृति मे प्रयोग हुआ है। दूसरी लघु कृति स० १२८८ मे रचित विजयसेनसूरि रचित रवंतगिरिरासु[3] है जिसमे रेवत पर्वत की प्रशसा की गई है क्योकि वहाँ जिनेश्वर का मदिर है। कृति चार कडवको मे विभक्त है। दोहे के अतिरिक्त अन्य छद देशी हैं। सप्तक्षेत्रि रासु[4] १३२७ वि० किसी अज्ञात कवि की रचना है, उसमे १२ व्रत और सात क्षेत्रो का साम्प्रदायिक दृष्टि से वर्णन है। द्विपदी, चौपाई, रोला आदि छदो के प्रयोग हुए है। गुजराती मे १८वी शती तक रास कृतियो की रचना होती रही और इस प्रकार गुजराती मे यह धारा अविच्छिन्न रूप से मिलती है।[5] फागु, बारहमासा, चर्चरी तथा रास रचनाएँ विषय, आकार, शैली आदि की दृष्टि से एक ही वर्ग मे रखी जा सकती है। धार्मिक उपदेश अपेक्षाकृत रास रचनाओ मे अधिक स्पष्ट रहता है। इन रास रचनाओ मे छदो के प्रयोगो मे बडी प्रगति मिलती है। जैन हिन्दी और गुजराती रास रचनाएँ इस दृष्टि से और भावधारा की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत मिलती हैं। देशी, ढाल, ठवणि, भास, त्रोटक, दूहर, छप्पय

---

१. कृति का नाम 'जंबूसामिचरिय' है, किन्तु अन्त में जंबूस्वामिरास' मिलता है। दे० प्रा० गु० का० सं० पृ० ४६।

२. भास, ठवणि छंदो के शीर्षक हैं। यह छंद छंदशास्त्र के ग्रंथो मे नहीं मिलते। दे० आगे छंदो का अध्याय।

३. वही, पृ० १ और आगे।

४ प्रा० गु० काव्य मे कछूलीरास, पेथडरास आदि और रास हैं। अन्य अनेक रास रचनायें निम्न कृतियों में संग्रहीत हैं। ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ४, भावनगर, श्री जैन रास संग्रह भाग प्रथम, अहमदाबाद, १९३०। हिन्दी गुजराती मिश्रित कुछ रास कृतिया ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह मे भी संग्रहीत हैं कलकत्ता १९९४ वि०। और भी दे० मो० द० देसाई, जैन गूर्जर कवियो भाग १-२, बंबई, १९२६, १९३१ ई०।

इत्यादि छद इन रचनाओ के परिचित छद है। सभी कृतियाँ एक प्रकार के खड काव्य है। किसी व्यक्ति का पूरा चरित्र इन रचनाओ मे वर्णित नही मिलता है अपितु जीवन का कोई एक विशेष आकर्षक पक्ष ही रास रचनाओ के लिए चुना जाता है।

अजैन हिन्दी रास तथा तत्तुल्य अन्य वीर चरितात्मक रचनाओ और जैन रास रचनाओ मे बहुत बडी असमानता है उनकी विभिन्न रूपरेखा ओ की। प्रथम मे से करहिया को रायसो तथा भगवत रायसा आदि कुछ कृतियो को छोडकर सब मे कथा नायको की पूर्ण कथा कही गई है। लबी लबी वर्णन सूचियाँ मिलती है, भाषा का बनावटी रूप मिलता है[1] और प्राय छदाशास्त्रियो द्वारा अनुमोदित छदो के प्रयोग मिलते हैं। प्रबन्धात्मकता लाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। बीसलदेव रासो इन रचनाओ से मेल न खाकर जैन रास रचनाओ के समान है। प्रेम का कोमल प्रसग उसमे मिलता है, सरल प्रयासहीन भाषाशैली और देशी छदो का प्रयोग हुआ है।

रास नामक काव्यरूप के उपलब्ध इतिहास पर यहाँ सक्षेप मे विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। रास का सबसे प्राचीन निश्चित उल्लेख बाण (वि० आठवी शती) ने हर्ष चरित मे किया है। बाण के उल्लेखो से रासक के मडलाकार नृत्त तथा अश्लील पदो का गान होने की सूचना मिलती है।[2] इसी प्रकार का एक उल्लेख उद्योतनसूरि रचित कुवलयमालाकथा (८वी शती ई०) मे भी मिलता है जिसमे रास के नृत्त से सबधित होने का सकेत किया गया है, जिसमे स्त्रियाँ भी रहती थी।[3] जैन कवि वीर ने अपनी अपभ्र शकृति जबूस्वामीचरित (रचना काल

१. चारणो की भाषा आदि सीखने का अभ्यास करना पडता था इसी कारण अठारहवीं शती के कवियो की कृतियों में भी भाषा प्राचीन सी दिखती है। दे० छद राउजइतसीरउ, भूमिका पृ० १२। तथा सुजान चरित आदि कृतियो की भाषा देखी जा सकती है, जानबूझ कर प्राचीनता का आवरण पहनाया है।

२. सावर्त इव रासकमंडले : पृ० १३०, तथा कर्णामृतान्यश्लीलरासकपदानि, पृ० १३२, निर्णयसागर् १९३७ ई०।

३. जहातेण केवलिणा अरण्णं पएसिऊण पंच चोरसयाइं रासणच्चणच्छलेन ..
रासयम्मि जइलब्भइ जुअती सत्थउ।
चच्चरीए संबोहियाइं : अप० का० त्रयी की भूमिका मे उद्धृत।

स० १०७६ वि०) मे रासक के गेय काव्य रचना होने का उल्लेख किया है। चर्चरी और रास दोनो गाए जाते थे।[1] अवादेवीरास नामक रचना का जिन सेवको द्वारा नृत्त किया जाता था।[3] भारतेश्वर वाहुवलि रास तथा वीसलदेव रासो मे उन रचनाओ के नृत्तनाट्य होने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है, भारतेश्वर वाहुवलि रास मे रास छद मे कृति की रचना करने का उल्लेख हुआ है जिसे जनमन को आनद देने वाला कहा गया है।[2] और वीसल देव रासो मे तो कृति को नृत्त गीत मे अभिनय करने के लिए स्पष्ट निर्देशन भी दिए है। कदाचित् अजैन होने के कारण लेखक इस प्रकार की शृगारपरक ऐहिकता मूलक रचना करने के लिए अधिक मुक्त था। राजमती और वीसलदेव की इस मनोरम सुखान्त प्रेमकथा को कवि ने वार-वार रस से पूर्ण कहा है,[3] नृत्त करके रचना को रसास्वादन के योग्य वनाने के लिए कवि का निर्देश इस प्रकार है

> गावणहार माडइ और गाई रास कहु यह वंसली वाई।
> ताल कई समचइ घूंघरी ....
> माहिली मांडली छीदा होइ, वारली मांडली सांघणा।
> रास प्रगास ईणी विध होइ[4]।
>
> वीसल० १. ११

'गानेवाला गावे और सव ठीक रखे, वाँसुरी वजाकर रास करना चाहिये, घुघरु ताल सम के अनुसार वजना चाहिये, अ दर का मडल सघन हो न, वाहर की मडली सघन हो। इस प्रकार रास का प्रकाश होता है।' नृत्त के अनुकूल वीसल-देव रासो का रूप सरल, सरस और लघु है, एक वैठक मे ही पूरे रास का प्रदर्शन समाप्त हो जाता होगा इसीसे आकार की लघुता पर रचयिता ध्यान देते होगे।

---

१. चंचरिय वंधि विरइउ सरसु, गाइज्जइ सतिउ तारु जसु।
   नच्चिज्जइ जिणपयसेवर्याहि, किउ रासउ अंवादेवर्याहि।
   संधि १ जवूस्वामिचरिउ की हस्तलिखित प्रति से।

२. हुं हिव पभणिसु रासह छंदिहिं, तं जनमनहर मन आणादिहिं, भा० रा० पद्य ३।
   पद्य ३। तथा कीयउ ए तीणि चरितु, भरहन रेसर राउ रास छंदि ए, वही, पद्य २०२।

३. यथा नाल्ह रसायण रसभरिगाई, १.३ आदि।

४. और भी मंडली के उल्लेख मिलते हैं १.६, १.८ इत्यादि।

अन्य रास कृतियो मे भी ऐसे उल्लेख मिलते है[1] जिनके आधार पर यह पर्याप्त दृढता के साथ कहा जा सकता है कि प्रारभ में रास-काव्य-कृतियो की रचना नृत्त और गान को ध्यान में रख कर की जाती थी। जैन कवियो द्वारा रचित अनेक रास कृतियो में बहुत मुक्त और हल्का वातावरण मिलता है केवल उसे किसी धार्मिक व्यक्ति या पर्व से सबधित कर दिया गया है और इसके सहारे जगत् के सरस पक्ष को ग्रहण किया है। वीसलदेव रासो के रचयिता के सामने ऐसा कोई धार्मिक प्रतिबन्ध नही था अत उसमे रचयिता को धार्मिक दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता ही नही पडी।

यहाँ रासक के सबध मे नाट्य सगीत, छद समीक्षाशास्त्रियो की भी साक्ष्य को देख लेना चाहिए। रूपको के अतिरिक्त उपरूपको का भी अस्तित्व बहुत पहिले से था, किन्तु नाट्याचार्यों के एक वर्ग ने उनका शास्त्र मे उल्लेख नही किया। नृत्यप्रधान इन उपरूपको का धनजय (१० वी शती ई०) ने भी कदाचित् जान-बूझ कर उल्लेख नही किया होगा। अन्य अनेक लेखको को, जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होगा, रासक के अस्तित्व का पता था किन्तु नाट्य समीक्षको को पता न हो यह आश्चर्य की बात है। सबसे पहिले अभिनवगुप्त ने अनेक उपरूपको के अस्तित्व की सूचना दी है। उन्होने किसी प्राचीन-आचार्य-परपरा से उपरूपक सबधी सूचना को ग्रहण किया है जैसा कि उनके 'तदुक्त चिरन्तनै.' शब्दो से प्रकट होता है। अभिनवगुप्त (१००० ई०) ने भरत के नाट्यशास्त्र की टीका में किसी प्राचीन आचार्य को उद्धृत करते हुए डोम्बिका, उद्धत, मसृण,

---

१. 'सप्तक्षेत्रिरासु मे तालारस, लकुटारस (तालरास, लकुटरास) का उल्लेख है, प्रा० गु० का० सं० पृ० ५२, तथा आपणा कवियो पृ० १९४ तथा पेथड रास में जिन मन्दिर मे 'तालमेल' में रास 'रमण' करने का उल्लेख है। रास रमेवउ जिणभुवणि तालमेल ठवि पाउ। वही एपेंडिक्स, पृ० २४। इस रास के अन्तिम छंदो मे नृत्य और गीत के उल्लेख है और छंद की लय आदि गेय हैं, वही पृ० २९-३०।
रेवंतगिरिरासु (१२८८ सं०) मे भी 'रंगिहि ए रमइ जो रासु' कहा है, वही पृ० ७.२०।
लक्ष्मणगणि (११४३ ई०) ने 'केवि उत्तालतालाउलं रासयं'—कुछ ऊंची तालो-तालियो से आकुल रासक है—कहा है। आपणा कविओ, के० का० शास्त्री, अहमदाबाद, पृ० १०४२ पृ० १४७।

प्रेरण, रामाक्रीडक, रासक, हल्लीसक आदि नृत्यभेदो का उल्लेख तथा लक्षण दिए हैं। इनमे से हल्लीसक और रासक के लक्षण इस प्रकार हैं . मंडलाकार नृत्त को हल्लीसक कहते हैं जिसमें एक ही नेता होता है जिस प्रकार गोपियों मे कृष्ण, और रासक में चित्र, ताल, लय से युक्त अनेक नर्तक नर्तकियाँ रहती हैं, जिनकी सख्या ६४ तक हो सकती है। इसके मसृण और उद्धत दो प्रकार होते हैं ?[1] आगे रासक और नाट्यरासक[2] दो भेदो का उल्लेख मिलता है और रासक के अतर्गत चर्चरी आदि को भी रखा गया है[3]। सभी इस बात में एक मत है कि यह नृत्यप्रधान उपरूपक अनेक नर्तक नर्तकियो की सहायता से अभिनीत होता था। अभिनवगुप्त के उद्धरण के अनुसार उसके विषय के अनुसार ही भेद हो सकते थे, एक मसृण जिसमें सुकुमार विषयो शृगारादि रसो से युक्त विषयों के समावेश की कल्पना की जा सकती है और दूसरा उद्धत (कठोर) जिसमें वीर-रसात्मक विषय रहते होगे। बाण के उल्लेख में रासक के मंडलाकार नृत्य होने की सूचना पीछे देख चुके है। इनके आधार पर दो प्रकार की रासक रचनाओ की सहज कल्पना की जा सकती है एक कोमल विषयो से सबधित और दूसरी कठोर विषयो से सबधित रचनाओ की। फलस्वरूप वीररसात्मक और शृगारात्मक या शांतभाव प्रधान धाराएँ मिलती हैं।

सगीत शास्त्र की कृतियो में से सगीत रत्नाकर (१२०० ई०) में एक प्रकार के नृत्य को रासक कहा है,[4] छदशास्त्र की कृतियो में, अपभ्रंश के अनेक मात्रिक छदो का नाम रास, रासक, रासावलय मिलता है[5]। और इनमें से कुछ छदो

---

१. नाट्यशास्त्र, बड़ौदा सस्करण :

> मंडलेन तु यन्नृत्तं हल्लीसकमितिस्मृतम्।
> एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां यथा हरि.॥
> अनेकनर्तकी योज्यं चित्रताललयान्वितम्।
> आचतुष्षष्टियुगलाद्रासकं मसृणोद्धतम्॥ —पृ० १८३।

२. भोज (शृंगार प्रकाश), शारदातनय (भाव प्रकाशन) और विश्वनाथ ने इन भेदों का उल्लेख किया है।

३. दे० भावप्रकाशन पृ० २६४.१०।

४. आपणा कविओ पृ० १४७।

५. समचतुष्पदी—कुसुम रासक, छंदोनुशासन ५.१५, विभ्रम रासक, छंदो० ५.१४, दुर्दुर रासक, वही, ५.१०, आमोद रासक, वही, ५.११, रासक,

का रासक कृतियो मे प्रयोग भी हुआ है[1] । यह सभी समचतुष्पदी या अर्धसम-चतुष्पदी वर्ग के छद है । इन छदो के जो उदाहरण छदशास्त्रियो ने दिए हैं उनमें से कुछ में कृष्ण और गोपियो की रास क्रीडा के सकेत है । इन उल्लेखो से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि रासक रचनाएँ रासक छदवद्ध होती होगी, जैसा कि 'भारतेश्वर वाहुवलि रास' जैसी कुछ कृतियो में सकेत भी किए गए हैं । इन छदो मे से बहुत से लोक में पर्याप्त प्रचलित रहे होगे जैसा कि छदग्रथो में प्राप्त कुछ छदो के नामो से प्रतीत होता है ।[2] पूर्वी वर्ग के प्राकृत वैयाकरण क्रमदीश्वर ने रासक और नागर का सवध वताया है । एकसूत्र मे उन्होने कहा है 'शेषो नागरे रासकादौ' । नागर अपभ्र श मे रासको की रचना होती थी—इतनी सूचना क्रमदीश्वर के इस कथन से मिलती है ।[3] यह काफी महत्वपूर्ण है । नागर अपभ्र श का क्षेत्र पश्चिमी भारत था और वही रासको की रचना का प्राधान्य रहा ।

उपर्युक्त विवेचन से रासो परपरा पर पर्याप्त प्रकाश पडता है । लोक मे प्रचलित एक प्रकार के नृत्य सगीत को ही आधार मानकर इस सुदर काव्य धारा का विकास हुआ और इसके कई रूप हो गए । एक रूप परिष्कृत होकर अधिक पाडित्यपूर्ण होगया जो डिंगल और पिंगल की रचनाओ में विकसित हुआ जिसका विकास रास नृत्य के उद्धत रूप से हुआ कहा जा सकता है ।[4] दूसरे मसृण रूप

वही ५.३, तथा स्वयंभू छंद ८.५०, अवतंसक रासक, छंदो० ५.५, कुन्द रासक, वही, ५.६, कोकिल रासक, वही, ५.९, विद्रुम रासक, वही, ५.१२, मेघ रासक, वही ५.१३, रास, वृत्ति जातिसमुच्चय, ४.८५, रासावलय, छंदो० ५.२६, कविदर्पण २.२५, रासक, वृत्तिजाति० ३.२८ । अर्ध सम-चतुष्पदी रास, छंदो० ५.१६, ६.१९.९, स्वयंभू० ६.१४ । रासाकुल, छदकोश, २९, ज० यू० बं० भाग २, खंड ३ ।

१. सदेशरासक मे आवे से अधिक छंद रासक वर्ग के छंद हैं ।

२. छंदो० मे ६.१९.९ मे एक रास वर्ग के छंद का नाम रावणहस्त है । राजपूताने मे एक वाद्य यंत्र का नाम भी रावणहत्ता है जिसको बजाकर गाते हैं । उसी के साथ गाए जाने के कारण कदाचित् छंद का नाम रावण हस्तक पड़ा होगा ।

३. ले ग्रामेरिएं प्राक्रीतस्, पृ० १४३ ।

४. बुन्देलखंड मे यह रूप मौखिक परंपरा मे अभी भी वर्तमान है, पुराने वीरो के कथानको को लेकर अनेक राछड़ा (रासड़ा) अभी भी सुने जाते हैं ।

की कई शाखाए हुई । कुछ लोक मे प्रचलित हुई कुछ कोमल काव्य के रूप मे विकसित हुई[1] किन्तु लोकरुचि के अधिक समीप यही रूप रहा । अनेक जैन रास-कृतियाँ और वीसलदेव रासो इस धारा के उदाहरण कहे जा सकते हैं ।

इन दोनो काव्यरूपको का पूर्ववर्तीरूप अपभ्र श साहित्य मे मिल जाता है । रास नामक कुछ कृतियो के तो केवल उल्लेख मात्र मिलते हैं किन्तु इनके नामोल्लेखो से इतना अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि रास परपरा काफी पहिले काव्यक्षेत्र मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी । दो रचनाए उपदेशरसायनरास तथा सदेशरासक उपलब्ध है । प्रथम कृति में अत्यत सहज शैली में कुगुरु निंदा, सुगुरु स्तुति जैसे सरस प्रसग हैं । ८० पद्धडिका छद की इस कृति के टीकाकार ने इसके गेय रचना होने का सकेत किया है ।

अत्र पद्धडिकाबन्धे मात्रा षोडश पेदिगाः
अयं सर्वेषु रागेषु गीयते गीतिकोविदैः । उप० प्रारभ ।

'प्रत्येक पाद में सोलह मात्रा युक्त पद्धडिया छद-बद्ध यह रचना गीतकोविदो द्वारा किसी भी राग में गाई जा सकती है ।' दोहा छोड कर तुलसी की २० चौपाइयो के बराबर सपूर्ण कृति का आकार है । सपूर्ण कृति में एक ही छद का प्रयोग हुआ है । काव्य चमत्कार या शास्त्रीय पक्ष से दूर आडबरहीन शैली में कृति की रचना हुई है । नृत्तगेय पक्ष पर दृष्टि रहने के कारण इस प्रकार की कृतियो का आकार बडा हो ही नहीं सकता था । इस रास रूप का प्रतिनिधित्व सभी जैन रास रचनाए तथा वीसलदेवरासो करते है । वीसलदेव रासो का आकार, विषयनिरूपण शैली, सरल कथा पक्ष, एक छद का प्रयोग सभी उसे उपदेशरसायन रास की श्रेणी में रखने में सहायक सिद्ध होते है। जैन कवि की रचना होने के कारण उपदेश० शात रस प्रधान रचना है ।

सदेश रासक में भी वीसलदेव रासो की राजमती के समान एक वियुक्ता नायिका का सदेश है । दोनो ही कृतियो में एक सी ही सवेदना मूलक भावना है। सदेश रासक मे काव्य चमत्कार अधिक है, वीसलदेवरासो में सहज ढग मिलता

---

१. लोक मे इस धारा का प्रतिनिधि रूप रासलीला मे मिलता है । कृष्ण की रासक्रीड़ा के संबंध मे श्री मद्भागवत के रासपंचाध्यायी प्रसंग मे तथा विष्णुपुराण के हल्लीसक्रीडा प्रसंग मे उल्लेख हुए हैं । श्रीमद्भागवत् के टीकाकार श्रीधर ने परस्पर हाथ पकड कर स्त्रियो के साथ मंडली रूप मे नृत्य विनोद को रास कहा है ।

है। छंदो का वैभव संदेश रासक की दूसरी भिन्न विशेषता है और इस दृष्टि से उसे पृथ्वीराजरासो, सुजान चरित आदि रचनाओ का पूर्वरूप कह सकते हैं। सदेशरासक के एकतिहाई से अधिक भाग में रासा या रासक छंद का प्रयोग हुआ है। संदेशरासक में भी रासक रचनाओं के गाए जाने के उल्लेख मिलते हैं।[1] रास परपरा की कई विशेषताएँ इस कृति में इस प्रकार विद्यमान हैं।

अपभ्रंश-रास-परपरा की इन दो रचनाओ को[2] ध्यान मे रख कर हिंदी रास या चारण काव्यधारा के सबंध में निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अपभ्रंश रास रचनाओ की लोकप्रियता के फलस्वरूप हिंदी मे यह धारा प्रवाहित हुई। हिंदी के कुछ कवियो ने आगे चलकर आश्रयदाताओ से सबंधित चरित काव्यो को रास या रासो नाम दिया। जैसा कि ऊपर रास के सबध में विवेचन किया गया है, उनको ध्यान मे रखकर इस साहित्य की परीक्षा करने पर दो वर्ग स्पष्ट दिखते हैं। एक वर्ग है वास्तव में रास, रासक रचनाओ का जिसके अतर्गत नृत्य गेय रचनाए आवेगी। रास रचनाओ का प्रारभ बाणादि के उल्लेखो के आधार पर सातवी या आठवी शती मान सकते हैं। कौमुदी महोत्सव, मदनोत्सव जैसे अवसरों के समान ही अन्य अवसरो पर रास, चर्चरी, फागु आदि के भी गान जनता मे, राजसभाओ में होते होगे। रास और चर्चरी और फागु तीनो ही नामो से अपभ्रंश और प्राचीन गुजराती में रचनाएं मिलती है। हिन्दी मे वीसलदेव रासो इसी प्रकार की रचना है। इस प्रकार की रचनाओं का कबतक काल रहा उसका अनुमान अन्य रास नामान्त रचनाओ से लगाया जा सकता है। आगे चलकर रास ने दृश्य-नृत्य-काव्य के क्षेत्र से निकलकर श्रव्य काव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की। रास-नृत्य, चर्चरी-नृत्य के साथ जो काव्यात्मक रूप था उसका कदाचित कुछ परिवर्तित परिस्थितियो के कारण स्वरूप भुला दिया गया। फागु आदि का काव्यरस से हीन रूप चलता रहा। काव्य में भी इस परंपरा के वास्तविक स्वरूप को भूलकर कवि लोग राजाओं के चरितो की रचना करने लगे, यह चारण काव्य

---

१. दे० १.४, २.४३।

२. प्राकृत अपभ्रंश में आश्रयदाताओं की प्रशंसा में अन्य काव्यों की भी रचना हुई है। कीर्तिलता को इस प्रकार की रचनाओं का एक अन्तिम स्मारक माना जा सकता है। सब कुछ मिलाकर देखने से कुमारपाल प्रतिबोध जैसी रचनाओं मे भी कुछ कुछ ऐसा ही वातावरण मिल सकता है।

का दूसरा रूप है। पृथ्वीराज रासो,[1] राजविलास आदि समस्त रचनाएं एक प्रकार के प्रबधात्मक चरित काव्य हैं और रास परपरा में वे नही आते। आश्रयदाता राजाओ के वशो की प्रशसा, उनका यश, शौर्य वर्णन इन कृतियो के प्रधान विषय हैं, जबकि उपदेशरसायन रास, भरतेश्वर बाहुबलिरास, तथा रास कृतियो में यह सब कुछ नही मिलता। चारण काव्य के इस दूसरे काव्य रूप पर अपभ्रंश के चरित काव्यो का प्रभाव है। यह प्रभाव जहाँ तक काव्य के बाह्यरूप का प्रश्न है वही तक है। विषय और उसके निर्वाह की प्रेरणा इन काव्यो के रचयिताओ को बाहर से नही मिली। वह आश्रयदाता के व्यक्तित्व के प्रभावरूप प्राप्त हुई। छदो का प्रयोग आदि का इस रूप के लिए प्रयोग अपभ्रंश की कृतियो के रूप मे इन कवियो के सामने अवश्य था और उसे इन्होने अपनाया।

निष्कर्परूप मेंकहा जा सकता है कि चारण काव्य की दो धाराए मिलती हैं एक रास परपरा, दूसरी वीररसात्मक चरित काव्य परपरा। दोनों क ही आदि रूप अपभ्रंश में प्राप्त होते हैं। अत्यत मनोरम रास परपरा का प्रवाह साहित्यिक धारा के रूप में पद्रहवी शती के आगे रुक गया और चरित काव्य धारा अठारहवी शती तक अपनी एकरूपता को लिए हुए प्रवाहित होती रही। पिंगल और डिंगल इस धारा के दोनो ही रूपो में बहुत समानता रही। एक ही प्रकार के वर्णन, शैली, कृत्रिम भाषा और न्यूनाधिक रूप से एक ही प्रकार के छद इस धारा के कवियो के द्वारा व्यवहृत होते रहे। इतिहास और कल्पना का मिश्रण इन सभी कृतियो में मिलता है।

प्रेमाख्यानक काव्य रूप : हिन्दी साहित्य मे सबसे अधिक रूप विविधता प्रेमकथाओ में मिलती है। इन कथाओ के अनेक प्रकार और अनेक स्तर हैं। विभिन्न उद्देश्यो को सामने रख कर रचना करने के कारण प्रेमकथाओं के रूप भिन्न हो गए है। कुछ मे भावधारा की भिन्नता के कारण अतर आगया है। सभी प्रेमकथाओ में परिचित साहसपूर्ण प्रेमकथाओ को स्थान मिला है, कवियो

---

१. पृथ्वीराज रासो का जो प्रकाशित संस्करण है वह बहुत पीछे का है। पृथ्वीराज रासो की जिन हस्तलिखित प्रतियो के विवरण लेखक ने पढे हैं उनमें से किसी भी एक प्रति का आकार इतना बडा नहीं है। सब सामग्री की परीक्षा करने पर पृथ्वीराज रासो के मूलरूप के समीप पहुँचा जा सकता है जो बहुत छोटा होगा और तेरहवीं शती की रचना हो सकती है प्रस्तुत लेखक का ऐसा दृढ विश्वास है।

के अपने व्यक्तित्व के फलस्वरूप उनकी साहित्यिक उत्कृष्टता या न्यूनता मे अतर आ गया है। भावधारा की दृष्टि से इन प्रेम कथाओ के मोटे तौरपर दो वर्ग किए जा सकते हैं। एक वर्ग मे वे रचनाए रखी जा सकती है जिनमे कवियो ने जीवन के गभीर पक्ष का भी ध्यान रखा है और यत्र तत्र आध्यात्मिकता को जीवन का महत्व पूर्ण पक्ष समझकर स्थान दिया है। दूसरे वर्ग मे वे सभी रचनाए आती हैं जिनमे प्रेम की परीक्षा कराते हुए अत मे प्रेमी प्रेमिका के सुखपूर्ण सयोग का चित्रण किया गया है। पहिले वर्ग में जायसी की पद्मावती और उस वर्ग की अन्य कृतियाँ आती है। प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हे।

मृगावती—कुतुबन कृत[१]।

पद्मावती—मलिक मुहम्मद जायसी कृत[२], रचनाकाल १५२० ई०।

मधुमालती—मझन कृत[३], रचनाकाल १५५२ ई०।

चित्रावली—उसमान कृत[४], रचनाकाल १६१३ ई०।

इन्द्रावती—नूरमुहम्मदकृत[५], रचनाकाल १७४४ ई०।

पुहुपावती—दुखहरनदास कृत[६], रचनाकाल १६६९ ई०।

इत्यादि

उपर्युक्त सभी लेखको ने कल्पित कथाए ग्रहण की है, केवल जायसी ने अपनी कृति के उत्तरार्द्ध मे इतिहास के वृत्त को लाकर उपस्थित कर दिया है, कदाचित् प्रेमियो की परीक्षा के लिए जायसी ने कल्पित कथा के साथ ऐतिहासिक घटना को मिला दिया है। इन सभी कृतिकारो की अपेक्षा जायसी मे कवि प्रतिभा

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट, १९०० ई०, नोटिस ४।

२. सपा० रामचन्द्र शुक्ल, प्रयाग, १९३५ ई०। एक दूसरा संस्करण ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी ने तैयार किया था, अभी हाल ही मे डा० लक्ष्मीधरने अंग्रेजी अनुवाद सहित पद्मावती का संपादन किया है।

३. हस्तलिखित प्रति का विद्वानो ने उल्लेख किया है। कृति का अध्ययन अभी तक सभव नहीं हो सका है। दे० चित्रावली की भूमिका, पृ० ३-५, वर्मा जी ने मंझनकृत इस कृति का थोड़ा सा परिचय दिया है।

४. संपा० जगन्मोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९१२ ई०।

५. संपा० श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०६ ई०।

६. कृति की सुंदर हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे है।

है और काव्य की दृष्टि से पद्मावती सर्वश्रेष्ठ है। प्रबन्धात्मकता भी उसमे अधिक है।

इन कृतियो के अतिरिक्त कुछ ऐसी प्रेमकथाएँ भी है जो वास्तव मे ऐहिकता-मूलक हैं जिनका उद्देश्य केवल एक प्रेमकथा कहना मात्र है किसी प्रकार की अन्य व्यजना या ध्वनि प्रस्तुत करना नही। वाह्य काव्य रूप की दृष्टि से पद्मावती के समान चतुर्भुजदास निगम कायस्थ कृत मधुमालती[1] है। केवल दोहा छद का ही जिनमें प्रयोग हुआ है ऐसी प्रेम कथाएं हैं गणपति कृत माधवानल कामकदला[2] और ढोला मारूरा दूहा[3]। इन कथाओ के अतिरिक्त अन्य अनेक पौराणिक और लौकिक प्रेम कथाए मिलती है,[4] जैसे सत्यवती कथा, उपा[5] अनिरुद्ध, नलदमयन्ती[6] कथा तथा पदमतिलक कृत सदैवच्छ चरित तथा सदैवच्छ सावलिंगा की चौपाई। भद्रसेन विरचति दोहावद्ध चदनमयलागरी की कथा।[7] इनमें से अनेक कथाए काल की सीमाओ का अतिक्रमण करती हुई रूप परिवर्तन के साथ अभी भी लोक मे प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ सुदैवच्छ (सदयवत्स) सावलिंगा की कथा को ले

१. हस्तलिखित प्रति के लिए लेखक डा० माता प्रसाद गुप्त और मुनि कान्ति-सागर जी का कृतज्ञ है।

२. संपा० एम० आर० मजूमदार, गायकवाड्स ओरिएंटल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा १९४२ ई०; कृति मे परिशिष्ट के रूप मे कवि आनन्दधर विरचित 'माधवानलाख्यानम्' वाचक कुशलाभ रचित' माधवानल कामकन्दला चउपई' और कवि दामोदर विरचित 'माधवानलकथा' उद्धृत की है। अंतिम दो में दूहा, सोरठा, वस्तु, चौपाई, गाहा छंदो के प्रयोग हुए हैं।

३. सपा० रामसिंह आदि, नागरी प्र० सभा, काशी, १९९१ वि०। परिशिष्ट में कथा के अन्य रूपान्तर भी दिए हैं।

४. हिन्दुस्तानी, भाग ७, १९३७ ई०।

५. भारयसाह तथा रामदास द्वारा लिखित। नददास कृत रूपमंजरी भी इसी प्रकार की कृति है।

६. जान कवि कृत तथा सूरदास लखनवीकृत।

७. आमेर शास्त्र भंडार जयपुर मे लेखक ने कृतियो की हस्तलिखित प्रतियां देखी थीं।

सकते है। नल और दमयन्ती की प्रेमकथा तथा सुदैवच्छ कथा[1] की लोकप्रियता का उल्लेख सदेशरासक में इस प्रकार किया गया है।

कह व ठाइ सुदयवच्छ कत्थ व नलचरिउ । २.४४

इसी प्रकार इन प्रेम कथाओ की लोकप्रियता के सबध मे जायसी ने पद्मावती[2] मे तथा बनारसीदास ने अर्द्धकथा[3] मे उल्लेख किये है। उपर्युक्त प्रेमकथाओ के रूपो पर सक्षेप में यहाँ विचार किया जा सकता है। पद्मावती, मधुमालती, मझनकृत, चित्रावली, पुहुपावती, हस जवाहिर, इद्रावती इत्यादि प्रेमकथाओ का रूप एक प्रकार का कहा जा सकता है। इन कृतियो में एक ही प्रकार की शैली का अनुगमन किया है। एक ही प्रधान कथा आदि से अत तक कही गई है। छदो का क्रम भी एक ही प्रकार का प्रधानत इन कृतियो मे मिलता है[4]। प्रेमी प्रेमिकाओ के एक दूसरे के प्रति प्रेम की दृढता की परीक्षाएँ भी एक ही प्रकार से ली गई है। चतुर्भुजदास कृत मधुमालती कथा का रूप दूसरे प्रकार का है। उसमे प्राकृत मे लीलावती कथा, करकडुचरिउ, पचतत्र की कथा शैली का अनुसरण किया है। प्रमुख कथा तो चलती ही रहती है उससे सबधित अनेक अवान्तर कथाएँ भी

---

१ सदयवत्स की कथा का एक रूपान्तर गुजराती मे 'सदयवत्स चरिउ' नाम से मिलता है जिसकी रचना स० १४६६ मे भीम ने की। कृति मे दोहा, पद्धडी, चौपाई, वस्तु, छप्पय, कुडलिया, मौक्तिकदाम आदि मात्रिक छंदो का प्रयोग हुआ है। शृंगार, वीर, अद्भुत रसो की प्रधानता है। दे० आपणा कविओ पृ० ३१९-३२२। आजकल भी लोक मे यह कथा 'सारंगा सदावृच्छ' नाम से प्रचलित है।

दुष्यत शकुतला, माधवानल कामकदला पद्मा० पृ० ९८, तथा विक्रम स्वप्नावती, मधूपाछ डा० माताप्रसाद गुप्त इसके स्थान पर 'सुदैवच्छ' पाठ ठीक बताते हैं। मुग्धावती, मृगावती, खंडावती, मधुमालती, प्रेमावती, उषानिरुद्ध प्रेम कथाओं के उल्लेख किए हैं। पद्मा० पृ० ११३-११४, कृति मे अन्य अनेक प्रेमकथाओ के यत्र तत्र उल्लेख मिलते है।

३. मधुमालती मिरगावती, पोथी दोइ उदार, पद्य ३३५, प्रेमी सस्करण बंबई १९४३।

४. दोहा चौपाई शैली का अनुगमन किया है। प्रति दोहे के बीच मे अर्द्धालियो की सख्या मे अन्तर है। कुछ कवियो ने ८ अर्द्धालियो का प्रयोग किया है कुछ ने ७ का।

कृति में कही गई है। माधवानल कामकदला तथा चदन मलयागिरी की कथा के रूपों में थोडी भिन्नता है। वे विशुद्ध प्रेम कथाए है। धार्मिक या आध्यात्मिक व्यजना उनमें बिल्कुल नही है। प्रथम में प्रेमकथा के अनुरूप ही प्रारभ में कामदेव की वदना है, सरस्वती, गणेश आदि की वदना पीछे की गई है, कृति का प्रारभ प्रेम के सर्वोच्च देवता, सुर, नर, ब्रह्मा मबको वश में करने वाले रतिरमण कामदेव के स्मरण मे हुआ है।

कुंअर कमला रति रमण, मयण महाभड नाम।
पंकजि पूजिय पय कमल, प्रथम जि करूं प्रणाम।

ढोला मारूरा दूहा मे किसी भी देवता की वदना नही मिलती।[1] बिना किसी भूमिका के अकस्मात् कृति का प्रारभ नरवर के राजा और पूगल के राजा के परिचय से होता है। कथा कहने का सीधा ढग अपनाया गया है। और ढोला और मारु (मारवणी) का बाल्यावस्था में ही विवाह हो जाता है। वयस्क होने पर मारु के हृदय मे ढोला के प्रति प्रेम जागृत होता है और कवि ने वियोगादि का वर्णन करके संयोग वर्णन किया है। बडे सरल ढग मे प्रेमियो के प्रेम की परीक्षा का भी कवि ने वर्णन किया है।[2]

इन सभी प्रेमकथात्मक कृतियो के रचयिताओ का प्रधान उद्देश्य रहा है कथा कहना -- जीवन के अन्य पक्ष प्रेमकथा के अंग होकर ही आए है। प्रेम की व्यजना को व्यापक बनाने के लिए नायको के चरित्रो को इन सभी कवियो ने साहस सम्पन्न चित्रित किया है। सभी नायक परम सुदर और पुरुषार्थी हैं। नायिकाए भी नायको में दृढ रति रखने वाली है। इन प्रेमकथाओं में से कुछ में कवियो के विशेष दृष्टिकोण के कारण थोडी गभीर पारलौकिक सत्ता की व्यजना भी मिलतीहै और कुछ विशुद्ध सरल प्रेमकथाएँ हैं। यह प्रेमकथाएँ किसी भी प्रकार प्रबध काव्य के अतर्गत महाकाव्यो की श्रेणी में नही रखी जा सकती हैं। प्रबन्धात्मकता, कथा प्रवाह इनमें मिलता है लेकिन जो वस्तु व्यापार की महानता

---

1. परिशिष्ट मे दिए हुए कृति के अन्य रूपान्तरों मे से कुछ के प्रारंभ मे सरस्वती वंदना मिलती है।
2. एक साप के काटने से रास्ते मे मारवणी की मृत्यु हो जाती है। लोग ढोला से और मारवणी स्त्री से विवाह करने के लिए कहते हैं किन्तु उसका प्रेम दृढ रहता है। एक योगी आकर मारवणी को पुन. जीवित कर देता है और दोनो प्रेमी प्रसन्न होते हैं। ढोला मारू० पद्य ६११ और आगे।

जटिलता और भव्यता, वर्णनो की उत्कृष्टता और फिर एक सुसवद्ध प्रबधपटुता महाकाव्यो के लिए अपेक्षित है वह इन प्रेमकथाओ मे नही प्राप्त होती। उत्सुकता के तत्त्व को साथ लिए प्रेमी और प्रेमिका की कथा प्रस्तुत करना इन कृतियो का प्रधान उद्देश्य है। प्रसगवश जहाँ तहाँ सुदर वर्णन और सवेदनात्मक संयोग वियोग के चित्र भी मिल जाते है। अन्य समस्त व्यापार इस व्यापक और कभी सकीर्ण प्रेम के ही अग होकर आए हैं। ये समस्त प्रेम-आख्यानक प्रधान कृतियाँ 'कथा साहित्य' के अतर्गत आवेगी।

यहाँ कथा के सबध में सक्षेप मे विवेचन किया जा सकता है। अपभ्रंश साहित्य मे इस प्रकार की प्रबन्धात्मक अनेक प्रेम कथाए मिलती हैं जिनको धर्म का आवरण पहना कर प्रस्तुत किया गया। जैन लेखको ने कथा के सबध में, काफी सतर्क उल्लेख किए है, वसुदेव हिंड़ी (छठी शती ई०) मे इस प्रकार की अनेक गद्यवद्ध कथाए मिलती है।[1] एक स्थान पर कथा (चरित) के सबध में विवेचन भी मिलता है[2] जिसमे कहा गया है कि कथा दो प्रकार की होती है चरिता (सत्य) और कल्पिता। इसमे चरिता चरित पर आधारित दो प्रकार की होती है स्त्री की और पुरुष की। धर्म, अर्थ और कामविषयक कार्यो मे दृष्ट, श्रुत और अनुभूत वस्तु चरिता कहलाती है। इसके विपरीत पहिले जिसका कुशल-पुरुषो के द्वारा उपदेश किया गया हो और फिर स्वमति से उसकी योजना की गई हो वह कल्पित है। पुरुष स्त्री तीन प्रकार के होते हैं उत्तम, मध्यम और निकृष्ट, उनके चरित भी तीन प्रकार के होते है, इस प्रकार अद्भुत, शृगार, हास्य रस से पूर्ण चरित और कल्पित आख्यान होते हैं।

---

१. भामह और दंडी के कथा और आख्यायिका के विवेचन के समान ही वसुदेव हिंडी का विवेचन प्राचीन है। भामह के समकालीन ही प्रस्तुत कृति का रचना काल होना चाहिए।

२. दुविहा कहा चरिया य कप्पिया य। तत्थ चरिया दुविहा इत्थीए पुरिसस्स वा, धम्मत्थ कामकज्जेसु दिट्ठं सुयमणुभूयं चरियं ति वुच्चति। जं पुण विवज्जासिय कुसलेहिं उवदेसियपुव्वं समतीए जुज्जमाणं कहिज्जइ तं कप्पियं, पुरिसा इत्थीओ य तिविहा ववुद्धसु उत्तिमा, मज्झिमा णिकिट्ठा य, तेसिंह चरियाणि वि तिव्विहाणि। ततो सो एवं वोत्तूण चरिय कप्पियाणि अक्खाणयाणि अब्भुयसिंगार हासरसबहुलाणि वण्णेति। वसु० दसमो लंभो, पृ० २०८-९।

दशवैकालिकनिर्युक्ति में भी कथाओ के सबध मे विस्तृत विवेचन मिलता है। कथाओ के भेदो की चर्चा करते हुए अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रित कथा भेदो की चर्चा की है और कहा है इनमें से एक एक के अनेक भेद होते हैं। कथा के अतिरिक्त विकथा की भी चर्चा की है जिसमें स्त्री, भक्त, राजा, और चोर आदि की कथा हो सकती है।[1] हरिभद्र (७५० ई०) ने समराइच्चकहा के प्रारंभ में कथा के सबध मे विस्तार से लिखा है। कथावस्तु के तीन भेद उन्होंने किए है, दिव्य, दिव्यामनुप और मानुप, दिव्य में केवल देवचरित वर्णित रहता है। दिव्यामानुप मे देव और मनुष्य दोनो का चरित्र वर्णित रहता है और मानुप में केवल मनुष्य का चरित्र वर्णित रहता है। कथावस्तु के आधार पर उन्होंने कथा के चार प्रकार माने हैं—अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और सकीर्ण कथा[2] और आगे हरिभद्र ने श्रोताओ के प्रकारो का भी उल्लेख किया है[3]। उद्योतन (७७९ ई०) ने कुवलयमाला कथा मे कथाओ का विवेचन करते हुए सकलकथा, खडकथा, उल्लावकथा, परिहासकथा, सकीर्णकथा भेदो का उल्लेख किया है और फिर अनेक उपभेदादि की चर्चा की है। सिद्धर्षि की उपमितिभवप्रपचाकथा,[4] कौतूहल कृत लीलावती कथा,[5] कथासरित्सागर,[6] काव्यानुशासन आदि कृतियो मे भी कथा के सबध में इस प्रकार के विवेचन मिलते हैं। वसुदेवहिडि, समराइच्च कहा, लीलावती कथा, इसी प्रकार के कथा ग्रथ हैं। अपभ्रश में इस प्रकार की कथाकृतियो मे भविष्यदत्त कथा, सुदर्शनचरित, उपमश्रीचरित, जिनदत्तचरिउ आदि कृतियाँ ली जा सकती हैं। सब मे दिव्य मानुप पात्र मिलते हैं। लीलावती कथा (प्राकृत) मे देव श्रेणी के पात्र मनुष्यो की सहायता करते हैं

१. धम्मो अत्थो कामो उपइस्सइ जत्थ सुत्त कलेसु। लोगे वेए समए सा उकहा मीसिया नामा, २१२।
   इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा चोर जणवय कहा य। नउ नट्टजल्ल मुट्ठिय कहा उ ऐसा भवे विकहा, २१३।
   इत्यादि दशवैकालिक निर्युक्ति, अर्नस्ट लायमन—जेड० डी० एम० जी० भाग ४६, पृ० ६५२-३।
२. समरा० पृ० २-४, याकोबी संस्करण।
३. उप० पृ० ३-६, याकोबी सस्करण, कलकत्ता १९१४।
४. लीला० पद्य ३५ आदि।
५. कथा० १.२.४७-४८।
६. कथा. १२. ४७-४८।

और मनुष्यो के समान ही प्रेमादि व्यापारो में रत रहते दिखते है। लीलावती कथा विशुद्ध प्रेम कथा है। अपभ्र श मे भविष्यदत्तकथा को उसके रचयिता ने कथा कहा है। कृति के अधिकाश में भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा की कथा है। दोनो के प्रेम की परीक्षा होती है। समुद्र में कष्ट सहकर भी अपने पति और प्रेमी भविष्यदत्त को वह नही भूलती। यक्ष मणिभद्र आकर भविष्यदत्त की सहायता करता है। लोक प्रचलित साहसपूर्ण प्रेम कथा को जैन कवि ने धार्मिक रूप दे दिया है। पद्मश्री चरित में पद्मश्री और समुद्रदत्त की प्रेमकथा है, जिसको पूर्वजन्म के कर्मो से सबधित कर धार्मिक रूप दिया गया है। अन्य बहुसख्यक अपभ्र श चरित काव्यो मे किसी न किसी रूप में प्रधान अश प्रेम कथात्मक ही रहता है, कृति को सद्परिणाम पर्यवसायी बनाने के लिए प्रधान पात्रो को धार्मिक प्रवृत्ति का चित्रित किया गया है और इस प्रकार कृतियो को धर्मकथा का रूप दे दिया गया है। इन कृतियो का भी कथा कहना प्रधान उद्देश्य प्रतीत होता है। प्रसगवश काव्यमय वर्णनादि अवश्य मिलते है, किन्तु पूर्ण काव्यत्व इन कृतियो मे नही मिलता।

बाह्यरूप, छदो की गठन, घटनाओ के आधार पर कृति का विभिन्न सधियो मे विभाजन इन कृतियो मे एक समान है। समस्त कृतियाँ कडवको में विभक्त मिलती हैं। कथा कहने के लिए इस शैली की लोकप्रियता का इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दी के अधिकतर कवियो ने अपनी कथा कृतियो में इसी शैली का प्रयोग किया है। और उन समस्त कथन प्रकारो को भी अपनाया है जिनके सकेत अपभ्र श कृतियो में मिलते है। जैनेतर पद्यबद्ध अपभ्र श कथा ग्रथ अभी तक उपलब्ध नही है। किन्तु जैन अपभ्र श चरितात्मक कृतियो के आधार पर उनके स्वरूप का भी अनुमान किया जा सकता है। निश्चय ही हिन्दी के प्रेमाख्यानक दोहाचौपाई वाले काव्यरूप का पूर्ववर्ती रूप अपभ्र श की यही कृतियाँ है। घत्ता के स्थान पर दोहा का प्रयोग करनेवाली अपभ्र श कृतियाँ अवश्य रही होगी किन्तु इस समय वे उपलब्ध नही है।[1] केवल दोहेवाला अपभ्रंश रूप भी पूर्णरूप मे इस समय उपलब्ध नही है किन्तु हेमचद्र द्वारा उद्धृत पद्यो में जो श्रृगार भावना मिलती है उसके आधार पर यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि प्रेमकथाओ के लिए अपभ्र श मे दोहा छद का भी प्रयोग होता था। माधवनल कामकदला और ढोला मारूरा दूहा वाले प्रेम कथा रूप के पूर्ववर्ती रूप की

१. कहीं-कहीं अपभ्रंश कृतियो मे घत्ता के स्थान पर दोहा भी प्रयुक्त हुआ मिलता है।

कल्पना हेमचद्र द्वारा सग्रहीत शृगारपरक दोहो में की जा सकती है। अनेक स्थलो पर इन पद्यो में ऐसे सकेत मिलते हैं।

ढोला सामला धण चंपा वण्णी
प्रा० व्या० सूत्र ३३०।

अथवा ढोल्ला मइं तुहुं वारिया मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु
वही, ३३०।

इसी प्रकार के अन्य पद्यो में किसी कल्पित ढोल्ला (ढोल्ला-दुल्हा-दुर्लभ) की कथा के सकेतो की कल्पना की जा सकती है।

इन सभी प्रेमकथाओ (अपभ्रंश औरहिन्दी) की कथाए कल्पित हैं। कही कही ऐतिहासिक पात्रो का समावेश कवियो ने कर दिया है किन्तु उसमें परपरा के अतिरिक्त ऐतिहासिकता ढूढना दुस्साहस मात्र प्रतीत होता है। प्रेमपरीक्षा के लिए जायसी ने अलाउद्दीन का वृत्त जोड दिया है, सभव है उसमे ऐतिहासिक सत्य हो किन्तु अन्य सभी नाम केवल कथा कहने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार अन्य प्रेमकथाओ में पात्रो और स्थानो के नाम मात्र ऐतिहासिक हो सकते हैं। घटनाए लोकप्रचलित या कल्पित हैं। ढोला मारू नाम भी ऐतिहासिक है किन्तु कथा का रूप कल्पित है। हिंदी प्रेमकथाओ के इन नानारूपो की झलक उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य में मिल जाती है।

अपभ्रंश चरित काव्यो का जैसा वाह्यरूप मिलता है उसी प्रकार का वाह्य-रूप हिन्दी में तुलसीदास के रामचरितमानस का मिलता है। अपभ्रंश में राम-चरित को लेकर स्वयभू की स्वतत्र कृति 'पउमचरिउ' मिलती है। पुष्पदन्त के महापुराण में भी रामायण की कथा मिलती है। ऐसे कोई निश्चित प्रमाण नही है जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि तुलसीदास को इस रामकथा साहित्य का पता था या नही। यह निश्चित है कि कडवकबद्ध अपभ्रंश साहित्य की शैली की किसी विकसित साहित्य धारा से उनका परिचय अवश्य था और चरित काव्यो के लिए उस शैली की महत्ता को उन्होने स्वीकार किया और रामचरित मानस मे उसे अपनाया। कुछ विद्वानो ने[1] स्वयभू के पउमचरिउ और रामचरित मानस मे कुछ समानताओ का उल्लेख किया है किन्तु वे समानताए बहुत ही ऊपरी हैं।[1]

१. राहुल सांकृत्यायन ने प्राचीन हिन्दी काव्य धारा की भूमिका मे ऐसे संकेत किए हैं, किताबमहल, इलाहाबाद।

स्वयभू की कृति के प्रारभ और रामचरितमानस के प्रारभ मे कुछ स्थल समान है। स्वयभू ने रामकथा की नदी से समानता की है—

रामकहाणइ एह कमागय ।
अक्खरयासजलोहमणोहर सुअलंकार सद्दमच्छोहर ।
दीहसमासपवाहावंकिय सक्कयपाययपुलिणालंकिय ।
देसीभासाउभयतडुज्जल कवि दुक्कर घणसद्दसिलायल ।
अत्थवहलकल्लोला णिट्ठिय आसासयसमतूहपरिट्ठिय ।
एह रामकहसरिसोहंती..................

'यह रामकथा नदी क्रमागत है। अक्षर समूह ही मनोहर जल समूह हे। अच्छे अलकार और शब्द मत्स्यादि है। दीर्घसमासादि वक्र प्रवाह है। सस्कृत-प्राकृत रूपी अलकृत पुलिन है। देशी भाषा दोनो उज्ज्वल तट है। कवि दुष्कर-सघन-शब्द-समूह शिलातल है। अर्थ बहुलता ही कल्लोल है। आश्वासक रूपी तीर्थों मे विभक्त यह रामकथा-सरिता शोभित है।'

आगे कवि ने बडे ही नम्रतापूर्ण शब्दो मे अपनी असमर्थता प्रकट की है

बुहयण सयंभु पइ विन्नवइ मइं सरिसउ अण्णु णत्थि कुकइ ।
वायरणु कयावि न जाणियउं न वि वित्ति सुत्तु वक्खाणियउं ।
ण उ पच्चाहारहो तत्तिकिय ण उ संधि हे उप्परि बुद्धिथिय ।
...पउमचरिउ १.३

'बुधजन ! स्वयभू आपसे विनती करता है 'मेरे समान अन्य कोई कुकवि नही है। व्याकरण मैं कदापि नही जानता और न वृत्ति सूत्र का ही वर्णन किया, न प्रत्याहार के तत्व का ज्ञान है और न सधि के ऊपर बुद्धि स्थिर हुई।'

कवि ने आगे दुर्जनो का स्मरण इस प्रकार किया है

छड्डहोतु सुहासियवयणाइं गामिल्लभासपरिहरणाइं ।
एहुसज्जणलोयहो किउ विणउ जंअबुहुपदरिसिउअप्पणउ ।
जइएम वि रूसइ को वि खलु तहो हत्थुत्थल्लिउ लेउछलु ।
घत्ता-पिसुणें किं अब्भत्थिएण जसु कोवि न रुच्चइ ।
किं छण चंदुमहागणेह । कंपंतुवि मुच्चइ ।
अवहत्थिवि खलयणु निरवसेसु... वही १.३.४।

'ग्रामीण भाषा से युक्त वचन युक्ति के कारण सुभाषित वचन हो जाते है। सज्जनो के विनय करता हूँ जो मैंने अपनेअबोध को प्रदर्शित किया है, यदि इस पर भी कोई खल रुष्ट होता है उसके हाथो को छल ही मिलेगा। पिशुन

की अभ्यर्थना करने से क्या लाभ जिसको कोई भी अच्छा नही लगता, महाग्रह से ग्रसित चद को क्या। वह मुक्त हो ही जाता है। समस्त खलजनो की अभ्यर्थना करके

तुलसीदास के रामचरित मानस मे भी रामकथा-सरोवर का रूपक,[1] उनका विनय प्रदर्शन और दुर्जनो का स्मरण ऐसे ही प्रसग हैं। सभव है कि अपभ्रंश की इस परपरा से उनका परिचय रहा हो। अपभ्रंश का पडित मडली मे आदर नही होता होगा इसी कारण प्राय प्रत्येक अपभ्रंश कवि अपनी कृति के प्रारभ मे इन निदक पडित-खलो का स्मरण करता मिलता है। यही स्थिति भाषा के कवियो की भी रही होगी अत उसी प्रकार के उद्गार हिन्दी के कवियो ने भी प्रकट किए हैं। या पीछे प्रथा के रूप मे इसका पालन होने लगा होगा। तुलसीदास के मानस तथा 'पउमचरिउ' मे प्राप्त होने वाली ये समानताएँ इसी कवि परपरा द्वारा आई कही जा सकती है। इन समानताओ के अतिरिक्त तुलसी की कृति मे प्राय छदो की रूपरेखा अपभ्रंश चरित्र काव्यो के समान ही है। उसका मूल स्रोत अपभ्रंश के इन चरित्र काव्यो को माना जा सकता है। और किसी प्रकार का प्रभाव जैन अपभ्रंश की कृतियो का पडा होगा नही कहा जा सकता। पद्धडिया-घत्ता शैली का ही परिवर्तित रूप चौपाई-दोहा शैली को कहा जा सकता है।[2]

हिन्दी मे विशुद्ध साहित्यिक महाकाव्य लिखने का प्रयास केशवदास की रामचद्रिका[3] मे मिलता है। इस प्रकार के प्रयास अपभ्रंश मे मिलते हैं जहाँ कवियो ने अनेक प्रकार के छदो का प्रयोग एक ही कृति मे किया है। नयनदि का सुदर्शनचरिउ और लाखू का जिनदत्त चरिउ इस प्रकार की दो रचनाएँ ली जा सकती हैं। २१२ कडवको (चौपाइयो) मे समाप्त सुदर्शनचरित मे सत्तर विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छदो का प्रयोग हुआ है।[4] इसी प्रकार जिनदत्तचरिउ मे ३० के लगभग विभिन्न

---

१. रामचरितमानस १.३७ सरोवर का रूपक, १.४०-४१ सरिता का रूपक विनय, वही १.९, १२-१४। दुर्जनों का स्मरण, वही १.४ ६।

२. घत्ता के स्थान पर कहीं कहीं अपभ्रंश कृतियो मे दोहा का भी प्रयोग मिलता है। दोहाकोष मे ऐसे स्थल मिलते हैं तथा लाखू के जिनदत्त चरित में भी ऐसे कतिपय स्थल मिलते हैं।

३. केशव कौमुदी दो भाग, संपा० लाला भगवानदीन, इलाहाबाद १९३१ ई०।

४. कुछ छंद निम्नलिखित हैं : पद्धडिया, विद्युल्लेखा, तोदणक, मदाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडत, रमणी, भुजंग प्रयात, प्रमाणिका, पादाकुलक, तोणाम

छंदों का प्रयोग हुआ है। रामचंद्रिका के रचयिता के सामने अवश्य ही विविध तुकान्त अपभ्रंश छंदों के प्रयोग से युक्त कुछ इस प्रकार की कृतियाँ रही होंगी। जहाँ तक इस विविध छंदात्मकता का प्रश्न है रामचंद्रिका को सुदर्शन चरित जैसी अपभ्रंश कृतियों का प्रतिरूप माना जा सकता है। दोनों कृतियों की शैलियों में कोई साम्य नहीं मिलता। कथा, प्रवाह, रचनाशैली के लिए केशवदास ने अपनी प्रतिभा या अन्य आधारों का सहारा लिया होगा। तुलसीदास की कवितावली में भी सुदर्शन चरित वाले रूप का अनुकरण किया गया है।

सूरदास की महत्वपूर्ण कृति सूरसागर में भी कथा का हल्का सा सूत्र मिलता है। पदों का रूप बौद्ध सिद्धों के 'गानों' में मिलता है। बौद्ध सिद्धों ने रागबद्ध पदों की रचना की है और उसी प्रकार के पद हिन्दी के कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं। किन्तु पदों के रूप में प्रबन्ध रचना का कोई भी उदाहरण अपभ्रंश साहित्य में नहीं मिलता। छंदों की दृष्टि से पदों के पूर्ववर्ती रूप की रूपरेखा उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य में मिल जाती है किन्तु सूरसागर में कथा कहने के लिए जिस ढंग से पदों का प्रयोग मिलता है वह अपभ्रंश साहित्य में अभी तक नहीं मिल सका है। संभव है पदों का स्फुट विषयों के लिए प्रयोग होता होगा किन्तु कृष्ण कथा के लिए उनका प्रयोग सूरदास आदि भक्तों का मौलिक प्रयोग या किसी अन्य अज्ञात धारा के प्रभावस्वरूप हो सकता है।

मुक्तक रूप : पद शैली

पदों का बाह्यरूप तो गोरखबानी[1], कबीर, विद्यापति, कृष्णभक्त कवियों,

---

रसारिणी, पद्धडिकाविषमपद, मालिनी, मत्तमातंग, दोधक, काम बाण, समाणिका, दुवई मदनविलास, मोटनक, मदन, मदनावतार, आनन्द, उपेन्द्र-वज्रा, उपजाति, मंजरी, खंडिता, त्रिभंगिका, चप्पई, मौक्तिकदाम, दुवई चंद्रलेखा, वसंत चवई, आरणाल, तोमर पुष्पमाल, हेला दुवई, मंदयारति, असरपुर सुन्दरी, कामबाण, चन्द्रलेखा, रतनमाल पद्धडिका, विषमपदपादा-कुलक, संवत्य, मागहणकुडिका, उर्वशी, कामलेखापद्धडिका, सालभंजिका, विलासिणी, दिनमणि, वसंतचवर, दोहा, सारीय, तुष्ठिका, चंडपाल, भ्रमर-पद, आवली, रयडा, पृथ्वी, णिस्सेणी, विलासिणी, पंचचामर, सोमराजी, रचिता इत्यादि।

१. गोरखबानी—संपादक डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, प्रयाग १९४२ ई०। गोरखनाथ का समय दसवीं शती विक्रम है किन्तु गोरखबानी में संग्रहीत

तुलसीदास, 'मीरा', आदि सभी मे प्राय एक समान ही है। विषय का विवेचन कुछ कवियो मे प्रधान है। गोरखवानी, कवीर, कृष्णभक्त कवियो मे से कुछ के पदो मे, तुलसीदास की विनयपत्रिका के बहुसख्यक पदो में विषय विवेचन की प्रधानता है। जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है गेय पदो का रूप बौद्ध सिद्धो के पदो मे मिलता है। सिद्धो के इन पदो मे गीति तत्व कम मिलता है, विषय के विवेचन का प्रयास अधिक है। भावधारा की दृष्टि से सिद्धो के पदो और गोरखवानी तथा कवीर के पदो मे वहुत साम्य है।[२] नाद, विन्दु, रवि, शशि आदि शब्दावली की समानता के अतिरिक्त जो खडन की प्रवृत्ति सिद्धो के दोहाकोष मे मिलती है वही कवीर की वाणियो मे भी प्राप्त होती है। चर्यागीतो के कुछ पदो मे गीतात्मकता की भी झलक मिलती है जहाँ सिद्धो ने परमसुख के अनुभव को व्यक्त किया है। यथा

चिअ कण्णहार सुनत मागे, चलिल कान्ह महासुह सांगे।
चर्या २१.

अथवा, नाना तरुवर मौलिल के गअणत लागेली डाली।
एकेली सवरी ए वन हिंडई कर्णकुंडल वज्र धारा।
चर्या० ३८.

जो हो हिन्दी के पद साहित्य के वाह्य रूप, सगीतात्मकता आदि के पूर्वरूप का आभास सिद्धो के इन चर्यागीतो मे मिल जाता है।

रचनाएं दशवीं शती की नहीं हो सकती। गोरखवानी की रचनाओं का रूप वहुत पीछे का प्रतीत होता है।

१.i संत कवीर, डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, १९४७। वीजक, रामनारायण लाल, इलाहावाद, १९२८।

ii विद्यापति पदावली, सपा० खगेन्द्रनाथ मित्र, कलकत्ता १९४५।

iii सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, तथा नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण। नंददास ग्रंथावली, इलाहावाद यूनीर्वसिटी।

iv विनयपत्रिका; गीताप्रेस संस्करण।

v मीरावाई की पदावली प्रयाग, १९९८ वि०।

२. दे० चर्यापद गीति १, ५, २७, ३५, गोरखवानी पृ० १५६ पद ५६, पृ० १५०, पद ५४, पृ० १३६, पद ४२ इत्यादि तथा संत कवीर पृ० २.२, पृ० ४५ पद ४२. १, पद ५२, पृ० १०८ पद १८ इत्यादि।

स्फुट पद्यो का हिन्दी मे एक दूसरा रूप दोहो के रूप मे मिलता है। दोहो का प्रयोग अनेक प्रकार के विपयो के लिए कवियो ने किया है, उपदेश, मत-विवेचन, खडन-मडन, शृगार, नीति इत्यादि विपयो को व्यक्त करने के लिए दोहो का प्रयोग हुआ है। सतो की साखियो मे दोहो का प्रयोग सिद्धान्त-विवेचन, उपदेश, तथा अन्य मतो के खडन के लिए हुआ है। तुलसीदास जैसे कवियो ने दोहो का प्रयोग भक्ति, उपदेश, सुभाषितादि के लिए किया है।[1] विहारी जैसे कवियो ने बडी ही सफलतापूर्वक दोहो का प्रयोग नीति, उपदेश, सुभापित और शृगार परक विषयो के लिए किया है। प्राकृत की गाथा सप्तशती और वज्जा लग्ग मे इन्ही विपयो से सम्बन्धित पद्य सग्रहीत है। गाथा सप्तशती और विहारी के अनेक पद्यो मे बहुत भावसाम्य है[3] और वह आकस्मिक नही हो सकता। सतो की साखियो मे जो धारा मिलती है उसका पूर्ववर्ती रूप योगीन्द्र, मुनि रामसिंह, देवसेन के पद्यो मे मिलता है।[4] हेमचद्र द्वारा उद्धृत अनेक पद्यो से विहारी के पद्यो की सरलता-पूर्वक समता की जा सकती है।[5]

सवैया और कवित्त प्राचीन अपभ्र श कृतियो मे नही मिलते है। अपभ्र श छद ग्रन्थो मे अवश्य मिलते है। स्फुट पद्यो की इस धारा का पूर्णरूप प्राप्त अपभ्र श साहित्य मे नही मिलता है। सभव है वह रूप रहा हो और अभी तक उस धारा की कृतियाँ न मिल सकी हो। पीछे हिन्दी साहित्य के प्रमुख काव्यरूपो की चर्चा की गई है उनमे प्राय सभी धाराओ के बाह्यरूपो के मूल अपभ्रंश साहित्य मे मिल जाते है। हिन्दी के चरित काव्यो, रासक रचनाओ, प्रेमाख्यानक कृतियो, स्फुट पदो, दोहा सभी के मूल आधार अपभ्र श मे प्राप्त हैं। अनेक रूपो मे व्यवहृत

---

१. दोहावली, गीताप्रेस संस्करण।

२. विहारी सतसई संपा० रामवृक्ष बेनीपुरी, लहेरियासराय। सतसई (सं० सप्तशती, प्रा० सत्तसई) अर्थात् सात सौ पद्यो के संग्रह की प्रथा, संभव है, गाथा सप्तशती से ही प्रारंभ हुई होगी। गाथा सप्तशती की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर प्राकृत से यह रूप संस्कृत मे ग्रहीत हुआ। और उसी से प्रभावित होकर हिन्दी में यह रूप आया।

३. दे० गाथा सत्तसई की भट्ट मथुरानाथ शास्त्री द्वारा लिखित भूमिका, निर्णयसागर प्रेस।

४. दे० पीछे अपभ्रंश का अध्याय—रहस्यवादी धारा।

५. दे० पीछे अपभ्रंश; ऐहिकतापरक अध्याय मे हेमचंद्र का प्रकरण।

भावधारा भी अपभ्र श साहित्य मे मिल जाती है। कुछ मे बाह्यरूप तो अपनाया गया है किन्तु वर्ण्य विषय अन्य श्रोतो से लिया गया है। जहाँ तक काव्य के विविध रूपो की मोटी रूपरेखाओ का प्रश्न है वे सब किसी न किसी रूप मे अपभ्र श मे भी मिलती हैं। इसके आधार पर यह आशा की जा सकती है कि अपभ्र श साहित्य का और अध्ययन करने पर यह रूपरेखाएँ और भी स्पष्ट हो सकेंगी।

२
रचनाशैली, छंदों पर प्रभाव

रचना शैली :

प्राकृत और अपभ्र श काव्य की रचना शैलियो मे अन्तर है। अपभ्र श चरित काव्यो की विभिन्न कृतिग्रो की रचनाशैली मे बहुत समानता मिलती है। साहित्यिक प्राकृत की कुछ कृतियो मे सस्कृत काव्यो की शैली का अनुकरण किया गया है जैसे सेतुवन्ध मे। किन्तु, गौडवध जैसी कृतियो मे शैली की मौलिकता भी मिलती है किन्तु उसका अनुकरण कदाचित किसी ने नही किया। हिंदी की कुछ काव्य धाराओ की रचनाशैली और जैन अपभ्र श के चरित काव्यो की रचनाशैली मे कुछ कुछ साम्य मिलता है। यह चरित काव्य जिन वदना से प्रारभ होते हैं और फिर सज्जन और दुर्जनो का स्मरण करता हुआ कवि अपनी नम्रता प्रकट करता है, किसी जैन धर्म मे प्रीति रखने वाले प्रसिद्ध पात्र के प्रश्न करने पर कथा प्रारभ होती है। कवि कथा का प्रारभ किसी देश के वर्णन से करता है, और फिर नगर राजा आदि के सुदर वर्णन प्रस्तुत करता है। किसी धार्मिक व्यक्ति का चरित्र प्रस्तुत करना कवि का प्रधान उद्देश्य रहता है इस कारण कथा कहता हुआ बीच बीच मे आने वाले स्थलो के सुन्दर वर्णन करता चलता है। पात्रो की सक्षिप्त या विस्तृत कथा के अनुरूप भूमिका, वर्णन भी विस्तृत या सक्षिप्त रहते हैं। पुष्पदन्त की दो कृतियो को लेकर इस विश्लेपण को स्पष्ट किया जा सकता है। उनका महापुराण एक महान् कृति है। महान् प्रयास के अनुकूल ही कवि की भूमिका भी वडी ही भव्य और विद्वतापूर्ण है। ऋषभदेव, सरस्वती की वदना करके कवि ने अपना परिचय दिया है और खल निन्दा की वार वार चर्चा की है और सज्जनो के समक्ष नम्रता प्रकट की है [1]

---

१. दुर्जनों के भय के कुछ उल्लेख रोचक है :
भणु किह करमि कहत्तणु ण लहमि कित्तणु जगुज्जि पिसुणसयसंकुलु। १.७
'कहो क्यों काव्य करूँ पिशुन संकुल जगत मे कीर्ति नहीं पा सकूगा।' और ऐसे प्रसंग हैं १.९ आदि।

एह्उ विणउ पयासिउसज्जणाहं मुहिं मसिकुंचउ कउ दुज्जणाहं । १.९
'सज्जनो के समक्ष यह विनय प्रकट की है, दुर्जनो के मुख काले हो ।'

आगे कवि ने मगधदेश तथा राजगृह की नैसर्गिक सरलता से युक्त काव्यमय सुन्दर विस्तृत वर्णन किये हैं ।[1] फिर श्रेणिक राज का वर्णन, जिन समागम आदि प्रसगो के पश्चात् कृति की कथा प्रारम होती है। इक्कीस कडवको मे कृति की भूमिका समाप्त हुई है। जसहर चरिउ मे भूमिका का विस्तार तीन कडवक है जिसमे मगलाचरण, देश वर्णन सक्षेप मे मिलता है। अपभ्र श काव्यो के प्रारम की यह शैली हिंदी के काव्यो मे भी मिलती है स्वयभू की कृति पउमचरिउ के प्रारम मे भी इसी प्रकार की भूमिका मिलती है । तुलसीदास ने रामचरित मानस की भूमिका ४३ चौपाइयो मे समाप्त की है ।[2] और उसमे पुष्पदन्त और स्वयभू की कृतियो के समान ही प्रसग है । जायसी ने इसी तरह अपनी कृति की भूमिका २४ चौपाइयो मे समाप्त की है जिसमे जायसी ने कुछ बातें नवीन भी दी हैं, किन्तु मगलाचरण, विनय और दुर्जनो का स्मरण अवश्य मिलता है ।[3] और फिर सिंहल द्वीप का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है जिसकी समता इसी प्रकार के जसहर चरित के प्रारंभिक वर्णन से की जा सकती है । चित्रावली मे यह भूमिका और भी विस्तृत है किन्तु भूमिका के पश्चात् कवि ने नेपाल के राजा की कथा प्रारभ कर दी है । इन्द्रावती मे यह भूमिका और भी सक्षिप्त है और देशादि के वर्णन भी नही हैं । जायसी ने देशादि तथा ऋतु आदि के जो वर्णन किए हैं उनकी शैली अपभ्र श के चरित काव्यो

---

१. कुछ पंक्तियाँ देख सकते हैं :—
जहिं संचरंति बहुगोहणाइं, जव कंगु मुग्ग ण हु पुणु तणाइं
गोवालबाल जहिं रसु पियंति, थल सररुह सेज्जायलि सुयंति।
मायंबकुसुममंजरि सुएण, हयचंचुएण कयमणुएण ।
जहिं समयल सोहइ वाहियालि, वाहय पयहय वित्थरइ धूलि ।
'जहाँ बहुगोधन विचरण कर रहे हैं, यव, कंगु, मूग सर्वत्र दिख रही है ।
गोपाल बाल इक्षुरस पीते हैं, पृथ्वी पर कमल की शय्या बनाकर सोते हैं ।
कुसुममंजरी को भ्रमर के साथ देखकर क्रोधित होकर शुक चंचु मारता है । जहाँ समतल राजमार्ग हैं । नाना बाहनों के चलने से धूलि फैली है ।'

२. स्वयंभू के पउमचरिउ और तुलसीदास के रामचरित मानस के संबंध मे दे० अगला अध्याय ।

३. दादुर बास न पावई भलहिं जो आछे पास । पदमावत, १.२४ ।

की शैली से मिलती है। सदेशरासक के वियोग वर्णन और जायसी के वियोग वर्णन वहुत मिलते है। कही कही शव्दसाम्य भी मिलता है, ऐसा लगता है कि अव्दुल रहमान की कृति को जायसी ने पढा था। प्रारभ की वदना आदि भी सदेशरासक की वदना से कुछ कुछ मिलती है।[1] जायसी आदि की कृतियो से ऐसा लगता है कि अपभ्र श कथा साहित्य की शैली से इन कवियो का परिचय अवश्य था। कथा साहित्य के अतिरिक्त अन्य धाराओ के कवियो के सम्वन्ध मे इस प्रकार के प्रभाव के सवध मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता।

छद

हिन्दी काव्य पर सवसे अधिक प्रभाव पड़ा है अपभ्र श के छदो का। प्राकृत अपभ्र श के कवियो ने विशेष रूप से मात्रिक छदो का प्रयोग किया है किन्तु वर्णवृत्तो का भी अनेक कवियो ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। प्राकृत का तो विशेप प्रिय छद गाथा और उसके अनेक भेद है। अपभ्र श-कवियो के छदो के प्रयोग की कुछ सामान्य विशेपताओ का उल्लेख किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की रचनाओ मे विभिन्न प्रकार से छदो का प्रयोग किया गया है। आख्यान या कथा या चरित प्रधान काव्यो मे कडवकवद्ध छदो का प्रयोग किया गया है। इस शैली का एकमात्र ज्ञात अपवाद है हरिभद्र का नेमिनाह चरित जिसमे केवल एक ही मिश्र (द्विभगी) छद का प्रयोग हुआ है वह छद है वस्तु। अनेक अपभ्र श कृतियो मे वर्णनो के अनुसार छद भी कवियो ने वदल वदल कर रखे है। पुष्पदन्त की कृति से कुछ स्थल देख सकते है। सामान्य वर्णन, कथा कहने के लिए पज्झटिका या अन्य चतुष्पदी छदो का प्रयोग कवि ने किया है। युद्धादि, वर्षा आदि के वर्णनो मे कवि ने भिन्न प्रकार के छदो का प्रयोग किया है और वर्ण्य विपय का सजीव चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।[2] तात्पर्य यह है कि कथा और वर्णनो के लिए

---

१. दे० प्रो० एच० सी० भायाणी का लेख 'अब्दल रहमानज् सदेशरासक एंड जायसीज पदुमावली,' भारतीय विद्या, वाल्युम १०, १९४८, पृ० ८१-८९

२. वर्षा का एक वर्णन देख सकते हैं। पज्झटिका से भिन्न छंद का प्रयोग वर्षा वर्णन के लिए कवि ने किया है :—

जलु गलइ, झलझलइ।
दरि भरइ, सरि सरइ
तडयडइ, तडि पडइ
गिरि फुडइ, सिहिणडइ।

भिन्न भिन्न प्रकार के छदो के प्रयोग कवियो ने किये है। कुमारपाल प्रतिबोध के अपभ्रंश प्रसगों मे भी छदो का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है।[1] कुछ कृतियो मे कदाचित् अपनी छद प्रयोग की कुशलता को प्रकट करने के लिए कवियो ने अनेक छदो के प्रयोग किए हैं। नयनदि का सुदर्शन चरित और लाखू का जिनदत्त चरित इस प्रकार के उदाहरण कहे जा सकते है।

अपभ्रंश के कवियो ने छद प्रयोग की एक दूसरी स्वतत्रता का परिचय दिया है वह है दो विभिन्न छदो को मिलाकर नवीन छदो की सृष्टि करने की प्रवृत्ति। छप्पय, वस्तु, रड्डा, कुडलियाँ आदि इसी प्रकार के मिश्र छद हैं।

एक अन्य विशेषता अपभ्रंश कवियो मे मिलती है। अपभ्रंश के कवि चतुष्पदी, षट्पदी छदो का द्विपदी के समान प्रयोग करते हैं। इसको एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा सकता है, पज्झडिका या पादाकुलक छद समचतुष्पदी वर्ग के छद हैं। समान मात्राओ वाले चार चरणो को रखकर एक छद पूरा होता है। किन्तु अपभ्रंश के कवियो ने इन छदो का प्रयोग करते समय इसका ध्यान नही रखा है। पज्झटिका के या अन्य समचतुष्पदी छद के दो चरणो को पूरी एक इकाई मानते हैं और ऐसी कई इकाइयाँ रखकर एक कडवक पूरा होता है। पुष्पदन्त ने अपनी कृति महापुराण के प्रारभ मे 'मात्रासमक' चतुष्पदी का प्रयोग किया है जो समचतुष्पदी वर्ग का छद है। कवि ने २६ चरण रखकर कडवक पूरा किया है। छदशास्त्र के अनुसार २८ चरण या २४ चरण होना चाहिए।

अपभ्रंश के कवियो ने सस्कृत के वर्णवृत्तो का भी प्रयोग किया है किन्तु उसमे भी उन्होंने कुछ विशेषताएँ रखी हैं। सभी वर्णवृत्त द्विपदी के समान ही प्रयुक्त हुए हैं और सभी मे यमक या अन्त्यनुप्रास का प्रयोग मिलता है।[2] एक कडवक मे एक ही छद का प्रयोग अधिकतर होता है किन्तु ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है

मरु चलइ, तरु घुलइ इत्यादि ८५.१६
इसी प्रकार निविड-वन-वर्णन, वही, १२.१२, दुवई का प्रयोग, तथा १४.२ युद्धवर्णन, १४.७, ११, सिंधुवर्णन वही १३.९ आदि वर्णनों के अनुकूल लयप्रधान छदो का पुष्पदन्तादि कवियों ने प्रयोग किया है।

१. स्वयंभू ने संस्कृत के छंदो को वर्णवृत्त् नहीं माना। वर्ण वृत्तो को उन्होने मात्रिक मानकर विवेचन किया है। दे० ज० बं० ब्रा० रा० सो० १९३५, पृ० १८ एच० डी० वेलकर का लेख।

जहाँ एक कडवक मे दो छदो का प्रयोग भी हुआ है। पुप्पदन्त,[१] कनकामर,[२] धाहिल[३] इत्यादि अनेक कवियो की कृतियो मे इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। अपभ्रंश के कवियो के विशेप प्रिय छद मात्रिक रहे हैं और इसका उन्होने अनेक वार उल्लेख किया है। स्वयभू ने पद्धडियो आदि वधो की प्रशसा की है'[४] इसी प्रकार पुप्पदन्त ने मात्रिक छदो के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है।[५]

अपभ्रंश कवियो ने जिन छदो का प्रयोग किया है उनमे से अनेक छद गेय हैं और मात्रागणो के समान उनकी परिभाषा तालगणो से भी की जा सकती है। दोहा, प्रज्झटिका, हरिगीता आदि छद इसी प्रकार के प्रतीत होते हैं, पीछे छद-शास्त्रियो ने उनकी शास्त्रीय परिभाषा दी।[६] इसी प्रकार अपभ्रंश का कवि किसी छद का प्रयोग जब किसी की कीर्ति आदि वर्णन के लिए करता है तब उसका नाम धवल हो जाता है। कीर्ति वर्णन मे कीर्ति धवल, उत्साह वर्णन मे उत्साह धवल, तथा जब किसी छद का प्रयोग मगल दर्शन के लिए होता है तो उसका नाम मगल हो जाता है। छद शास्त्रियो ने इसका उल्लेख किया है।[७] पुप्पदन्तादि अनेक कवियो ने भी प्रकारान्तर से इसका उल्लेख किया है, जिनदेव का यश वर्णन करते हुए अन्त मे जैसे उन्होने एक स्थान पर कहा है ·

---

१. यथा पुष्पदन्त महापुराण संधि २, कडवक ३ में ५ मात्रिक रेवका द्विपदी के ५८ चरण हैं और फिर चारु द्विपदी के ८ चरण हैं।

२. कनकामर के करकंडुचरिउ में संधि १ कडवक १७ में कुछ चरण समानिका महानुभाव छंद के हैं और कुछ चरण तूणक के।

३. पउमसिरिचरिउ संधि ३ कडवक ५ में पद्धडिका तथा करिकरमकरभुजा द्विपदी छंदो क मिश्रण मिलता है।

४. यथा—छंदडिय दुवइ घ्रुवएहि जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय। हरिवंशपुराण १.२।

५. यथा, णं मत्तावित्तहं मत्ताजुत्तयं णायरइं, महापुराण १३.९.२२.।

६. दे० अपभ्रंश मीटर्स, मात्रा वृत्तज एन्ड ताल वृत्तज, एच०; डी० वेलंकर का लेख, भारत कौमुदी, राधाकुमुद मुकर्जी प्रेजेन्टेशन वाल्युम पृ० १०६५-१०८१।

७ दे० हेमचंद्र छंदोनुशासन, अध्याय ५, सूत्र ३३–४० जिनमे उन्होने कहा है कि उत्साहादि वर्णन में हेला, दोहा आदि का प्रयोग होने से उनका नाम हेला धवल, दोहक धवल आदि हो जाता है।

जयविसयसिविगरुल, जयधवल जसधवल

महापुराणु २. ३ ३२

अपभ्रंश कवियों ने चरित काव्यो मे सबसे अधिक प्रयोग समचतुष्पदी वर्ग के छदो का किया है और उसके साथ समद्विपदी घत्ता[1] तथा कुछ अन्य छदो के प्रयोग किए है। अर्धसमचतुष्पदी (दोहक) तथा मिन्नवृत्तो (द्विभगी) का प्रयोग स्फुट प्राय रचनाओ मे हुआ है, यद्यपि कुछ कवियो ने इनका प्रयोग भी चरित काव्यो मे किया है।

अपभ्रंश काव्य की छद सबधी यह सभी विशेषताएँ हिंदी कविता मे भी मिल जाती है। विषय के अनुसार हिन्दी कवियो ने भी छदो का प्रयोग किया है। कथा या चरित प्रधान काव्यों मे अपभ्रंश के चरित काव्यो के समान ही कडवक शैली का प्रयोग मिलता है। छद शास्त्रियो ने कडवक के सबध मे कुछ उल्लेख किए हैं। हेमचद्र ने कडवक के अत मे घत्ता के प्रयोग की चर्चा की है। उन्होंने कहा है कि चार पद्धडिया छदो के साथ एक घत्ता जोडकर कडवक पूरा होता है और कडवक के समूह को सन्धि कहते है। पद्धडिकादि छदो के अत मे घत्ता का रहना ध्रुव है अर्थात् निश्चित है उसमे उसे ध्रुवा, ध्रुवक या घत्ता कहते हैं। सधि के प्रारभ मे भी घत्ता (ध्रुवा) के रहने का हेमचद्र ने उल्लेख किया है।[२] इसी प्रकार कवि दर्पण मे कडवक मे सोलह पद्यो के होने का उल्लेख मिलता है और वे पद्य सानुप्रास होते थे यह भी सकेत कविदर्पण के रचियिता ने किया है।[३] हेमचद्र और कविदर्पणकार दोनों के ही विचार शास्त्रीय से है। कवियो के वास्तविक प्रयोगो को उन्होंने ध्यान मे नही रखा है। छंदो का अधिकारपूर्ण ढग से प्रयोग करने वाले पुष्पदन्त की कृति के एक सधि के कडवको के विश्लेषण से यह स्पष्ट होगा कि कवि कडवक में निश्चित पद्य सख्या के नियम को नही मानते थे। कवि के महापुराण के एक अग 'हरिवश-पुराण' की सधि ८१ मे १९ कडवक हैं सभी कडवको मे समचतुष्पदी छंदो का प्रयोग कवि ने किया है, प्रथम कडवक १३ मात्रिक ज्योत्स्ना समचतुष्पदी मे है, शेष १८ कडवक पद्धडिया छद मे हैं। कडवको मे छद के चरणो की सख्या निम्न प्रकार है —

---

१. सन्ध्यादौ कडवकान्ते च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवकं घत्ता वा। छंदो, ६.१।
२. षोडशपद्या. कडवकत्वात् तथा प्रायः सानुप्रासा एता इति। कविदर्पण २.१।
३. प्रत्येक चरण में तेरह मात्रा होनी चाहिए, ५ मात्राओ के दो गण और अंत में लघु गुरु दे० वृत्तजातिसमुच्चय ३८।

२ कड० (१६ चरण) कडवक ७ तथा ९ मे छद का चतुष्पदी के समान प्रयोग किया है।

१ कड० (२० चरण) कडवक २ मे छद का चतुष्पदी के समान प्रयोग किया है।

८ कड० (२२ चरण) कडवक ३ से ५, ८, १३ से १५ तथा १९ मे, छद का प्रयोग द्विपदी के समान किया है।

७ कड० (२४ चरण) कडवक १, ६, १०, ११, १२, १६, १८ मे छद का प्रयोग चतुष्पदी के रूप मे हुआ है।

१. कड० (२६ चरण) कडवक १७ मे छद का प्रयोग द्विपदी के समान हुआ है।

सधि के अठारह कडवको मे से ९ मे चतुष्पदी छद का प्रयोग कवि ने द्विपदी के समान किया है और ९ कडवको मे छद का प्रयोग ठीक चतुष्पदी के समान हुआ है। केवल एक कडवक मे चरणो की सख्या हेमचन्द्रादि के अनुसार ठीक है। किन्तु वह पद्धडिका नही है। अन्य कवियो की कृतियो मे भी इनी प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। सधि के प्रारभ मे और कडवक के अत मे सभी कृतियो मे घत्ता का प्रयोग अवश्य मिलता है।[१] इस शैली का प्रयोग हिन्दी मे तुलसीदास के रामचरित मानस तथा प्रेमाख्यानक कवियो की कृतियो, कुछ वीर काव्यसबंधी कृतियो तथा सूरसागर के कथात्मक अगो मे मिलता है। कुछ प्रतिनिधि कवियो की कृतियो की छद शैली का विश्लेषण कर के यह देख सकते है कि किस प्रकार की नवीनता हिन्दी कृतियो मे मिलती है।

जायसी ने अपनी कृति मे प्रत्येक चौपाई (कडवक) मे चौदह चरण रखकर अत मे घत्ता के स्थान पर दोहे का प्रयोग किया है। कृति के प्रारभ मे या खडो के प्रारभ मे दोहे का प्रयोग नही मिलता। चौपाइयो मे प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ हैं जिन्हे दो ८ मात्रिक गणो मे विभक्त करना उचित प्रतीत होता है। चित्रावली मे भी जायसी की कृति के समान ही छद क्रम है। इन्द्रावती मे प्रत्येक चौपाई मे

१. सधि के प्रारंभ में ध्रुवक और कडवक के अंत में ध्रुवक के प्रयोग से ऐसा लगता है कि इस शैली का विकास गेय रूप से हुआ है। प्रारंभ का ध्रुवा स्थायी रूप में गाया जाता होगा और फिर परिवर्तन के लिए दूसरे प्रकार के ध्रुव को रखा जाता होगा। दे० वेलंकर का लेख अपभ्रंश मीटर्स भारत कौमुदी।

१० चरण प्रयुक्त हुए है। इन सभी कृतियो मे अपभ्रंश कवियो के समानचतुष्पदी छद का द्विपदी के समान प्रयोग हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन कवियो ने छद शास्त्र को न देखकर पूर्ववर्ती कवियो के प्रयोग के आधार पर छदो का क्रम रखा है। तुलसीदास ने रामचरित मानस मे यद्यपि चतुष्पदी छद का प्राय चतुष्पदी के रूप मे ही किया है तथापि उन्होने भी उपर्युक्त प्रकार के प्रयोग किए हैं। बालकाड की प्रथम १०० चौपाइयो मे से कम से १३ चौपाइयाँ ऐसी मिलती हैं जिनमे चतुष्पदी छद का कवि ने द्विपदी के समान प्रयोग किया है।[1] कवि ने सुन्दर कांड को छोडकर सभी कांडो के प्रारभ मे सस्कृत पद्यो के पश्चात् दोहा या सोरठा का प्रयोग ध्रुवक के स्थान पर अवश्य किया है। अपभ्रंश कृतियो के समान जहाँ तहाँ कवि ने एक ही चौपाई मे दो प्रकार के छदो के भी प्रयोग किए हैं। और कुछ इस प्रकार के छदो के सबध मे ऐसा लगता है कि वर्णन या प्रसग पर जहाँ आलोचना करनी अपेक्षित थी वही कवि ने भिन्न छदो का प्रयोग किया है। तुलसी की प्रस्तुत कृति के छदो की रूपरेखा को देखकर ऐसा लगता है कि वे अपनी पूर्ववर्ती चरितकाव्य परपरा से अच्छी तरह परिचित थे और छद शास्त्र का ध्यान रखते हुए भी उन्होने परपरा को अपनाया। लाल कवि ने छत्र प्रकाश मे चौपाई दोहा शैली का प्रयोग छदशास्त्र के अनुकूल किया है। दो एक स्थल ऐसे मिलते हैं जहाँ चौपाई का प्रयोग द्विपदी के समान[2] किया है। अध्यायो के प्रारभ मे दोहे का प्रयोग उन्होने नही किया है।[3] 'छद राउ जइतसीरउ' भी एक चारणीय कृति है। उसमे भी पद्धडिका दोहा शैली का पालन किया गया है। पद्धडिका के पश्चात् दोहा के स्थान पर कृति मे कही कही गाहा का प्रयोग किया गया है। पद्धडिका का द्विपदी के समान प्रयोग किया है और अनेक पद्धडिका के चार चरणो के पश्चात दोहा या गाहा का प्रयोग किया है।

एक बार मे अधिक मे अधिक ४४०[4] चरण पद्धडिका के रखे है और उसके

---

१. दे० बालकांड दो० २,४, ५, ६, ११, १५, २८, ३५, ३७, ३८ और ७८।
२. यथा, अध्याय २ छंद २, अध्याय ५, छंद ७।
३. कुछ अध्यायों के अंत में दोहा मिलता है जहाँ मिलना ही चाहिए था जिन अध्यायो के अत में दोहा नहीं मिलता उसके अगले अध्याय के प्रारंभ में दोहा मिलता है। कदाचित् संपादक को कुछ प्रतियो मे ऐसा क्रम मिला होगा और उन्होने उसे इस प्रकार रख दिया है।
४. छन्द राउजइतसीरउ, पद्य २३४ से ३४३ तक।

पश्चात् गाहा का प्रयोग किया है। कृति मे गाहा, पद्धडिका दोहा के प्रयोग ही अधिक है। केवल एक बार एक छप्पय का प्रयोग किया गया है जो कृति के अत मे है और जिसको 'कलस' नाम दिया गया है। इन कृतियो की छद शैली मे अपभ्र श कडवक बद्ध शैली से अतर केवल इतना है कि इन्होने घत्ता के स्थान पर दोहे का प्रयोग किया है। और अपभ्र श कवियो के प्रज्झटिका को छोडकर इन कवियो ने पादाकुलक और चौपाई का प्रयोग किया है। अपभ्र श कवियो ने कडवको मे पादाकुलक और अन्य चतुष्पदी छदो का भी प्रयोग किया है। इन चरित काव्य लेखको मे छद की विविधता बहुत कम मिलती है। जायसी के वर्ग के लेखको की कृतियो मे तीसरा छद ही नही प्रयुक्त हुआ है। लाल कवि ने भी दो ही छदो का प्रयोग किया है। तुलसीदास की कृति मे चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीत, भुजगप्रयात, तोटक आदि छदो के प्रयोग हुए है। अपभ्र श के बहुसख्यक चरित काव्यो मे छदो की विभिन्नता अधिक नही मिलती। जैसा अपभ्र श चरित काव्यो की छदशैली का हिन्दी कवियो द्वारा अनुगमन मिलता है वैसा अन्य शैलियो का नही। हिन्दी काव्य की विभिन्न धाराओ के कवियो के कुछ विशेष प्रिय छद है। सबसे अधिक छदो का प्रयोगचारण काव्यधारा मे मिलता है, सन्त कवियो और भक्त कवियो मे जो दोहा शैली और पद मिलते हैं उस पर आगे विचार किया गया है। रास रचनाओ मे कुछ देशी छद मिलते हैं उन पर पीछे विचार किया गया है।

पहिले हिन्दी के चारण कवियो की कृतियो मे प्रयुक्त छदो पर विचार किया गया है और उसके साथ यह दिखाया गया है कि उसमे से कौन कौन से छदो का प्रयोग हिन्दी कवियो के पूर्ववर्ती कवियो ने किया है। इसके लिए पृथ्वीराजरासो, सुजान चरित, तथा कुछ अन्य कृतियो का प्रधान रूप से सहारा लिया गया है। छदो की जो विविधता इन कृतियो मे मिलती है वह अन्य धाराओ मे नही प्राप्त होती केवल दास एक अपवाद है। चारण कवियो के कुछ प्रिय छद हैं और उन छदो का प्राय सबने प्रयोग किया है। पृथ्वीराज रासो मे लगभग ७२ छदो का प्रयोग मिलता है जिनमे से लगभग आधे वर्णवृत्त हैं और सूदन के सुजान चरित मे लगभग १०० छदो का प्रयोग हुआ है जिनमें से आधे के लगभग मात्रिक छदहैं। कुछ छद ऐसे हैं जिनका प्रयोग अन्यत्र उपलब्ध कृतियो मे नही मिलता।

१. प्राकृत छद ·

गाहा[1] (सस्कृत गाथा) पृथ्वीराज रासो,[2] सुजान चरित,[3] वचनिका राठौड

१ एक एक छंद का कवियो की कृतियों मे अनेक बार प्रयोग मिलता है। यहाँ पर कवि द्वारा प्रथम प्रयोग का उल्लेख किया है। समस्त प्रयोगो की सूची

रतनसिंघ जी[1] तथा छन्द राउ जइतसीरउ[2] मे गाथा का प्रयोग मिलता है। ढोला मारूरा दूहा जैसी कृतियो मे भी गाथा का प्रयोग मिलता है यद्यपि उसके बहुत कम प्रयोग हुए हैं।[3] पृथ्वीराज रासो मे गाथा का प्रयोग पर्याप्त सख्या मे मिलता है। अपभ्र श कवियो ने गाथा छद का बहुत ही कम प्रयोग किया है। पुष्पदन्त और स्वयंभू तथा अन्य जैन अपभ्र श कवियो ने गाथा का प्राय बहिष्कार सा कर दिया था। गाथा प्राकृत का अति प्रिय मात्रिक छद था और छदशास्त्रियो ने उसके अनेक भेदो की चर्चा की है। सदेशरासक जैसी अपभ्र श कृतियो मे गाथा के प्रयोग मिलते हैं।[4] किन्तु उनकी भाषा अपभ्रंश न होकर प्राकृत ही है, जहाँ तहाँ उसमे अपभ्र शा-भास भले ही मिल सके। पृथ्वीराज रासो मे प्रयुक्त गाथाओ की भी भाषा प्राकृता-भास लिए हुए है।[5] हिन्दी के इन कवियो ने केवल छदशास्त्र का चमत्कार दिखाने के लिए गाथा का प्रयोग किया है। अपभ्र श के कवियो का यह प्रिय छंद कभी नही रहा।[6] पृथ्वीराज रासो मे इसी प्रकार गाथा के सस्कृत रूप आर्या के भी प्रयोग मिलते हैं जिसका अपभ्र श कृतियो मे प्रयोग नही मिलता।[7]

अनावश्यक समझी गई है।

२. पृथ्वी० समय १.४३–४९

३. सुजान० पृ० ६३

---

१. वच० पद्य १।

२. छन्द राउ० पद्य १।

३. ढोला० पद्य २३४, ५७५, ५७७

४. सदेशरासक पद्य १–१७ तथा अन्य।

५. उदाहरण के रूप में सूदन की कृति से एक गाथा उद्धृत की जा सकती है जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि ने प्राकृत की कृत्रिमता लाने का प्रयत्न किया है और यह प्रयत्न मात्रा सख्या को ठीक रखने के लिए आवश्यक था

सुनियं रखबरि वजीरं बदन तनं आइय सह सूरं
इसपाइल तिहि आगं दिय पठाइ छाय सुखपूरं पृ० ६३।

६. गाथा के दोहा पथ्या और विपुला दो भेद होते हैं। प्रथम पाद में ३० मात्राएं होती हैं द्वितीय में २७। विषम गण जगण नहीं होना चाहिए। पथ्या में चार मात्रिक तीन गणो के पश्चात् यति होती है, विपुला में नहीं।

७. पृथ्वी० १२ ३६४ इत्यादि।

चारणीय धारा के कवियो ने मात्रिक और वर्णिक दोनो ही प्रकार के छंदो के प्रयोग किए हैं। पहिले मात्रिक छंदो का विवेचन किया जा रहा है, अपभ्र श के छद ग्रन्थो तथा अपभ्र श कवियो के प्रयोगो दोनो ही का साथ मे सकेत किया गया है। पदो की सख्या और उनमे परस्पर समानता के आधार पर छंदो का समद्विपदी, विषम द्विपदी, समचतुष्पदी, अर्धसमचतुष्पदी, विषम चतुष्पदी, षट्पदी, तथा मिश्र वर्गो मे विभाजन कर लिया गया है।

समद्विपदी . अपभ्र श मे पुष्पदन्त ने द्विपदियो के सुंदर प्रयोग किए हैं। अनेक छंदो के प्रयोग करने वाले इन कवियो मे से केवल सूदन ने सम द्विपदियो के प्रयोग किए है। २८ मात्रा की द्विपदी, उल्लाला, घत्ता, घत्तानद, तथा स्कधक द्विपदियो के प्रयोग प्रमुख हैं।[1] पुष्पदत ने महापुराण के कुछ कडवको मे द्विपदियो के प्रयोग किए हैं किन्तु जहाँ पुष्पदन्त ने इन द्विपदियो का प्रयोग किया है वहाँ वर्ण्य विषय में कुछ भिन्नता मिलती है। प्राय वर्णनो के लिए उन्होने द्विपदियो का प्रयोग किया है।[2] सुजान चरित मे द्विपदियो का जो प्रयोग मिलता है उसके सबध मे ऐसा नही कहा जा सकता। हिन्दी के कवियो मे द्विपदियो (अप० दुवई) का प्रयोग इतना कम रह गया है इसका कारण अपभ्र श के कवियो द्वारा दुवई का कम प्रयोग कहा जा सकता है। विषम द्विपदियो का प्रयोग इन कवियो ने नही किया।

समचतुष्पदी . सबसे अधिक प्रयोग इन कवियो की कविताओं मे मात्रिक समचतुष्पदी वर्ग के छंदो का मिलता है। प्राचीनो द्वारा प्रयुक्त चतुष्पदियो के अतिरिक्त कुछ नवीन चतुष्पदियो के प्रयोग भी इन कवियो ने किए हैं जिनमे से कुछ के प्रयोग न तो उपलब्ध अपभ्र श कृतियो मे मिलते हे और न छंदशास्त्रियों ने ही उनके विषय मे कुछ कहा है। जैसा कि पीछे सकेत किया गया है छंद शास्त्र का ज्ञान रखने वाले सूदन जैसे कवियो ने भी चतुष्पदी का प्रयोग अनेक स्थलो पर दो पद वाले छद के समान किया है। निम्न चतुष्पदी छंदो के प्रयोग इन कवियो की कविताओ मे मिलते हैं :

---

१. सुजानचरित, पृ० १३, १६, १४४, १४६, १९०, २०२, २१३, स्कधक का नाम खंघ दिया है पृ० २१३। इनमें उल्लाला, घत्ता, घत्तानंद, स्कधंक तथा अन्य द्विपदियो के प्रयोग अपभ्रंश कवियो ने भी किए हैं और अपभ्रंश के छंदग्रंथों में भी इनका विवेचन मिलता है।

२. यथाः महापुराणः संधि २ कडवक १२ में वर्षाऋतु का सुदर वर्णन है। सूदन के समान ही २८ मात्राओं की समद्विपदी है। इसी प्रकार के अन्य काव्यमय वर्णन ३.१४, ८.७, १२.१२ इत्यादि।

का प्रयोग मिलता है ।[1]

११ मात्रा-आभीर :

इसका प्रयोग भी सुजान चरित[2] मे मिलता है, प्राकृत पैंगल[3] के अनुकूल इसके प्रत्येक चरण मे ७ मात्राए तथा एक जगण मिलता है । अपभ्र श के कवियो ने इस छद का प्रयोग बहुत कम किया होगा, उपलब्ध साहित्य मे इसका प्रयोग नही मिलता ।

१२ मात्रा-हरी दुरद और हनूफाल :

१२ मात्रिक चतुष्पदियो के प्रयोग हिंदी कृतियो मे मिलते है । हनूफाल छद के दो प्रकार के प्रयोग मिलते है । १२ मात्रिक तथा १४ मात्रिक छदशास्त्र के ग्रथो मे हनूफाल छद का नाम नही मिलता । हनूफाल के प्रयोग पृथ्वीराज-रासो[4], राजविलास, हम्मीर रासो[5], सुजानचरित[6], करहिया को रायसौ[7], वचनिका राठौड रतनसिंघजी री[8] आदि कृतियो मे मिलता है । दुरद का प्रयोग केवल सुजान चरित मे मिलता है[9] । हनूफाल का प्रयोग केवल सुचान चरित मे १४ मात्रिक छद के रूप मे मिलता है । पृथ्वीराज रासो मे इस छद की परिभापा दी गई है जो स्पष्ट नही है, छद को मात्रिक अवश्य कहा है । १२ मात्रा के प्रयोग मे छद की सामान्यत गण सख्या इस प्रकार मिलती है यद्यपि कही कही उसका उल्लघन भी हुआ है ५, ३, ४ ।

१२ अतिम ४ मात्रिक गण जगण होना चाहिए अर्थात् चरणात मे गुरु लघु मिलता है । प्रारभ के पॉचमात्रिक गण के प्रयोग विभिन्न रूपो मे मिलते है । सभी कवियो ने इसका प्रयोग समचतुष्पदी छद के रूप मे किया है । १२ मात्रा के इस छद का रूप अपभ्रश छंद ग्रन्थो की १२ मात्रिक सम चतुष्पदियो

---

१. महापुराण ९.२ ।
२. सुजान० पृ० ७० ।
३. प्रा० पै० १.१८१ ।
४. पृ० रा० १.९५, १०७ तथा २.३०९–३० इत्यादि ।
५. रा० वि० पृ० ४१-४३ छंद ३९-५९, तथा हम्मीर रासो पद्य ७०२-७०८ ।
६. सु० च०, पृ० १८४–१८५ ।
७. क० रा० छंद ४५ ।
८. व० रा० र० छं० ४ ।
९. सु० च० पृ० २४१–४२ ।

से नही मिलता । महानुभावा[1] छंद से इसकी समता की जा सकती है । १४ मात्रिक हनूफाल अपभ्रंश के गन्धोदकधारा छन्द के समान है[2] । १२ मात्रिक छदो के प्रयोग अपभ्रंश के कवियो ने किए हैं किन्तु वे भिन्न हैं[3] । दुरद छद अपभ्रंश के प्रगीता छद के समान हैं[4] । हरी छद का प्रयोग भी केवल सुजान-चरित में मिलता है और प्रगीता के ही समान है[5] ।

१४ मात्रा अर्धमालची, मालती, ऊधो, विज्जुमाला, वेली द्रुम, दुर्गम, इत्यादि १४ मात्रिक सम चतुष्पदी छद पृथ्वीराजरासो[6] सुजान चरित[7] मे मिलता है । अपभ्रंश छद ग्रथो में हाकलि, खडिता आदि पाँच प्रकार के १४ मात्रिक समचतु० के उल्लेख मिलते हैं[8] । कुछ के प्रयोग भी अपभ्रंश की कृतियो मे मिलते हैं । उपर्युक्त छद इन्ही के रूपान्तर कहे जा सकते है, किन्तु इन नामो के उल्लेख न किसी छद शास्त्र की कृति में मिलते है और न अपभ्रंश की कृतियो मे । हिन्दी के कवियो के सामने कोई अन्य आधार रहे होंगे जहाँ से इन्होंने ये नाम लिए होगे । अर्ध मालची के अत मे रगण मिलता है और मालती के अत मे जगण, ऊधो के अत मे गुरुलघु[9], और विज्जुणुन्माला के अत मे जगल, नूफा के अत में गुरु लघु मिलता है । ऊधो और नूफा एक प्रकार के है । विज्जुन्माला और मालती परस्पर मिलते हुए छद हैं । ऊधो और नूफा की समता अपभ्रंश

---

१. छंदो० ६.२६ ।

२. छ० ६.२८ ।

३. यथा महापुराण ८१.१, वर्ण वृत्त समानिका से प्रस्तुत छंद का मात्राक्रम भिन्न है, करकडुचरिउ १.७.८ आदि ।

४. वृत्तजातिसमुच्चय वृत्त० ३.६ ।

५. सु० चा० पृ० १३५.६ ।

६. पृ० रा० अर्धमालती ४५.१०५–१७, मालती ६६.२०२–१५ ऊधो ४५.१६ –२१ विज्जुमाला-पाठान्तर में इसका नाम उधोर दिया है । ९.१९२–२०२ वेलीद्रुम ५९.१३–२२, दुर्गम ६५ ६५४२७. राजविलास में उद्धोर छद ० पृ० ९०.९३ ।

७ सु० च० नूफा पृ० ११३–१४ ।

८. दे० प्रा० पें० १.१७२, खडिता हेम० ४.१७, ४.६८, वृत्त० ३, १, २, ५.

९. तुलनीय छंद भास्कर, विलासपुर १९२२ पृ० ४६ के मधुमालती तथा सुलक्षण से ।

के शकलि से की जा सकती है। १४ मात्रिक सम चतुष्पदी के प्रयोग बहुत अधिक न अपभ्रंश में मिलते न हिंदी मे। छदशास्त्र के ज्ञान को प्रकट करने के लिए ही कम परिचित नाम देकर हिंदी कवियो ने उनका प्रयोग किया है।

१६ मात्रा[1] अपभ्रंश में सबसे अधिक प्रयुक्त छंद १६ मात्राओ के समचतुष्पदी छद हैं। कथाप्रधान काव्यो में तो आदि से अंत तक प्रधान रूप से यही छद प्रयुक्त हुए हैं। इस वर्ग के निम्न छंद चारण कवियो द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

१ पादकुलक[2]: पादाकुलक में चार मात्राओ के चार गण होते हैं। गणो में मात्राओ के क्रम के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

२. पद्धरी[3]: पज्झटिका या पद्धतिका, पद्धडिया पद्धरी में भी चार मात्रिक चार गण होते हैं।[4]

३ अरिल्ल[5] : छद ग्रंथो मे इसका नाम अडिला मिलता है। प्रतिचरण में यमक के साथ सोलह मात्राएँ होना चाहिए।[6]

४ विअक्षरी[7] इस नाम के किसी छंद का उल्लेख संस्कृत या प्राकृत के छद ग्रथो में नही मिलता।

---

१. १५ मात्राओ वाले सम चतुष्पदी छंदो का भी कवियो ने प्रयोग किया है किन्तु वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। लघु चतुष्पदी और पारणक के प्रयोग अपभ्रंश कृतियों में मिलते हैं। दे० छं० को० ४०, छंदो० ९.२६। सूदन के सुजान चरित में १५ मात्राओं के छंदों में महालछिमी छं० को ० के लघुचतुष्पदी के समान पृ० १६९, चौंबेला वही पृ० १६ करी वही पृ० २२४ के प्रयोग मिलते हैं उनमें से महालछिमी तथा करी अप० के लघु चतुष्पदी के समान ही रूप हैं।

२ सुजानचरित पृ० ४९ आदि, अन्य दोहा चौपाइयों की शैलीवाली कृतियो में पादाकुलक के प्रयोग मिलते हैं।

३. पृ० रा० १.२६–२८, ३१–४१ आदि, हम्मीरासो छं० ३, ३२, हम्मीररासो छन्द ६६.६९ इत्यादि सभी मे पद्धरी के प्रयोग मिलते हैं।

४. छंदो० ६.३०।

५. पृथ्वी० रा० में अरिल्ल का बहुत प्रयोग मिलता है १.८५, ९३.४।

६. छंदो० ५.३०।

७. पृ० रा० १.१७३–७६ आदि तथा हम्मीररासो ४९५–५०३ में इस छंद के प्रयोग मिलते हैं।

५ चौपाई[1]: पृथ्वीराज रासो में कही १५ मात्रा के छदो को यह नाम दिया गया है, कही १६ मात्रा के छदो को।

६ वाघा[2]: छद ग्रथो तथा अपभ्र श कृतियो मे इस नाम का कोई छद नही मिलता।

७ मुरिल्ल[3]: कदाचित अपभ्र श कवियो और छदग्रन्थो के मडिल १ (छदो० ५ ३०) का यह विस्तृत रूप है।

८ पारक[4]: इस नाम का छद ग्रथो में कही उल्लेख नही मिलता, परिनन्दित (वृत्त ४ १९) से इसका मात्रा क्रम थोडा भिन्न है। सभव है उसी से इसका नाम आया हो।

९ मालती: (छद कोश ४९) मे मालती का लक्षण दिया गया है। किन्तु उसके अनुकूल सुजानचरित पृ० १६३ मे प्रयुक्त छद मे मात्रा योजना नही है यद्यपि वह समचतुष्पदी छद है। ८, ८ मात्रा के विराम मे प्रति चरण मे १६ मात्राए है।

१० घत्ता: समचतुष्पदी घत्ता, का प्रयोग सुजान चरित पृ० १९० मे मिलता है। अपभ्र श की कृतियो मे इसके प्रयोग मिलते है।

उपर्युक्त छदो में से विअक्खरी, वाघा और पारक छद कवियो द्वारा प्रयुक्त नवीन नाम है। यह तीनो ही छद एक दूसरे से भिन्न नही हैं। विअक्खरी आदि अक्षरी चौपाई का ही दूसरा, किसी लुप्त छद ग्रथ मे प्रयुक्त नाम प्रतीत होता है। अपभ्र श और उसी प्रकार इन हिन्दी कवियो में एक सामान्य विशेषता छदो के नाम बदलने की मिलती है।[5] विअक्खरी के अत में दो गुरु या यगण मिलता है

---

१. पृ० रा० १ १२४, २१३–६ आदि। हम्मीररासो १४७–१५९, हम्मीर हठ पृ० २ आदि कृतियो में प्रयोग मिलता है।

२ पृ० रा० १ १३६–४७ आदि। अन्य कृतियो में इस छद का प्रयोग नहीं मिलता।

३. पृ० रा० १ ३०७, ३३४ आदि।

४. केवल पृथ्वी रा० में इसका प्रयोग मिलता है १२.१५१, २३४ आदि।

५. कुछ ऐसे उदाहरण देख सकते हैं, खंडिता का एक नाम अवलम्बक है, नन्दिनी का, दूसरा नाम छित्तक है, मदनावतार का नाम चन्द्रानन भी है इत्यादि।

और चौपाई के भी एक प्रकार के अत मे दो गुरु या यगण मिलते है।[1] अत प्रतीत होता है अत मे दो गुरु वाली चौपाई को 'विअक्खरी' नाम दिया है। इसी प्रकार बाधा और पारक भी चतुष्पदी के रूप है। पज्झटिका के अत मे जगण लघु गुरु लघु होना चाहिये। इसी प्रकार अडिला और मडिला में थोडा सा अन्तर है। अपभ्र श के कवियो की कृतियो मे प्रज्झटिका, पादाकुलक अरिल्ल, विअक्खरी, मुरिल्ल, चौपाई के वहुत प्रयोग मिलते हैं। पुष्पदन्त और अन्य कवियो की कृतयो में १६ मात्रा के समचतुष्पदी वर्ग के छदो का सवसे अधिक प्रयोग हुआ है।[2] अपभ्रश कवि एक ही कडवक मे चतुष्पदियो की मात्राओ की व्यवस्था वदल देते है अत एक ही कडवक में कभी कभी दो प्रकार (जैसे विअक्खरी और चौपाई) की चतुष्पदियाँ भी मिल जाती है। हिंदी के कवियो मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है यथा तुलसीदास के मानस से कुछ उदाहरण ले सकते है। एक चौपाई की ७ अर्द्धालियो में से ७ के प्रत्येक चरणात मे यगण (लघु गुरु) मिलता है किन्तु वीच मे एक अर्द्धाली ऐसी भी मिलती है जिसके चरणो के अन्त मे सगण मिलता है[3], उमा कहउ मैं अनुभव अपना सपना ३ ३९। अपभ्र श कवियो की समचतुष्पदियो के प्रयोग सवधी सभी स्वतन्त्रताओ को हिंदी कवियो ने अपनाया है, जैसे द्विपदी के समान प्रयोग, एक ही कडवक मे विभिन्न प्रकार की चतुष्पदियो के प्रयोग तथा मात्रा सयोजना के अनेक प्रकारो की स्वतन्त्रता इत्यादि[4]।

१. जैसे तुलसीदास की निम्न यगणान्त चौपाइयाँ बिअक्खरी कहलावेंगी, निज गुण श्रवन सुनत सकुचाहीं, पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।
सम सीतल नहि त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती। २.४६
तुलसी की रचना में पादाकुलक, चौपाई, बिअक्खरी के रूप प्रयुक्त हुए है।

२. महापुराण, पादाकुलक ३.९, प्रज्झटिका, बिअक्खरी, वही २२.९.१–३ चौपाई २२.८, अरिल्लादि के प्रयोग भी अनेक मिलते हैं वही, ९.२६, ३–४ आदि।

३. अन्य उदाहरण ३.४२.८, ३.४३.१० इत्यादि। तथा अपभ्र श के ऐसे प्रयोगो के लिए भी एक उदाहरण देख सकते हे। महापुराण ९.९२ में प्रथम पाँच अर्द्धालियो के चरणांत मे गण इस प्रकार हैं भगण, यगण, यगण, भगण, भगण।

४. कौन से मात्रिक गण अपभ्रंश और हिंदी कवियो के सर्वप्रिय रहे हैं यह दिखाना एक भिन्न विषय है लेकिन मात्रा योजना की स्वतन्त्रता का पूरा लाभ कवियों ने उठाया है। मात्राओं की अनेक प्रकार की योजनाएँ मिलती हैं।

अन्य इस वर्ग के छदो में १७ मात्रा की मनोरमा (सु० २२५) १९ मात्राओं का वैतवे छद(सु० च० पृ० १२९-१३०)२० मात्रिक झूलन्त(हम्मीर हठ पद्य २४) रसावल(हम्मीर रासो पद्य ९१७)आदि, लच्छीधर(सुजान चरित पृ० १६,)भुजंगा (सु० च० पृ० ११, १२,)सादरा मदनावतार(सु० च० पृ० २००,)२१ मात्राओं के मैं छदो में रामा,[1] चान्द्रायना,[2] कलहस,[3] पवगा,[4] २३ मात्रिको में नीसानी[5] हीरक[6], २४ मात्रिको-में रोला[7], काव्य[8], २५ मात्रिको में गगनांगन[9], २६ मात्रिको में सुगीतिका[10], अनुजोत [11], २८ मात्रिको मे गीता मालची हरिगीत, माधुर्य, ललितपद, सारदोवै, हरिगीत,[12] २९ मात्रिको मे मरहठा,[13] ३२ मात्रिको मे त्रिभगी,रुचिरा,[14]लीलावती,[15]३३ मात्रिको मे दुमिला,[16]और ४० मात्रिको में उद्धत,[17]मदनहरा,[18]छदो के प्रयोग मिलते हैं। अपभ्र श के छद-

---

१. पृ० रा० ५०.२२ ।
२. पृ० रा० २.४०९-१० ।
३. सु० च० पृ० १५९-६० ।
४. वही, पृ० १३ ।
५. पृ० रा० २४.३४५-५०, सु० च० पृ० ४४ ।
६. सु० च० पृ० १४३ ।
७. पृ० रा० २१.२०४ सु० च० पृ० ८९, १७२-१७३ ।
८. पृ० रा० १.७४८, २१ मात्राओं का छंद है, सु० च० पृ० २३३ ।
९. सु० च० पृ० २१६ ।
१०. सु० च० पृ० २२७-८ ।
११. वही, पृ० ४, ५०-५१ ।
१२. यह सब एक ही छंद, हरिगीत के भिन्न भिन्न नाम हैं। गीतामालची के प्रयोग पृ० रा० में २.२१९-२२९, माधुर्य के वही, १५.५ ६, ललित पद के सु० च० पृ० १६७, दोवै के, सु० च० पृ० २२९ तथा हरिगीत के सु० च० पृ० ७, १०, १३ में मिलते हैं।
१३. सु० च० पृ० २९ ।
१४. त्रिभंगी पृ० रा० २.२५७, लीला० सु० च० पृ० २०० ।
१५. वही, पृ० १६५-६ ।
१६. पृ० रा० २४.७३, ५, सु० च० पृ० १५ ।
१७. वही, पृ० १९० ।
१८. वही, पृ० २०७ ।

शास्त्र विषयक ग्रन्थो में इन सभी छदो का विवरण मिल जाता है। हिंदी के कवियो नें कुछ छदो के नाम वदल दिए हैं, हरिगीति के गीतामालची, माधुर्य, ललितपद, सार का दोवै नाम, रति वल्लभ(छदो० ४ ३९)वेतवे नाम आदि अपरिचित से नाम किसी अन्य स्रोत से गृहीत हुए है। इनमें से सभी छदों के प्रयोग उपलब्ध अपभ्र श साहित्य में नही मिलते। प्रतीत ऐसा होता है कि सुजान चरित के रचयिता ने छद शास्त्र के सिद्धान्तो को सम्मुख रखकर नाना प्रकार के छदो की रचना की होगी, कवियो के प्रयोग उनके सामने कदाचित ही रहे होगे। इनमे से कुछ छद ऐसे है जिनके वही नाम अपभ्र श में छद ग्रथो में नही मिलते है किन्तु अपभ्र श के कवियो ने उसी नाम से उनका प्रयोग किया है यथा नीसाणी जिसका प्रयोग नामोल्लेख सहित रासो और सुजान चरित मे मिलता है, नयनदि की कृति में भी इस छद का नामोल्लेख तथा प्रयोग मिलता है किन्तु वह सोलह मात्रा का छद है यथा—

तं णियच्छिऊण सो पहिट्ठउ छंदउ णिसेणि णामद्दिठओ

सुदर्शन चरित १० १।

उपर्युक्त छदो मे से रासा, चान्द्रायना, रोला, काव्य, प्लवगम आदि के प्रयोग अपभ्र श कृतियो मे मिलते हैं।[1] हिन्दी के कवियो ने इन छदो के प्रयोग के लिए सदेश रासक जैसी कृतियो की स्फुट शैली को अपनाया है, कडवक वद्धशैली को नही जिसमे प्रत्येक छद के पश्चात् घत्ता का प्रयोग किया है।

अर्द्ध समचतुष्पदी ·

इस वर्ग के छदो मे दोहा, सोरठा और हरिपद[2] के प्रयोग इन कवियो ने किए है। दोहा(स० द्विपथक वृत्तजाति०४ २७)अपभ्र श का सवसे अधिक प्रिय, प्रचलित और प्राचीन छद है। जैन अपभ्र श की स्फुट रचनाओ, परमात्मप्रकाशादि कथाओ मे, सिद्धो की अपभ्र श रचनाओ, कीर्तिलता, सदेशरासक अपभ्र श की सभी वर्गो की रचनाओ मे दोहे का प्रयोग मिलता है। आश्चर्य की वात यह है कि अपभ्र श प्रवन्धात्मक कृतियो में दोहे का प्रयोग नही मिलता। स्वयभू और पुष्पदन्त की वृहत्काय कृतियो मे कही भी कदाचित् दोहे का प्रयोग नही मिलता

---

१. रासा के प्रयोग संदेशरासक में हुए हैं, दे० भूमिका पृ० ५३ प्लवंगम के प्रयोग भविष्यदत्त कथा में हुए हैं।

२. सभी कृतियो में दोहे और सोरठे मिलते हैं, हरिपद का प्रयोग सुजान चरित पृ० २२८ में मिलता है।

है। अन्य चरित काव्यो में भी बहुत ही विरल प्रयोग दोहे के मिलते हैं।[1] दोहे की दो दो चरणो १, २ और ३, ४ से बनी दो पक्तियो मे २४ मात्राए होती हैं, तेरह मात्रा के पश्चात् यति रहती है। दूसरे वर्ग के छद विवेचको के अनुसार दोहे की मात्रा योजना चार चरणो मे १४, १२, १४, १२ मात्रा क्रम से होनी चाहिए।[2] याकोबी ने दोहो की दो प्रकार की मात्रा सख्याओ के सबध में कहा है कि पूर्व और पश्चिम में दोहे के भिन्न भिन्न रूप प्रचलित थे इसी कारण यह भेद मिलता है, किन्तु पश्चिमी वर्ग के परिभाषाकार हेमचद्र के दोहो में भी मात्रा सख्या उनकी परिभाषा से भिन्न मिलती है[3] अत इस सबध में डा० उपाध्ये की व्याख्या अधिक युक्ति सगत है, स्वर लय की आवश्यकतानुसार एक एक मात्रा काल चरण-अत में और लग जाता है अत वास्तव में १४, १२ मात्रा काल लगता है[4]। इसी कारण हेमचद्रादि ने अपनी परिभापाओ में दोहे के चरणो में भिन्न मात्रा सख्या का निर्देश किया है। दोहे के दोनो पादो में मात्रा गणो की सख्या इस प्रकार होनी चाहिए, ६, ४, ३, ६, ४, १,[5]। किन्तु इन गणो का बिहारी जैसे कवियो ने भी सावधानी से प्रयोग नही किया है।[6] दोहा अनेक भेदो के साथ[7]

---

१. यथा, सुदर्शन चरित में अनेक छंदो के प्रयोग के साथ दोहे का भी प्रयोग हुआ है। रड्डा के साथ दोहे का प्रयोग आवश्यक है अतः दोहे के प्रयोग रड्डा के साथ मिलते हैं, स्वतत्र रूप में नहीं। इसी प्रकार सनत्कुमार चरित (हरिभद्र) में अन्य छंद के साथ दोहों का प्रयोग मिलता है।

२. छंदकोश, प्राकृत पिंगल, कवि दर्पण में प्रथम मात्रा संख्या का निर्देश किया गया है और वृत्त जाति समुच्चय, स्वयभू छद, गाथा लक्षण तथा छदोनुशासन में दूसरी मात्रा संख्या का निर्देश मिलता है। छंदो में पहिले तीसरे चरणो में १३, १३, और दूसरे चौथे चरणो में ११, ११ मात्रा वाले छंद को उपदोहक नाम दिया है, छंदो० ६.२०.९९।

३. दे० सनत्कुमार चरित की भूमिका, छदो का विवेचन।

४. दे० परमात्मप्रकाश, भूमिका पृ० २५।

५. सनत्कु० भूमिका, आल्सडर्फ, कुमारपाल प्रतिबोध, भूमिका-ग्रियर्सन, सतसैया आव् विहारी, कलकत्ता १८९६ भूमिका, पृ० १४-१७।

६. वही, पृ० १५।

७. प्राकृत पिंगल १.७८ में दोहे के भेदो की चर्चा की है।

अनेक विषयो के लिए अपभ्रंश और हिंदी मे वि० की ८वी शती से प्रयुक्त होता आ रहा है ।।

सोरठा—सोरठा के प्रयोग भी हिन्दी के अनेक कवियो ने किए हैं।[1] दोहे के चरणो का स्थान बदल कर सोरठा बनता है। परमात्म प्रकाश आदि अपभ्रंश कृतियो में सोरठा का प्रयोग मिलता है । अपभ्रंश के छद ग्रथो में अवदोहक तथा सोरट्ठ दोनो नाम मिलते है ।[2]

हरिपद—सुजान चरित में इस अर्ध समचतुष्पदी छद का प्रयोग हुआ है, प्रत्येक पाद मे १६, ११ की यदि से २७ मात्राए मिलती है। स्वयभू छद, छदोनुशासन तथा छदशेखर मे प्राप्त विद्याधरहास नामक छद का ही दूसरा नाम हरिपद है।

हिंदी में मात्रिक अर्ध समचतुष्पदियो का प्रयोग बहुत कम मिलता है। अपभ्रंश में भी इस वर्ग के छदो का प्रयोग कम मिलता है। विषम चतुष्पदियों का प्रयोग अपभ्रंश में नही मिलता है । हिंदी में भी मात्रिक सर्व पद विषम चतुष्पदियो का प्रयोग नही मिलता ।

मिश्रमात्रा बध या द्विभगी छन्द-अपभ्रंश में मात्रिक छदो का एक दूसरा वर्ग मिलता है जिसमे दो भिन्न छदो के मेल से एक नया छद बना लिया जाता है, षट्पद रड्डा, कुडलिक, काव्य आदि इस प्रकार के छद है, हिंदी के कवियों ने भी इस प्रकार के छदो का प्रयोग किया है। चारण परपरा के कवियो ने इस प्रकार के छदो को विशेष रूप से अपनाया है।

वस्तु[4]—मात्रा तथा दोहा को मिलाकर वस्तु या रड्डा छद बनता है ।[5]

---

१. पृ० रा० १.५४१, सुजान चरित पृ० १० इत्यादि, रामचरितमानस में सोरठा का अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है। दोहा चौपाई वाली प्रेमाख्यानक कृतियो में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

२. दे० कविदर्पण २.१५, प्रा० पिं० १.१७० ।

३. कहीं कहीं ऐसे छद मिलते हैं जिनके चरणो में भिन्न भिन्न मात्रा संख्या मिलती है यथा,पृ० रा० ६२.७३,तारक छंद जिसके चरणों मे मात्रा सख्या भिन्न है ।

४. पृथ्वी० रा० में इसको वयुउन नाम दिया गया है १.२, आदि।

५. दे० छंदो० ५.२३ ।

कवित्त[1]—छप्पय छद ग्रथो में वस्तुवदन तथा उल्लास को मिला कर वने छद को काव्य, या षट्पदी नाम दिया है।

कुडलिया[2]—दोहा और काव्य से बने छद को कुडलिया नाम दिया है।

अपभ्र श में वस्तु बध मे हरिभद्र की सपूर्ण कृति मिलती है जिसका एक अश 'सनत्कुमार चरित' प्रकाशित हो चुका है। छप्पय और कुडलिया का स्वयभू, पुष्पदन्त का अनुकरण करने वाले कवियो ने प्रयोग नही किया है। कुमारपाल प्रतिबोध के अपभ्र श अशो में छप्पय के प्रयोग मिलते हैं। कुडलिया का प्रयोग प्राचीन अपभ्र श कृतियो में नही मिलता। छदशास्त्र के ग्रथो (छद कोश ३१, प्रा० पि० ११४६) में उदाहरण तो मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचित मात्रा छदो के अतिरिक्त हिन्दी कृतियो मे और भी मात्रिक छदो के प्रयोग मिलते हैं जिनके प्रयोग सभव है कुछ लुप्त या अनुपलब्ध अपभ्र श कृतियो में हुए होगे और कुछ छदो की सृष्टि लोक में प्रचलित गीत लय के अनुसार कवियो ने की होगी। कडखा, वरवे आदि छद इसी प्रकार के हैं। इस सक्षिप्त चर्चा से इतना स्पष्ट हो सकेगा कि मात्रा वृत्तो का क्षेत्र बहुत विस्तृत था और उसमें कवियो के लिए बहुत अधिक स्वतत्रता थी, मात्राओ को किसी प्रकार रखा जा सकता था। अपभ्र श काव्य की मात्रिक छदो की प्रबल धारा अविच्छिन्न रूप से हिन्दी काव्य मे भी प्रवाहित होती रही। चारण धारा के कवियो ने सबसे अधिक छदो का प्रयोग किया है, सूदन ने तो छदशास्त्र का मानो ग्रथ ही लिखा है और उनके छद प्राय सभी शास्त्रानुमोदित-पद्धति से ठीक हैं। इन-कवियो ने छदो को अनेक प्रकार के नवीन नाम दिए हैं, कदाचित् नवीनता या भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए। हेमचद्र ने जो चतुष्पदियो का विस्तृत विवेचन

---

१. पृ० रा० के छप्पय को कवित्त कहा गया है, इसका रासो में बहुत प्रयोग हुआ है, अन्य नामों से भी छप्पय का प्रयोग हुआ है जैसे कवित्त विंधान जाति २१.१५, वस्तुबंधरूपक ६१.४८१७ हम्मीररासो, छंद २, ३ तथा एक स्थल पर छप्पय को दातार नाम दिया है, वही छंद ३१७-३१८। सुजान च० पृ० ६७, रास० भगवंतसिंह छद ३५, करहिया को रायसौ छंद २६, इत्यादि। परिभाषा के लिए दे० छदो० ४.७९।

२. पृ० रा० २.३७७ आदि, सु० च० पृ० ६३। रासा भगवंतसिंह छंद ४२, हिंदी के अनेक कवियो ने इसका प्रयोग किया है। परिभाषा के लिए दे० छद० ३१ ।

किया है वह छदो के प्रयोगो को सामने रखकर कदाचित् नही किया इस कारण वे सब भेद अपभ्रंश काव्य में व्यवहृत हुए नही मिलते और न उसी प्रकार हिंदी में छद विविधता होते हुए भी सब भेदो के प्रयोग नही मिलते। हिंदी मे सबसे अधिक प्रयोग समचतुष्पदी वर्ग के छदो का हुआ है।

हिन्दी के सत और भक्त कवियो ने प्राय उपर्युक्त विवेचित मात्रिक छदों के ही प्रयोग किए हैं, कबीर ने चौपाई, पादाकुलक, दोहा, सार, ताटक, मात्रिक-दंडक, रूपमाला, सरसी, शुभगीता, दिगपाल, उपमान, हरिपद, हसिनी, गीता, दोही,[1] आदि छदो का प्रयोग किया है। अन्य सतो में सुदरदास ने अनेक प्रकार के छदो का प्रयोग किया है जिनमें से अधिक सख्यक मात्रिक है, दोहा, नीसानी, झूलना, रुचिरा आदि प्रमुख हैं। भक्त कवियो में तुलसीदास ने रामचरित मानस मे पादाकुलक, चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीत, भुजगप्रपात, ताटक इत्यादि के अतिरिक्त, कवितावली मे सवैया, छप्पय, इत्यादि के प्रयोग किए हैं, सूर दास की रचना मे उपमान, कुडल, शोभन, रूपमाला, स्तर सरसी, वीर, समान, मत्त सवैया, विष्णुपद, हसाल, चद्र, भानु, हीर, सुखदा, राधिका, तोमर, चौपई, चौपाई, दोहा, रोला, गीतिका, ताटक वीर, मनहरण तथा मिश्र छदो के प्रयोग हुए हैं।[2] नन्दास आदि अन्य कृष्ण भक्त कवियो की रचनाओ मे भी सार, चौपाई, दोहा, रोला, तथा रोला दोहा मिश्रित छदो के प्रयोग मिलते है।[3] सतो और भक्तो द्वारा प्रयुक्त सभी छद मात्रिक है। उपर्युक्त छदो में से अनेक मात्रिक छद पूर्ववर्ती

---

१. दे० बीजक इलाहाबाद १९२८, विचार दास शास्त्री रमेनी खंड में चौपाई, पादाकुलक, दोहा के प्रयोग।
सार शब्द १,२ आदि में प्रयुक्त। ताटक शब्द १७ में १६, १८ मात्रा अंत में रगण, मात्रिक दंडक शब्द ३५, २२, १६, ३८ मात्रा, अंत में लघु गुरु, रूपमाला शब्द ६०, १४, १० पर यति २४ मात्रा, सरसी, शुभगीता, शब्द ८७, दिगपाल शब्द १०२, उपमान शब्द १४, हरिपद हिंडोला १, हसिनी, पृ० ३७१, छंद ३७, गीता, पृ० ३७२, छंद ४१ आदि, दोही, पृ० ३७२, छद ४४ आदि।

२. दे० सूरदास डा० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रयाग, '५०। पृ० ५७१ आदि, पदो पर आगे विचार किया गया है।

३. दे० अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय डा०, दीनदयालु गुप्त, प्रयाग २००४ भाग २, पृ० ७६१-२ तथा ८८३-७।

अपभ्रंश साहित्य में प्रयुक्त हुए छदो के ही दूसरे नाम है। यह सभी छद मात्रिक सम द्विपदी या चतुष्पदी वर्ग के हैं। कुछ के सबध मे पीछे विचार किया जा चुका है। इन कवियो ने वर्ण वृत्तो का प्रयोग बहुत ही कम किया है, और यह सस्कृत के छद ग्रथो के अध्ययन की ओर उन्मुख न होकर प्रचलित काव्यपरपरा का अनुसरण करने के कारण लगता है। केशवदास मध्ययुग के एक ऐसे कवि है जिन्होंने प्रचलित काव्यधारा की स्वाभाविकता को छोडकर छद ग्रथो का सहारा लेकर नाना प्रकार के छदो के प्रयोग किए हैं। उन्होने निम्न मात्रिक छदो के प्रयोग किए हैं, गाता (गाथा)घत्ता, रोला, चतुष्पदी, प्रज्झटिका, अरिल्ल, पादाकुलक, मधुभार, आभीर, हरिगीत, त्रिभगी, हीरक, मरहट्टा, सोरठा, तोमर, चचरी, डिल्ला, गीतिका, मोहन, विजय, चौपइया, पदमावती, दुर्मिल मदन-मनोहरदडक, मदनहारा, रूपमाला, जयकरी, चौबोला, झूलना, हरिप्रिया, रूपक्रान्ता, छप्पय, कुडलिया, गाथा, घत्ता जैसे प्राकृत अपभ्रंश के छदों से लेकर मिश्र छप्पय कुडलियाँ तक के प्रयोग मिलते है। केशव के इन मात्रिक छदो के प्रयोगो में शास्त्रीय पक्ष का ध्यान रखा गया है। नवीनता उनमे नही है। लोक से ग्रहीत कडवा जैसे समकालीन कवियो द्वारा प्रयुक्त छद उनकी कृति में नही मिलते। केशव के छदो पर अपभ्रंश के छदो का सीधा प्रभाव नही पडता प्रतीत होता।

मात्रिक छदो के प्रयोग में एक बात ध्यान देने योग्य है। अपभ्रंश कवियो द्वारा प्रयुक्त २४ मात्राओ से अधिक के छदो के चतुष्पदी या षटपदी होने का निर्णय करना कठिन हो जाता है, हिंदी में भी यह कठिनाई मिलती है। छदशास्त्र की अनुमति दोनो के पक्ष में मिलती है। यति से उनको चतुष्पदी या षटपदी दोनो ही कहा जा सकता है। एक उदाहरण से स्पष्ट होगा। पुष्पदन्त का एक घत्ता इस प्रकार है।

चउगइहिं मरतें पुणु पुणु हुंति विहसिवि देवें वुत्तउ
सुहदुक्खणिरंतरि तिजगब्भंतरि जीवें काइ स भुत्तउ। ७.११।

उपर्युक्त छद में १०, ८, १२ मात्रा परयति मिलती है, प्रत्येक पाद में यति के कारण तीन चरण हो जाते हैं। छदकोश, प्राकृत पिंगल के अनुसार इसको ३० मात्रिक समचतुष्पदी कहा जायेगा तथा इसको षट्पदी भी कहा जा सकता है,[1] इसी प्रकार का एक प्रयोग हिन्दी का उद्धृत किया जा सकता है—

---

१. कविदर्पण २.२९ में १०, ८, ११ यति वाले घत्ता को षटपदी कहा गया है।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कता ।
रामचरित मानस १ १८६ ।

इस पद्य मे भी १०,८,१२ पर यति मिलती है, कवि द्वारा छद की १६ पक्तियाँ निर्मित है अत इसको चतुष्पदी और षट्पदी दोनो ही कहा जा सकता है । यति ही लयात्मक मात्रिक और हिन्दी छदो के पदो को निश्चय करने का एकमात्र साधन है । अपभ्र श के मात्रिक छदो के साथ साथ उनकी सभी स्वतत्रताए हिन्दी में भी आईं । सत, भक्त, चारण, तथा रीतिकाव्यधारा के बहुसख्यक छद अपभ्र श से ही आए है, सत और भक्त कवियो मे अपभ्र श के कवियो के समान ही कम और अति प्रचलित छदो के प्रयोग मिलते हैं । चारणकवियो के कुछ अपने छद हैं और छद विविधता छद प्रियता उस धारा के कवियो की एक विशेषता प्रतीत होती है । पृथ्वीराज रासो मे प्राकृत और अपभ्र श के समान ही मौलिक छदो के प्रयोग मिलते है, सूदन ने चद बरदाई की कृति को पढकर छदविविधता का और भी प्रदर्शन किया है ।

वर्णिक वृत्त :

वर्णिक वृत्तो का प्रयोग अपभ्र श के चरित काव्यो मे अधिक मिलता है । परमात्मप्रकाश में एक स्रग्धरा और एक मालिनी वर्ण वृत्त का प्रयोग मिलता है जिनकी भाषा अपभ्र श नही है, सदेश रासक में प्रयुक्त २२ छदो मे से केवल ३ छद वर्ण वृत्त हैं जो एक एक बार प्रयुक्त हुए हैं ।[1] पुष्पदन्त के महापुराण, नयनदि के सुदर्शन चरित, तथा भविष्यदत्त कथा जैसी कृतियो मे वर्ण वृत्तो के प्रयोग मिलते हैं । वर्णवृत्तो के प्रयोग में कोई नवीनता नही मिलती । अपभ्र श के कवियो ने वर्णवृत्तो में भी अन्त्यनुप्रास का ध्यान रखा है, गणो के निश्चित क्रम मे कुछ परिवर्तन करना सभव नही था । वास्तव में वर्णिक वृत्तो के प्रयोग के रूप मे उन्होने सस्कृत छद शैली को अपनाया है । किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि इन कृतियो में भी वर्ण वृत्तो की अधिकता है । पद्धडिया शैली में जो वर्ण वृत्त मिल सकते थे उनको ही इन कवियो ने अपनाया है । अत एक गण के छदो का कही प्रयोग नही मिलता, दो गण तथा तीन गण के छदो का भी प्रयोग बहुत कम हुआ है, चार गण के समचतुष्पदी छदो का प्रयोग अधिक हुआ है और अपभ्र श के अन्य छदो के समान ही इन चतुष्पदी छदो का

१- मालिनी पद्य १००, नन्दिनी पद्य १७१ भमरावलि पद्य १७३ ।

भी प्रयोग द्विपदी के समान हुआ है।[1]

हिंदी की सत, भक्त, प्रेमाख्यानक काव्यधारा की कृतियो मे वर्णवृत्तो का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। तुलसीदास के 'मानस' में कदाचित केवल तीन चार वर्णवृत्तो का प्रयोग मिलता है, भुजगप्रयात ७ १०८, तोटक ७ १०१ नाराचक ३ ३। अन्य कवियों में से केवल सुदरदास ने कुछ कदाचित छ वर्ण वृत्तो का प्रयोग किया है। वर्णवृत्तो का प्रयोग चारण धारा के कवियो विशेषकर पृथ्वीराजरासोकार और सूदन ने और केशवदास ने अधिक किया है। पृथ्वीराज रासो और सुजान चरित के अनेक वर्णवृत्त तो अपभ्रंश कवियो द्वारा प्रयुक्त वृत्त ही हैं[2] रामचद्रिका में प्रयुक्त छदो में 'श्री' छद जैसे प्रयोग कवि के छदशास्त्र प्रेम को व्यक्त करते हैं। लगभग १२० छदो का प्रयोग कवि ने किया है जिनमें से ७० के लगभग वर्णवृत्त हैं। जो हो इन छदो के प्रयोग में कोई चमत्कार या नवीनता नही है।

पद .

हिन्दी की पद (स० पद्य) शैली मे छद का एक नया रूप मिलता है। पीछे कहा गया है कि अपभ्रंश मे चतुष्पदी छदो का द्विपदी या

---

१ यथा पुष्पदन्त ने पहिली सन्धि के १० वें कडवक मे स्रग्विणी छंद का प्रयोग किया है जिसमें २६ चरण हैं इस प्रकार द्विपदी के समान प्रयोग किया है। गणो के क्रम का इन कवियो ने अवश्य पालन किया है।

२. पृ० रा० मे प्रयुक्त कुछ वर्ण वृत्त इस प्रकार हैं ताटक १.१, श्लोक १.७७ विराज शंखनारी १.४५, भुजगप्रयात १५-१०, शार्दूल विक्रीडित, १.५३.४, दडक, मोदक ३७.१२११ ८, मलया (स्रग्विणी) १.२५१, नाराच प्रमाणिका १७ ,५० आदि, भ्रमरावली (तोटक) मौक्तिकदाम १२.३०, मोतीदाम २ ३५५ आदि कंठ मालिनी ४५.११८ १२० इत्यादि छद प्रयुक्त हुए हैं।

रामचंद्रिका और सुजान चरित में भी अनेक वर्णवृत्तो का प्रयोग हुआ है, कुछ इस प्रकार है रामचंद्रिका; श्री, सार, रमण, तरणिजा, प्रिया, सोमराजी, कुमारललिता, नगस्वरूपिणी, हीरक, हंस, मालती, समानिका, घनाक्षरी, दोधक, तोटक, सुंदरी, पंकजवाटिका, चामर, निशिपालिका, सुप्रिया, नराच, शशिवदना, चंचरी, मल्ली, गीतिका, तुरंगम, कमला, संयुता, मधु, वधु, मोदक, तारक, कुसुम विचित्रा, कलहंस, विजय, स्वागता, चित्रपदा, मोटनक, अनुकूला, भुजंगप्रयात, तामरस, मत्तगयंद, मालिनी, विशेषक, चंद्रकला, सवैया, किरीट सवैया, मदिरा,

कभी कभी एक पदी के रूप में प्रयोग होने लगा था। छद के एक चरण का भी प्रयोग कवि स्वतत्रता से कर सकते थे। हिन्दी के पदो की टेक या स्थायी या ध्रुवक के इतिहास पर इस से कुछ प्रकाश पड़ता है।[1] अपभ्रश की सभी चरित कृतियो में सधि के प्रारभ में ध्रुवक या ध्रुवा के प्रयोग की प्रथा मिलती है। इस ध्रुवक में अत्यत सक्षेप में सधि की समस्त कथा के सार का सकेत रहता है। और प्रत्येक कडवक के पश्चात् लघु रचनाओ को गाते समय ध्रुवक को दुहराया जाता होगा। छद के एक चरण को ही इस आवृत्ति के लिए पर्याप्त समझा जाता होगा। अपभ्रश में दो छदो के मेल से निर्मित मिश्रवध या द्विभगी, त्रिभगी आदि का उल्लेख किया जा चुका है। पद की वनावट मे छद की दृष्टि से यही तत्व मिलते हैं। टेक प्राय छद के एक चरण के रूप मे रहती है, पूरे पद का उसमें सार सकेतित रहता है। और अनेक छदो को कभी कभी एक पद में मिला भी दिया जाता है।

राग तरगिणीकार[2] ने रागो में गेय प्रत्येक पद्य के लिए कुछ मात्रा योजना निर्धारित की है। सगीत के मार्ग शास्त्रीय और देशी लोक प्रचलित दो भेदो का उल्लेख करते हुए उन्होने पदो को देशी सगीत के अतर्गत माना है। विद्यापति

तन्वी, सुमुखी, वसततिलका, सारस्वती, मत्तमातंग, अनंगशेखर दंडक, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, रथोद्धता, चंद्रवर्त्म, वंशस्थ, विलम, प्रमिताक्षरा, स्रग्विणी, मनहरण, मनोरमा, गगोवक, गौरी, हरिलीला, मोतीदास, मल्लिका और उपजाति। इतने वर्णिक छंदों से स्पष्ट है कि केशवदास का प्रधान उद्देश्य छंद ग्रंथो के सभी छंदों का प्रयोग करना था किसी साहित्यिक परंपरा का अनुकरण वे नहीं करना चहते थे।

सुजान चरित मे कवित्त, अनुगीत, भुजंगी, लच्छीधर, संजुता, नाराच, मुक्तादाम, भुजगप्रयात, घनाक्षरी, प्रमानिका, मालती, कंद, मल्लिका, हरी, सुंदरी, इंद्रवज्रा, हीरक, दोधक, विजोहा, कलहंस, महालक्ष्मी, तिलक, मंथान, बसंत तिलका, गंगोवक, मालिनी, निशिपालिका, तोटक, समानिका, मोदक, मनोरमा, विद्वन्माला, चपला, सारवती, स्वागता, नील और हारी, केशवदास और सूदन की कृतियो को छद शास्त्र की अपूर्व कृतियां कहा जा सकता है।

---

१. भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त ध्रुवागीतों से भी ध्रुवक का संबंध जोडा जा सकता है।

२. लोचन कृत रागतरंगिणी, दरभंगा, १९९१ वि०।

के कुछ रागो को लेकर उन्होंने उनके छद लक्षणो की भी चर्चा की है।[1] किन्तु जो छद क्रम उन्होंने विद्यापति के रागो में दिखाए हैं सूरदास के पदो में वह ठीक नही बैठता और फिर प्रत्येक राग के छद का उस प्रकार क्रम निश्चित करना सभव नही दिखता। जैसे रामकरी रागिनी के लिए उन्होंने रामकरी छद का मात्रा क्रम इस प्रकार बताया है कि प्रथम पद में २५ मात्रा, दूसरे में २६, फिर २७ और २८ हो, सूरसागर की रामकली रागिनियो से युक्त पदो में इस प्रकार का मात्रा क्रम नही मिलता।[2] लोचन का यह विवेचन किसी सिद्धान्त पर आधारित नही है, विवेचित रागो के लिए केवल मात्रिक छदो का ही विधान निश्चित किया है। रागो में बद्ध गेय कविता वर्ण वृत्तो के नियत्रणो को नही सहन कर सकती। सूरदासादि के पदो में मात्रिक छंदो का ही प्रयोग मिलता है। लोचन के विवेचन से विद्यापति के पदो के सबध में भी यही सिद्ध होता है।

रीतिकालीन कवियो ने सवैया कवित्त आदि के जो प्रयोग किए है उनमें से सवैया के दुर्मिला का छद ग्रन्थो में उल्लेख मिल जाता है,[3] उसी प्रकार की लय वाले कुछ छद भी मिलते हैं किन्तु यह विकास अपभ्र श काल के पीछे का है ऐसा प्रतीत होता है। यही रास रचनाओ में प्रयुक्त ढाल आदि के सबध में कहा जा सकता है।

अलंकार—प्राकृत और अपभ्रंश के कवियो के अलकार विधान मे अप्रस्तुत सबधी कुछ स्वतत्रता मिलती है। इन कवियो ने परपरा से प्राप्त प्राचीन अप्रस्तुत विधान को भी अपनाया है और अपने चारो ओर के परिचित जीवन से भी अप्रस्तुत विधान के लिए सामग्री का चयन किया है जिसका सस्कृत साहित्य शास्त्र द्वारा ग्रामीण कहकर सदैव तिरस्कार होता रहा है। अपभ्र श कवियो ने काव्य को सामान्य जन प्रिय बनाने के लिए इन परिचित काव्य उपकरणो को कदाचित् अपनाया होगा। इस दृष्टि से प्राकृत और अपभ्र श काव्य को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। अलकृत और लोकप्रिय, सेतुबध, लीलावती कथा, स्वयभू की कृतियाँ, पुष्पदन्त का महापुराण, नयनन्दि आदि की कृतियो में अलकृत वातावरण मिलता है। गाथा सतसई, योगीन्द्र, रामसिंह तथा कुछ चरितकाव्य, सदेशरासक आदि मे सामन्य लोकप्रिय वातावरण भी मिलता है। हिन्दी के

---

१. दे० रागतरंगिणी पृ० ३९ और आगे।

२. वही पृ० ५१।

३. छंदकोश १६, प्रा० पैं० १.१९६-१९७।

कवियो मे भी सामान्य जीवन से परिचित उपकरणो को काव्य मे स्थान देने की यह प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रकार अपभ्र श कवियो ने कल्पना और कवि परपरा से सीमित अप्रस्तुत क्षेत्र को विस्तृत किया। सफल कवियो ने परिचित जीवन की वस्तुओ को ग्रहण करके कविता मे सर्वग्राह्य और कही कही अधिक सुदर बना दिया है।[1]

अपभ्र श के कवियो ने, विशेषकर के साधको ने जैसे सरल रूपको का प्रयोग किया है उसी प्रकार के जुलाहे आदि के रूपक कबीर आदि सतो की कविता मे भी मिलते हैं। हिन्दी के कवियो को अपभ्र श कवियो की इस प्रकृति से प्रोत्साहन अवश्य मिला होगा या सभव है दोनो ही वर्ग के कवियो को अपने सामान्य पाठको के कारण सरल कल्पना शैली का सहारा लेना पडा हो।

अपभ्र श के कवियो मे एक दूसरी प्रवृत्ति मिलती है, ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग की। ध्वनि के अनुकूल शब्द बनाकर प्रभाव की पूर्ण व्यजना के लिये यह कवि निरर्थक ध्वनियो का निर्माण करके प्रयोग करते है यथा भौरो की गुजार के लिए 'गुमुगुमत' का प्रयोग

धवलकुसुममंजरिश्रयमालहिं गुमुगुमंतमहुलियगेयालहिं,

महापुराण २८.१५.३।

घवघवघवंत का प्रयोग—घवघवघवत पयणेउराहं,

वही ८१.५.४।

युद्ध उत्साह के वर्णन मे इस प्रकार के प्रयोग मिलते है —

अतइ लबंतइ लललल्लति रसइं पवहंतइं झलझलंति
महि खिवडमाण हय हिलिहिलंति सरसलिय गयवर गुलुगुलंति
पहरणइ पडंतइ घगधगति विच्छिण्णइं कयवइं जिगिजिगंति,

वही, ८४.५।

वर्षा के वर्णन मे झलमलइ, तडयडइ जैसे शब्द मिलते है। सगीत आदि के लिए वाद्य यत्रो की ध्वनि से साम्य रखती हुई ध्वनियाँ बनाई गई है, पुष्प सुगन्धि के लिए 'महमहतु' जैसे शब्दो का निर्माण किया गया है

दुमुदुमिय गंभीर दुंदुहि विसेसाइं, धुंधुमउ वाहं ढड्ंढ तुटिउलाइं।
डमडमिय डमरुयइं डं डं तडक्काइं, थरथरिरे करवोह सद्दाहं।

सुदर्शन चरित ७.७।

---

१. दे० पीछे, स्वयंभू, पुष्पदंत, नयनन्दि से संबंधित प्रकरण।

हिन्दी के कवियो मे भी यह प्रवृत्ति मिलती है। सूरदास के 'किलकत' डगमगत, झरहरात आदि शब्द इसी प्रकार के हैं

झरझराति, झहराति लपट अति। सूरसागर सभा. सं. पद १२.११।

झरहरात बनमाल। वही, १२१२।

बरत बनबास, थरहरत कुस काँस..

भहरात, झहरात अररात तरु.. वही १२१४।

चारण धारा के कवियो की रचनाओ मे इसका अधिक प्रदर्शन हुआ है।[1]

---

१. दे० सुजान चरित पृ० १३६, १४३ आदि पर अररान, थररान, सररान, भररान, हररान जैसे प्रयोग।

३

कथानकों पर प्रभाव

विषय प्रधान मध्ययुगीन हिन्दी काव्य साहित्य को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। पहिले वर्ग मे उस साहित्य को रख सकते हैं जिसमे पौराणिक कथाओ और पौराणिक पात्रो को वर्ण्य विषय के रूप मे अपनाया गया है। दूसरे वर्ग मे उस साहित्य को रख सकते हैं जिसमे लोक कथाओ या 'प्राकृत जनो' को काव्य का विषय बनाया है। राम और कृष्ण काव्य पहिले वर्ग से सबध रखते है और वीर काव्य, रासक रचनाएँ, प्रेमाख्यानक काव्य दूसरे वर्ग से सबध रखते है। विषयि प्रधान काव्य के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नही है उसमे कवि का अपना व्यक्तित्व ही प्रधान रहता है। प्राकृत अपभ्र श साहित्य का जो विवेचन पीछे किया गया है उसमे भी दो प्रकार का साहित्य मिलता है, एक की पौराणिक विषयो को आधार मान कर रचना हुई है दूसरे की(लोककथाओ की)लोक मे प्रसिद्ध मानवो को आधार मान कर रचना हुई है। पिछले अध्याय मे यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्राप्त प्राकृत और प्रधान रूप से अपभ्र श साहित्य का अधिकाश भाग जैन सप्रदायानुयायियो द्वारा रचित ही प्राप्त हुआ है। जैन कवियो ने जैन पुराणो से अपने काव्य विषयो को ग्रहण किया है और लोक कथाओ को भी जैन धर्म का रूप देकर अपनाया है। प्राकृत में सेतुबन्धादि जैसे पौराणिक विषयो से सबधित ब्राह्मण सप्रदायानुयायियो की रचनाएँ मिलती है उसी प्रकार अपभ्र श मे भी पौराणिक चरित्रो और कथाओ मे मौलिक परिवर्तन करके जैनेतर कवियो ने रचनाएँ की होगी जैसा कि अनुपलब्ध अब्धिमथन आदि काव्यो के नामो के उल्लेख के आधार पर अनुमान किया जा सकता है। अत ब्राह्मण पौराणिक विषयो को आधार मानकर रचे गए हिन्दी काव्य के कथानको पर जैन प्राकृत और अपभ्र श रचनाओ मे प्रयुक्त विषयो का कोई प्रभाव पडा होगा ऐसा सभव नही प्रतीत होता, भले ही जैन कवियो ने रामायण और महाभारत की कथाओ से सबधित ग्रथ लिखे है। अतएव राम साहित्य और कृष्ण साहित्य पर कथानुसरण की दृष्टि से उपलब्ध जैन प्राकृत अपभ्र श

साहित्य का कोई प्रभाव नही लक्षित होता। जैनेतर सेतुबन्धादि काव्यो से सभव है कुछ कवियो को कुछ प्रेरणा मिली हो लेकिन वह भी बहुत सभव नही लगता।

लोक कथाओ को अपभ्र श साहित्य मे बहुत स्थान मिला है और अनेक हिन्दी कवियो द्वारा ग्रहीत कथाओ के समान ही पूर्ववर्ती अपभ्र श मे भी कथानक मिलते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यो पर इस प्रकार का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। प्राय सभी प्रेमकथाओ के 'कथाभाव'(मोटिफ)एक ही प्रकार के है। और इसी प्रकार के कथाभाव अपभ्र श की कृतियो मे भी मिलते हैं। 'कथाभावो' के अतिरिक्त हिन्दी कृतियो मे प्राप्त कुछ कथाएँ पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ मे भी मिलती हैं। जायसी की प्रेमकथा मे पद्मिनी को सिंहल द्वीप की बताया गया है। सिंहल द्वीप की सुदरियो को लेकर जायसी के पूर्व अनेक प्रेमकथाओ की सृष्टि हुई है। हर्ष(सातवी शती ई०)ने अपनी कृति रत्नावली नाटिका मे रत्नावली को सिंहल के राजा की पुत्री बताया है।[1] कौतूहल ने अपनी कृति की नायिका लीलावती को सिंहल के राजा की अपूर्व सुदरी राजकुमारी के रूप मे चित्रित किया है जिसका विवाह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन से कवि ने कराया है।[2] लीलावती को प्राप्त करने के लिए सातवाहन को सिंहल नही जाना पडता। अनेक राजाओ के चित्रो मे सातवाहन के चित्र को देखकर वह उस पर मुग्ध हो जाती है। आसक्ति के कारण उसे सातवाहन का स्वप्न मे दर्शन होता है और वह प्रेम व्यथा का अनुभव करने लगती है। जब उसके पिता को यह ज्ञात होता है तो वह उसे सादर सातवाहन के पास भेज देता है।[3] सातवाहन के मत्री भी इस चेष्टा मे थे कि सातवाहन का विवाह सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री से हो सके जिससे बिना युद्ध के सिंहल-राज उसका आधिपत्य स्वीकार कर सकें। प्रेम कथाओ मे प्रेमी प्रेमिका के प्रेम की परीक्षाओ के प्रसग कवियो ने अवश्य रखे हैं और नायक की वीरता का भी प्रदर्शन किया है। लीलावती कथा मे भी सातवाहन और लीलावती एक दूसरे के प्रति दृढ हैं और सातवाहन पाताल मे जाकर सिद्धि प्राप्त करता है तथा कठोर दुर्दमनीय भीषणानन को मारकर लीलावती से विवाह करता है।[4]

भविष्यदत्त कथा मे अनेक व्यापारी समुद्रस्थित द्वीप मे व्यापारार्थ जाते हैं

---

१. रत्नावली नाटिका, अंक ४।

२. दे० पीछे प्राकृत अध्याय में कौतूहल।

३. वही, पद्य ८०९–८६८।

४. वही, पद्य, १००८-६३ तथा ११७०-१२२६ और १२८३-१३२८।

और रूपवान् भविष्यदत्त उस द्वीप की सुन्दर कुमारी भविष्यानुरूपा से विवाह करके प्रभूत धन लेकर लौटता है। मार्ग मे समुद्र मे वात्याचक्र भी आता है और बधुदत्त भी बाधक के रूप मे उपस्थित होता है। फिर दोनो प्रेमी प्रेमिका मिल जाते है और गजपुर लौट आते है। दूर द्वीप की इस सुंदरी भविष्यानुरूपा को न देने पर पोदनपुर का राजा गजपुर के राजा पर चढाई करता है किन्तु वह भविष्यदत्त के पराक्रम के सामने पराजित हो जाता है। कवि ने इस आक्रमण को दो उद्देश्यो की पूर्ति के लिए रखा होगा, भविष्यदत्त की वीरता दिखाने के लिए और भविष्यानुरूपा के सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए।[1]

कनकामर के करकडुचरिउ मे करकडु सिहल जाता है और रतिवेगा से परिणय करता है और जब वे लौट रहे थे तब एक मत्स्य आकर दोनो को अलग कर देता है और एक विद्याधरी आकर उन्हे बचाती है। और रतिवेगा की पद्मावती देवी सहायता करती है। अत मे दोनो मिल जाते है।[2]

लाखू के जिनदत्त चरित(१२७५ वि०)मे जिनदत्त अनेक व्यक्तियो के साथ मणियो लेने के लिए सिंहल द्वीप पहुँचता है।[3] और वीरतापूर्वक भयकर सर्प को मारकर राजकुमारी श्रीमती (लक्ष्मीमती)से विवाह करता है तथा अन्य द्वीपो मे जाकर और कुमारियो से भी परिणय करता है। जिनदत्त को उसका एक दुष्ट मामा समुद्र मे ढकेल देता है और स्वय लक्ष्मीमती के पास जाकर प्रेम प्रस्ताव करता है। वह दृढ रहती है और अत मे विमलमती की सहायता से पति से मिलती है।

विक्रम की पद्रहवी शती की जिनहर्षगणि की प्राकृत कृति रत्नशेखर नरपति कथा मे रत्नपुरी के राजा रत्नशेखर का विवाह सिंहल द्वीप की राजकुमारी रत्नवती से होता है। रत्नशेखर स्वय सिंहल जाता है और रत्नवती का दर्शन राजा मदिर मे करता है जहाँ वह कामदेव की पूजा के लिए आई थी। राजा को किसी प्रकार का युद्ध नही करना पडता है, प्रभूत धन पाकर वह लौटता है। प्रेम की परीक्षा लेने के लिए कवि ने रत्नवती का अपहरण चित्रित किया है किन्तु अत मे वह सब इद्रजाल सिद्ध होता है।[4]

विक्रम की पद्रहवी शती की एक दूसरी रचना नरसेन कृत श्रीपाल चरित

---

१. दे०पीछे जैन अपभ्रंशप्रबन्धात्मक रचनाएं अध्याय में धनपाल का प्रकरण।
२. दे० करकंडुचरिउ, करंजा १९३४ सधि ७ कडवक ५-१६।
३. कयमणिपईयि, सिंहल पईवि। जिनदत्त चरिउ हस्तलिखित प्रति ३.२१।
४. दे० पीछे जैन प्राकृत अध्याय में जिनहर्षगणि का प्रकरण।

है जिसमें श्रीपाल एक द्वीप में जाकर वहाँ की सुन्दर कुमारी रत्नमंजूषा से विवाह करता है। धवल सेठ कपट करके श्रीपाल को समुद्र में ढकेल देता है और रत्नमंजूषा को प्रसन्न करना चाहता है, किन्तु जल देवी प्रकट होकर उसकी सहायता करती है और अंत में वह अपने पति से मिलती है। श्रीपाल एक दूसरे द्वीप में पहुँचता है और आठ कुमारियों को समस्यापूर्ति में हराकर विवाह करता है।[1] एक समस्या इस प्रकार है, कुमारी सौभाग्यगौरी समस्या रखती है 'जहँ साहसु त सिद्धि।[2]' और श्रीपाल उसकी पूर्ति इस प्रकार करता है

सत्तुसरीरहं आइत्तउ, दइयाइत्ती बुद्धि ।
फंत सहाउ म छंडियइं, जं साहसु त सिद्धि ॥

इन आठ कुमारियों में से एक का नाम पद्मावती भी है, उसकी समस्या इस प्रकार है 'काइ विढत्तउ तेण' और श्रीपाल उसकी इस प्रकार पूर्ति करता है :

कुंती जाए पंच सुव, पंचहु पंच पिएण ।
गंधारि सउ जाइयउ, काइ विढत्तउ तेण ॥

सोलहवीं शती विक्रम में वर्तमान कवि माणिक्कराज ने अपनी कृति में सिंहल की पद्मिनी का उल्लेख किया है।

णं पउमिणि सिंहलदीव आय ।

हस्तलिखित प्रति १.१९ ।

नायिका के नखशिख वर्णन में सिंहल की पद्मिनी को रूपवती स्त्रियों का प्रतीक माना है। अपनी दूसरी कृति अमरसेन चरित में सिंहल को धन का प्रतीक माना है

सिंघल कुवलय हुवि सेयभाणु

हस्तलिखित प्रति १.४ ।

अर्थात् 'वह सेठ सिंहल कुवलय के लिए भानुवत् था।'

सिंहलद्वीप, ऊपर के कतिपय उल्लेखों से प्रकट होगा, कवियों का अत्यन्त

---

१. दे० पीछे जैन अपभ्रंश प्रबन्धात्मक रचनाओं के अध्याय में नरसेन का प्रकरण।

२. तुलना कीजिए : जइ साहसहु न सिद्धि हो, रोष करिव्वउं काह ।
होज होसल एक्क पइ वीर पुरिस उच्छाह ।
कीर्तिलता, पृ० ६४ डा० सक्सेना का संस्करण

प्रा० अ० सा० १८

प्रिय विषय रहा है। कथाओ के लिए अनेक कवियो ने उसका उपयोग किया है। प्रभूत सपत्ति अर्जित करने के लिए, सुदरी स्त्रियो के लिए तथा नायको के लिए एक उपयुक्त पराक्रम स्थल के लिए कवियों का ध्यान वारवार सिंहल द्वीप की ओर गया है। सिंहल द्वीप की कथा अनेक शतियो तक लोक का प्रिय विषय वनी रही। हर्ष के समय से लेकर सोलहवी शती तक सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श कवियो ने नाना प्रकार से सिंहल को कथा विषय वनाकर अपनी कृतियो को मडित किया है। ऐसे लोकप्रिय 'कथाभाव' को जायसी ने भी अपनी कृति पद्मावत मे अपनाया। रत्नसेन ऐतिहासिक पात्र रहा हो, सिंहल की अपूर्व सुदरी पद्मिनी निश्चित ही जायसी को अपने पूर्ववर्ती साहित्य से मिली है। रत्नसेन और अलाउद्दीन से कथा निर्वाह तथा प्रेम परीक्षा के लिए सबध जोडना आवश्यक था। जायसी के पहिले तथा समकालीन और पीछे के समस्त प्रेम कथा लेखको ने किसी न किसी इसी प्रकार की कथा को अपनाया है। भविष्यदत्त कथा, करकडुचरित, नरपति कथा, श्रीपालचरित के कथाभावो और जायसी तथा अन्य कथाओ के 'कथा भावो' मे इतना अधिक साम्य है कि कही कही तो शब्दावली भी एकसी ही मिलती है। कुछ उदाहरण देख सकते हैं।

जायसी की कृति के 'जोगी खड' मे योगी का वर्णन मिलता है, उसके शिर पर जटा, अग मे भस्म थी और मेखला, सिंघी, चक्र धधारी, योगपट्ट, रुद्राक्ष आदि वह धारण किए था।[1] इसी प्रकार पाशुपत तथा कौलाचार्यो के वर्णन लीलावती कथा,[2] कर्पूर मजरी[3], जसहर चरिउ[4] मे मिलते है। सभी कृतियो में योगी का वर्णन वहुत मिलता है। नर सेन के श्रीपाल चरित मे समस्यापूर्ति का प्रसग मिलता है। माधवानल कामकदला[5], ढोलामारूरादूहा[6] मे भी इस प्रकार के प्रसग मिलते

---

१. जायसी ग्रंथावली. जोगी खंड १, अन्य प्रेम कथाओं के 'कथाभाव' प्रायः इसी प्रकार के हैं अतः पद्मावती को प्रधान मानकर विश्लेषण किया गया है। प्रेमादि का विकास सभी में प्रायः एकसा है, सभी साहसपर्ण कथाएं है।

२. लीलावती कथा, पद्य २०४-५।

३. कर्पूरमंजरी प्रथम जवनिकान्तर-भैरवानन्द का वर्णन।

४. जसहरचरिउ, कौलाचार्य का वर्णन १.६।

५. माधवानल कामकंदला, प्रबंध। अंग ८ पद्य १४६-१८५।

६. ढोला मारूरा दूहा, दोहा ५६९-५८०।

हैं, जायसी की कृति में श्रीपाल चरित्र की समस्या का एक पद्यात्म इस प्रकार मिलता है।[1]

सत्य जहाँ साहस सिधि पावा।

राजा सुआसंवाद, खंड १।

जायसी की कृति में पद्मावती और रत्नसेन की भेंट वसंत ऋतु में विश्वनाथ के मंदिर में होती है। रत्नशेखर नरपति कथा में राजा को अपनी प्रेमिका का दर्शन कामदेव के मंडप में होना है और संभवतः वसंत ऋतु में ही कामदेव की पूजा होती होगी। इस प्रकार यह कथाभाव भी प्रेम कथाओं का एक अनिवार्य अंग था। समुद्र में राजा 'बोहित्त' का नष्ट होना और पद्मावती की लक्ष्मी द्वारा सहायता भी उपर्युक्त अनेक कृतियों में व्यवहृत इस प्रकार के प्रसंगों में मिलती है। जायसी की कृति के समान ही प्रसंग अन्य प्रेमकथाओं में मिलते हैं। इन सभी प्रेमकथाओं के 'कथाभाव' पूर्ववर्ती अपभ्रंश कृतियों के कथाभावों के समान ही हैं। अपभ्रंश कवियों ने संभव है किसी लोक परंपरा से इन कथाओं को लिया होगा और हिन्दी कवियों ने भी लोकपरंपरा तथा पूर्ववर्ती साहित्य से प्रभावित होकर इन कथाओं को अपनाया होगा।

प्रेमकथाओं के अतिरिक्त अन्य काव्यधाराओं पर अपभ्रंश काव्य के कथानकों का प्रभाव नहीं प्रतीत होता। कृष्ण काव्य का जो रूप हिन्दी के भक्तियुग में मिलता है अपभ्रंश के कुछ अंशों को पढ़कर कभी कभी इसका स्मरण हो आता है। गाथा सप्तशती के कुछ पद्यों में राधा, कृष्ण और गोपियों के उल्लेख मिलते हैं।[2] जिस मुक्त और स्वच्छंद ढंग से यह उल्लेख मिलते हैं वह मुक्त वातावरण संस्कृत साहित्य में प्राप्त कृष्ण चरित्र में नहीं मिलता। स्वयंभू ने किसी प्राचीन कवि का एक उद्धरण दिया है जिसमें कृष्ण की राधा के प्रति आसक्ति का चित्रण है।

सव्व गोविउ जइवि जोएइ, हरि सुट्ठवि आमरेण,
देइ दिट्ठि जहिं कहिंवि राहो।
को सक्कइ संवरेवि, डड्ढणअण णेहें पलोट्टउ।

स्वयंभू छंद, ज० बू० बं० ५.३ पृ० ७४।

---

१. देखिए पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड ३, ४।

२. यशोदा गोपी का उल्लेख गाथा ७०४४ में, गोपीकृष्ण, राधाकृष्ण के उल्लेखों के लिए गाथा २.१४, २.१२, १.८९, ५.४७, २.२८ इत्यादि।

इसी पद्य को हेमचद्र ने प्राकृतव्याकरण मे इस प्रकार किंचित् परिवर्तित रूप मे उद्धृत किया है .

एक्कमेक्कउं जइवि जोएदि हरि सुट्ठु सव्वायरेण
तो वि द्रेहि जहि कहि वि राही ।
को सक्कइ संवरेवि दड्ढनयणा नेहिं पलुट्टा ।

प्रा० व्या० ४. ४४२ ।

'यद्यपि हरि सब को भलीभाति आदरपूर्वक देखते है तथापि उनकी दृष्टि जहाँ राधा है वहाँ रहती है। स्नेह से पूर्ण नेत्रो को कौन रोक सकता है ।'

इसी प्रकार एक दूसरा पद्य भी देखा जा सकता है :

हरि नच्चाविउ पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एम्वहिं राह पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥

वही, ४.४२० ।

प्रागण मे हरि को नचाया, लोग विस्मय मे पड गए, राधा के पयोधरो का जो हो सो हो ।'

पुष्पदन्त ने जो कृष्ण की बालक्रीडा का वर्णन किया है उसमे भी इस प्रकार की स्वतत्रता की झलक मिलती है, कुछ कडवको की पक्तियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है जिनमे कृष्ण और गोपियो के सरस वर्णन है

धूलीधूसरेण वरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा ।
कीलारसवसेण गोवालयगोवीहिययहारिणा ।
रंगंतेण रमंतरमंतें, मंथउ धरिउ भमंतु अणंतें
मंदीरउ तोडेवि आवट्टिउं, अद्धविरोलिउं दहिउं पलोट्टिउं ।
का वि गोवि गोविंदहु लग्गी, एण महारी मंथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देहु आलिंगणु णं तो मा मेल्लहु मे प्रगंणु ।

—इत्यादि, महापुराण ८५.६ ।

इसी प्रकार के और भी वर्णन पुष्पदन्त की कृति मे मिलते हैं।[1] स्वयभू, पुष्पदन्त, हेमचद्र के पद्यो मे प्राप्त वर्णनो के आधारो पर यह कहा जा सकता है कि कृष्ण की मर्यादित कथा के अतिरिक्त गोपी गोपालो के प्रिय कृष्ण की कथा का भी एक रूप लोक और अपभ्रंश साहित्य की एक धारा मे प्रचलित था और उस धारा का हिन्दी के कृष्ण साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा होगा। जो मुक्त वातावरण

---

१. महापुराणु, संधि ८५, कडवक १०, संधि ८६, कड० १०–११ इत्यादि।

सूरदास की कविता मे मिलता है उसकी एक झलक स्वयभू, पुष्पदन्त और हेमचन्द्र के पद्यो मे मिलती है।

हिन्दी काव्य की एक धारा और मिलती है जिस पर जैन अपभ्रंश कथानकों का पर्याप्त प्रभाव पडा है। वह धारा है हिन्दी जैन कविता धारा। अपेक्षाकृत उसमे काव्य की सरसता कम है कदाचित् इसी लिए उसका अध्ययन कम हुआ है। किन्तु अनेक हिन्दी जैन कृतियाँ अपने ढग की अनुपम कृतियाँ है। पीछे काव्यरूपो के अध्याय मे कुछ जैन रास रचनाओ की चर्चा की गई है। यहाँ कुछ ऐसी हिन्दी कृतियो का उल्लेख किया जा सकता है जिनमे थोडी मौलिकता के साथ प्राकृत अपभ्रंश मे ग्रहीत कथाओ को ही हिन्दी का रूप दिया गया है। इन कृतियो मे से ब्रह्म रायमल्ल की सवत् १६३३ वि० मे रचित भविष्यदत्त कथा[1] सुदर कथा कृति है जिनमे प्रसिद्ध भविष्यदत्त कथा के समान ही कथा है। दोहा चौपाइयो मे रचित आदित्य-वार कथा, छीतर ठोलिया द्वारा स० १६०७ वि० मे रचित होलिका चौपाई, दोहा चौपाई वस्तु इत्यादि छदो मे रचित लालचद का हरिवशपुराण (स० १६९५,) स० १६४२ मे रचित पाँडे जिनदास की कृति जबूस्वामी कथा, हरिदास सोनी की धर्म-परीक्षा (स० १७००), नरेन्द्रकीर्ति का नेमीश्वर चद्रायण, लिपि (स० १६९०), तथा ब्रह्म जिनदास का यशोधररास, नेमिजिनेश्वर रास (स० १६१५) तथा अनेक रास-कृतियो[2] का उल्लेख किया जा सकता है। इन कृतियो के विषयो से सबधित कृतियाँ जैन प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य मे मिलती हैं। इन पर अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट है। धर्मपरीक्षा जैसी कृतियाँ अपने ढग की अनुपम कृतियाँ हैं। हिन्दी साहित्य के इस अग पर अपभ्रंश का प्रभाव निर्विवाद है।

✓ (पीछे के विवेचन को निष्कर्ष रूप मे इस प्रकार रखा जा सकता है। हिन्दी काव्य की प्रेमाख्यानक धारा के कथानक बहुत ही लोक प्रचलित कथानक हैं और

---

१. कृति की हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति के लिए लेखक आमेर शास्त्र भडार के अधिकारियो का कृतज्ञ है। रचना तिथि कवि ने इस प्रकार दी है
सोलहसैं तेतीसो सार, कातिकसुदि चोदसि सनिवार।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापैं रोग।

२. लेखक ने इन सभी कृतियो की हस्तलिखित प्रतियो का अध्ययन आमेर शास्त्र भंडार जयपुर में किया था। अन्य जैन कृतियों के उल्लेख कामता प्रसाद जैन लिखित हिंदी जैन साहित्य का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी मे देखे जा सकते हैं।

प्राकृत अपभ्र ंश काव्य मे उनके प्रयोग बहुत पहिले से होने लगे थे। हिन्दी कवियो की वह मौलिक खोज या कल्पना नही है। प्राय. एक ही प्रकार के कथा भाव सब प्रेमकथाओ मे मिलते है। हिन्दी कवियो के कथा कहने के ढग पर भी अपभ्र ंश काव्यो का प्रभाव जहाँ तहाँ लक्षित होता है। कथाओ मे जिस प्रकार की परिस्थितियो की नियोजना हिन्दी प्रेमकथाओ मे मिलती है उसका बहुत पहिले से अपभ्र ंश कवियो ने प्रयोग प्रारभ कर दिया था। हिन्दी कृष्ण साहित्य के स्वच्छन्द वातावरण के लिए भी कवियो को प्रेरणा किसी अपभ्र ंश की धारा से मिली होगी जिसके स्पष्ट सकेत उपलब्ध अपभ्र ंश साहित्य मे मिलते हैं। हिन्दी राम कथा से सबधित कथानक पर प्राकृत अपभ्र ंश साहित्य का कदाचित् कोई प्रभाव नही पड़ा। उनके मर्यादित कथारूप मे अपभ्र ंश के कवि कदाचित् कोई परिवर्तन न कर सके। हिन्दी जैन काव्य जैन प्राकृत अपभ्र ंश काव्य का एक प्रकार से प्रतिरूप ही है, केवल भाषा का अन्तर है, कथानक परिवर्तित रूप मे जैसे के तैसे ही हैं। सक्षेप मे कथानको की दृष्टि से अपभ्र ंश का ऐहिकतामूलक साहित्य पर अधिक प्रभाव पड़ा है। धार्मिकता प्रधान हिन्दी ब्राह्मण साहित्य की दृष्टि संस्कृत साहित्य की ओर रही है किन्तु कृष्णकथा के सबध मे यह पूर्णरूप से सत्य नही है। पौराणिक वातावरण के साथ उसमे जो स्वतत्र वातावरण भी मिलता है वह लोक में प्रचलित या साहित्य मे प्रयुक्त उसमे किसी स्रोत से आया है और उस पर अपभ्र ंश का प्रभाव लक्षित होता है। उच्छ्वसित प्रेम प्रसग की परंपरा का विकास गाथा सप्तशती मे सग्रहीत परम्परा से हुआ होगा ऐसा लगता है। और अधिक साहित्य मिलने पर इस धारा की स्पष्ट व्याख्या की जा सकेगी।

४
उपसंहार

अपभ्र श और हिन्दी साहित्य मे पीछे विवेचित समानताओ के अतिरिक्त भावधारा की भी कुछ समानताएँ मिलती हैं। (जैन, वौद्ध, शैव साधको और मर्मियो की जो रचनाएँ अपभ्र श मे मिलती है परिमाण मे यद्यपि वे बहुत कम हैं तथापि ७वी शती विक्रम से लेकर १२वी शती तक की चिन्ताधारा, साधना के मार्ग पर, प्रकाश डालने के लिए वे पर्याप्त है। जैन साधक योगीन्द्र, मुनि रामसिह, आनद महाचद, सुप्रभाचार्य इत्यादि तथा वौद्ध सिद्ध सरहपा, कान्हूपा आदि एव शैवसाधक और मर्मी लल्लेश्वरी सभी की साधना और उपदेशो का स्वर एकसा है और परवर्ती नाथ पथी और सतो की वाणियो मे वही स्वर और भी प्रखर होकर सामने आया है।)

(यह सभी साधक वाह्याचारो के विरोधी थे, जप, तप, पूजा, अर्चना, तीर्थ, भ्रमण, वर्ण व्यवस्था, अवतारवाद, शास्त्रज्ञान सभी प्रतिष्ठित परपराओ का ये साधक खडन करते थे।) अक्खड, निरीह और अपने विश्वासो मे दृढ इस धारा के सभी साधक चरित्रवल को वहुत महत्त्व देते थे। पडितो ने अनुमान लगाया है कि वैदिक काल से भी प्राचीन इस देश मे विचारक, मर्मी और वेदविहित मार्ग मे अनास्था रखने वाले श्रमणो की एक विचारधारा चली आ रही थी जो सव वन्धनो मे अविश्वास रखती थी और ससार के प्रति अनासक्ति का भाव रखती थी।[1] (वैराग्य भावना प्रधान इसी भावधारा के पोषक यह सभी अब्राह्मण साधक थे। वौद्ध सिद्ध, जैन मर्मी तथा शैव गूढवादियो की ईश्वर विषयक कल्पना मे थोडा सा अन्तर हो सकता है, जैसे जैन साधक जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा को परमात्मा मानते है, कर्मवन्धन के कारण ही आत्मा आत्मा है। तपस्या और साधना

---

१. दे० विंटरनित्स; सम प्रावलम्ज अव् इडियन लिटरेचर, कलकत्ता, एसेटिक लिटरेचर इन इडिया... ।

के मार्ग पर चलता हुआ प्रत्येक आत्मा परमात्मा हो सकता है, आत्मा जव परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है फिर वह आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए जैन साधक सम्यग्यान, सम्यग्दर्शन, और सम्यक् चरित्र को साधन मानते है। इस 'रत्नत्रय' से युक्त आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त होता है। इस प्रकार के सूक्ष्म अतर के अतिरिक्त इन सभी साधको के मूल उपदेशो का स्वर एक समान है। सभी साधको ने उस परमसमाधि का एक समान उल्लेख किया है जिसमे लीन होकर आत्मा परमात्मा से मिल जाता है, उस परम समाधि अवस्था को पहुँचने पर मन के समस्त सकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं, उस परम समाधि के विना घोर तप, गहनशास्त्रज्ञान किसी भी अन्य साधन द्वारा शिव शान्त पद की प्राप्ति नही हो सकती।

परम समाहि महा सरहि जे बुड्डहिं पइसेवि।
अप्पा थक्कइ विमलु तहं भव मल जंति वहेवि॥

परम० २.१८९।

'परम समाधि महा सरोवर मे प्रवेश कर जो डुवकी लगाते है उनका भवमल नष्ट हो जाता है और आत्मा निर्मल हो जाता है।'

इस दुर्लभ पद को पाने मे ससार के साधन सहायक नही वन सकते।

घोरु करंतु वि तव चरणु सयल वि सत्य मुणंतु
परम समाहि विवज्जियउ णवि देक्खइ सिउसंतु॥

वही, २.१९१।

'घोर तप करता हुआ, समस्त शास्त्रो को जानने वाला भी परमसमाधि से रहित शिव और शात को नही देख सकता।'

सभी साधक इस साधना के लिए गुरु की आवश्यकता मानते हैं। उचित मार्ग प्रदर्शन गुरु ही कर सकता है। जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है वाह्य सभी आचारो तीर्थादि सव को इन साधको ने पाखड कहा है। किन्तु इन साधको ने तत्कालीन उन योगियो पर मृदु कटाक्ष भी किए है जो शरीर मे सिद्धियो को खोजते थे। शरीर से आत्मा भिन्न है, अत ऐसे योगियो को उन साधको ने सावधान किया है। सहजानद, परमसमाधि को इन साधको ने सर्वोपरि माना है उस अवस्था मे मन और परमेश्वर मिल जाते है, दोनो एक हो जाते है। हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध गोरखवाणी मे सग्रहीत रचनाओं तथा कवीर आदि सतो की वाणियो मे यह भावधारा किंचित् मौलिकता के साथ मिलती है। आत्मा और परमात्मा के इसी प्रकार

के परिचय मिलन का गोरखवाणी मे अनेक स्थलो पर वर्णन है।)एक स्थल पर कहा है .

"रैमन हीरै हीरा बेविला, तो काया केर्णे जाई
गगन सिखर चंदा रहियो समाई."

गो० बा० पृ० १४९.

'अरे मन। हीरे ने हीरे को वेध लिया अर्थात् जब आत्मा का परमात्मा से परिचय हो गया, आत्मा ब्रह्म मे मिल गया तब काया मे कौन जाय। ब्रह्म रध्र मे रहने वाले चद्रमा मे आत्मा को लीन करो।' इसी तरह कबीर इस ब्रह्मानद को इस प्रकार व्यक्त करते हैं

मरन जीवन की संका नासी, आपन रंगि सहज परगासी
प्रगटि जोति मिटिया अंधियारी, राम रतनु पाइआ करत विचारी
जह आनंदु दुख दूरि पंइआना, मनु मानकु लिव ततुलुकाना।

संत कबीर पृ० २४२

और खडन मडन तो इन सतो मे एक ही प्रकार के शब्दो में मिलता है। योगीन्द्र कहते हैं

देउ ण देउले णवि सिलए, न वि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजण णाणमउ, सिउ संठिउ समचित्ति।

'देव न देवालय मे है, न शिला मे, न लेप मे है न चित्र मे, अक्षय, निरजन ज्ञानमय शिव समचित्त मे स्थित है।'

इसी प्रकार शास्त्रादि के ज्ञान को उन्होंने निस्सार कहा है, जैन सप्रदाय की कुछ वातो की भी उन्होंने आलोचना की है :

धम्मुण पढियइं होइ धम्मुण पोत्था पिच्छियइ
धम्मु ण मढिय पएसि धम्मु ण मत्था लुंचियइं।

योगसार ४७।

'पढने से, पोथी और पिच्छी से धर्म नही होता। मठ मे रहने से भी धर्म नही होता और न केशलोचन करने धर्म से होता है।'

गोरखवाणी और कबीर की वाणियो मे खडन का यह स्वर कुछ तीव्र रूप मे मिलता है।

सिद्धान्त और उनके प्रकट करने का ढग इन सभी साधको की रचनाओ मे एक ही प्रकार का मिलता है। कबीर तथा गोरख की जो 'उलट वाणियाँ' मिलती है उनसे सिद्धो की उक्तियो की भली प्रकार समता की जा सकती है। बैलगाय

के रूपक,[1] चरखे का रूपक[2] जुलाहा, चंद्र सूर्य का रूपक[3], वन के पशुओं का रूपक[4] इत्यादि रूपक सिद्धों के द्वारा प्रयुक्त रूपकों के समान ही है। हिन्दी साहित्य की संत धारा पर भाव और शैली दोनों दृष्टियों से अपभ्रंश के संत साहित्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। दोनों में समानताएँ बहुत हैं।

दूसरी स्फुट उपदेश धारा इन संतों की वाणियों में मिलती है। अपभ्रंश की सावयधम्मदोहादि कृतियों में जो गृहस्थों के लिए उपदेश मिलते हैं उसके समान धारा हिन्दी में कबीर की साखियों, तुलसी सतसई, रहीम दोहावली तथा अनेक संतों की वाणियों में प्राप्त होती है।

बिहारी सतसई जैसे पद्य संग्रहों में शृंगारात्मक पद्यों तथा सुभाषितों की जो स्फुट धारा मिलती है उसका पूर्ववर्ती रूप गाथा सप्तशती, वज्जालग्ग, हेमचंद्रादि के पद्यों में मिलता है।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में शास्त्र सम्मत काव्य परंपराओं से कुछ भिन्न मुक्त वातावरण मिलता है, वर्ण्य विषय का निर्वाह, छंद, अप्रस्तुत तथा लोकजीवन के प्रति झुकाव उसमें मिलता है, हिन्दी कविता में यह सब विशेषताएँ ज्यों की त्यों चलती रहीं। जैसा पीछे के अध्ययन से स्पष्ट होगा। काव्यरूपों में संस्कृत के अलंकृत महाकाव्यों के स्थान पर वीर, चरित काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य और प्रबन्धात्मक चरित काव्य हिन्दी में मिलते हैं। विषय निर्वाह, छंद शैली सभी में अपभ्रंश साहित्य की छाप मिलती है, इन सब उपकरणों के लिए मध्ययुगीन हिन्दी कवियों ने गरिमा शालो अत्यन्त श्रेष्ठ संस्कृत साहित्य के काव्यरूपों का अनुकरण नहीं किया, जिन कुछ कवियों ने किया उनकी कृतियों का केवल इतिहास में ही नामशेष रह गया।

छंदों के संबंध में पीछे संकेत किया गया है कि संत और भक्त कवियों में अत्यन्त प्रचलित और बहुत ही कम छंदों के प्रयोग हुए हैं, और उन्हीं छंदों को विशेष रूप से अपनाया गया है जिनका अपभ्रंश साहित्य में बहुत ही अधिक प्रयोग होता था जैसे, दोहा, चौपाई आदि। कुछ चमत्कारवादी कवियों ने कम प्रचलित या

---

१. बीजक शब्द ९५।
२. वही, शब्द ९८।
३. वही, शब्द २१३।
४. वही, शब्द ५५।
५. दे० स्टडीज इन तंत्र भाग १
डा० प्रबोध चंद्र बागची कलकत्ता।

अप्रचलित अनेक छदो के प्रयोग किए किन्तु उनके प्रयोग उन छदो को लोकप्रिय न वना सके ।)

कथानको के सवध मे भी यही बात दिखती है। सतो और भक्तो के सम्मुख एक निर्दिष्ट मार्ग था, सुप्रतिष्ठित 'इष्टदेव', साधना मार्ग और स्वसप्रदाय की परपरा प्रसिद्ध कथा या सिद्धान्त थे। वे उनकी अवहेलना नही कर सकते थे अत तुलसीदास जैसे कवियो का रचनाओ मे प्रयुक्त कथावस्तु के सवध मे अपभ्र श कृतियो मे प्रयुक्त कथानको के प्रभाव का प्रश्न ही नही उठता। यही कृष्ण काव्य के सवध मे भी कहा जा सकता है। जिन कवियो के सामने इस प्रकार के प्रतिवन्ध नही थे जैसे, प्रेमकथा लेखक, उन्होने पूर्ववर्ती साहित्य से प्रभावित होकर प्राकृत अपभ्र श कथा काव्यो के समान ही लोक प्रसिद्ध कथानको को अपनाया। भावधारा के सवध मे पीछे उल्लेख किया गया है कि सत मत मे प्रतिपादित भावधारा का वैसा ही रूप अपभ्र श साहित्य की रहस्यवादी धारा मे मिलता है।

(हिन्दी साहित्य ने जितना सीधा सपर्क अपभ्र श साहित्य से रखा है उतना कदाचित् किसी अन्य प्रान्तीय भाषा ने नही रखा। अपभ्रंश के समस्त वाङ्मय वैभव तथा आशिक भावधारा का जो चित्र जैन, वौद्ध, ब्राह्मण आदि नाना सप्रदाय, नाना प्रान्तो में रचित अपभ्र श रचनाओं मे मिलता है उसे अपभ्र श की प्रधान उत्तराधिकारिणी हिन्दी ने अपने अनेक रूपो—क्या व्रज, क्या अवधी, क्या राजस्थानी, क्या मैथिली मे अपनाया। हिन्दी के उस युग के कवियो मे लोकरुचि और सही मार्ग को समझने की कितनी सूझ और वुद्धि थी यह उनके अपभ्र श काव्य-धाराओ को उसी रूप मे अपनाने से स्पष्ट होता है। इन कवियो मे सच्चे मार्ग प्रद-र्शक की प्रतिभा थी और युगप्रधान कर्मठ नायक के समान साहस था। अपभ्र श साहित्य का जो भी अश उपलब्ध हुआ है वह इतना सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी साहित्य के प्रारभयुग मे प्राप्त काव्यधाराओ का प्रारभ १३वी या चौदहवी शती से नही हुआ किन्तु उस समय हुआ था जव चतुर्मुख, द्रोण, स्वयभू, सरहपा, कान्हपा, योगीन्द्र आदि कवियो ने अपनी रचनाओ को लिखना प्रारभ किया था। इस प्रकार हिन्दी काव्य की नीव और भी गहरी और दृढ है।)

((प्राकृत अपभ्र श साहित्य के रूप मे भारतीय सस्कृति और साहित्य को समझने के लिए एक अत्यन्त समृद्ध, मनोरम भडार प्राप्त होता है और वह अधकारयुगीन भारत के विभिन्न धार्मिक, भक्ति विषयक सामाजिक, साहित्यिक आदोलनो को समझने के लिए एक मूल्यवान ज्योति है। जैसे जैसे इस साहित्य का अध्ययन आगे बढेगा अनेक समस्याओ पर नया प्रकाश पडेगा और अनेक धाराओ का सच्चा

रूप ज्ञात हो सकेगा। विक्रम की सातवीं शती से लेकर १५ शती तक की धर्म साधना, साहित्यिक साधना का सच्चा रूप इस विशाल साहित्य के अवगाहन के बिना अधूरा ही रहेगा।

सहायक ग्रंथ सूची

ग्रथो के विस्तृत विवरण पाद-टिप्पणियो मे यथास्थान दे दिये गये हैं। यहाँ केवल सूची दी जा रही है।

(१) प्राकृत ग्रंथ

अर्द्धमागधी रीडर, बनारसीदास जैन, लाहौर, १९२३ ई०।

इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत, ए० सी० वूलनर, लाहौर, १९४२ ई०।

उपदेश सप्ततिका, भावनगर, १९१७ ई०।

उषानिरुद्धम्, ए० एन० उपाध्ये, ज० यू० बम्बई, १९४१–४२ ई०।

कथाकोश प्रकरण, सपा० मुनिजिन विजय, बम्बई, १९४९ ई०।

कर्पूरमजरी, सपा० मनमोहन घोष, कलकत्ता, १९४८ ई०।

कालकाचार्य कथानक, सपा० एच० एच० याकोबी, जेड० डी० एम० डी० १८८०।

कालकाचार्य कथानक, सपा० डब्ल्यू०, नार्मन ब्राउन, वाशिंगटन, १९३३।

कुमारपाल प्रतिबोध (अपभ्रश अश) हैम्बर्ग, १९२८।

कुमारपाल प्रतिबोध, बडौदा, १९२०।

कुमारपाल चरित, सपा० पी० एल० वैद्य, बम्बई, १९३२।

कूर्मापुत्र कथा, अहमदाबाद, १९३२।

केटेलाग अव् संस्कृत एण्ड प्राकृत, मैन्युस्क्रिप्ट्स इन सी० पी० एड बेरार, नागपुर, १९२६ ई०।

केटेलाग पत्तन भडार, बडौदा, १९३७ ई०।

कसवहो, सपा० ए० एन० उपाध्ये, बम्बई, १९४० ई०।

गाथासप्तशती, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३ ई०।

गौडवहो, सपा० शे० पा० पडित, बम्बई, १८८७ ई०।

चन्द्रलेखा सट्टकम्, भारतीय विद्याभवन, १९४५ ई०।

जिनरत्न कोश, एच० डी० वेलकर, पूना, १९३४ ई०।

दि कल्पसूत्र एड नवरत्न, ज० स्टिवसन, लदन, १९४८ ई० ।
देशी नाममाला, सपा० रिचर्ड पिशेल, दि० सस्करण, बम्बई, १९३८ ई० ।
धर्मोपदेश माला विवरण, भारतीय विद्याभवन, बम्बई १९४९ ई० ।
धूर्ताख्यान, भारतीय विद्याभवन, १९४५ ई० ।
पउमचरिय, सपा० हे० याकोवी, भावनगर, १९१४ ई० ।
पचास्तिकाय, सपा० ए० चक्रवर्ती, आरा १९२० ई० ।
प्राकृत कल्पतरु, राम शर्म तर्कवागीश्श इ० ए० जिल्द ५१ ।
प्राकृत प्रकाश रामपाणिवाद की वृत्ति सहित सपा० कुजनराजा, मद्रास, १९४६ ई० ।
प्राकृत प्रकाश, सपा० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३१ ई० ।
प्राकृतानुशासन, पुरुषोत्तमदेव, पेरिस, १९३८ ई० ।
प्राकृत रूपावतार, रा० ए० सो०, १९०९ ई० ।
प्राकृत व्याकरण हेमचद्र सपा० पी० एल० वैद्य, पूना, १९५८ ई० ।
प्राकृत लक्षण, चड, सपा० हार्नले, कलकत्ता १८८० ई० ।
मदन मुकुट, गोसल विप्र, भारतीय विद्या, १९४२ ई० ।
महार्थ मजरी, स० त० ग० शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १९१९ ई० ।
महावीर चरित, ववई, १९८५ ।
मूलाचार, मनोहरलाल शास्त्री, बम्बई, १९१९ ई० ।
यूवेर दास सतशतकम्, देजहाल, सपा० अलब्रेक्ट वेवर, लाइपजिग, १८८१ ।
राजशेखर नरपति कथा, भावनगर, १९१७ ई० ।
सरावणवहो ओडेर सेतुवध, सपा० सीगफ्रीड गोल्डस्मिट, स्ट्रासवुर्ग, १८८० ।
रिष्ट समुच्चय, सपा० ए० एस० गोपाणी, ववई, १९४५ ई० ।
रम्भा मजरी, ववई, १८७९ ई० ।
लीलावई सपा० ए० एन० उपाध्ये, ववई, १९४५ ।
वज्जालग्ग, जुलियस लावर, विब्लियोथिका सिरीज़, कलकत्ता, १९१४ से १९२३ ।
वसुदेव हिंडि दो भाग , आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर स० १९३० से ३१ ।
विजयचन्द्र चरित, भावनगर, १९०६ ।
श्री चिह्न काव्यम्, सपा० ए० एन० उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन, १९४१ ई० ।
श्रीपाल कथा, भावनगर, १९२३ ।

शौरि चरित्र, सपा० ए० एन० उपाध्ये, ज० यू० बबई, भाग १० ।
समय प्राभृत, काशी, १९१४ ।
समराइच्च कहा, सपा० हे० याकोबी, कलकत्ता, १९२४ ।
समराइच्च कहा, भाग १ व २ गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, १९३५ ई० ।
सुदर्शन चरित, अहमदाबाद, १९३२ ।
सुपार्श्वनाथ चरित्र, बनारस, १९१८ ।
सुरसुदरी चरित्र, सपा० मुनिराज श्री राजविजय, बनारस १९१३ ई० ।
सेतुबध, काव्यमाला, निर्णयसागर, बबई, १८९५ ।
ज्ञानपचमी कथा, अ० स० गोपाणी, बबई, १९४९ ।

(२) अपभ्रंश—प्रकाशित ग्रंथ

अपभ्रश काव्यत्रयी, बडौदा, १९२६ ई० ।
अपभ्रश पाठावली, अहमदाबाद, १९३५ ई० ।
करकडु चरित्र, सपा० हीरालाल जैन, कारजा, १९३४ ई० ।
कीर्तिलता, डा० बाबूराम सक्सेना द्वारा सपादित, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९८६ तथा २०१० ई० ।
कीर्तिलता, म० म० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सपादित, वगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता १३३१ वगीय ।
दोहाकोषे सपा० प्रबोधचन्द्र बागची कलकत्ता, १९३८ ई० ।
दोहापाहुड, सपा० हीरालाल जैन, कारजा, १९३३ ई० ।
नागकुमार चरित, सपा० हीरालाल जैन, कारजा, १९३३ ई० ।
पउमसिरी चरिउ, सपा० मोदी और भायाणी, बम्बई, १९४८ ई० ।
पउम चरिउ, स्वयभू, सपा० ह० भायाणी, बबई, तीन भाग, १९६१ ई० ।
परमात्मप्रकाश और योगसार, सपा० ए० एन० उपाध्ये, बबई, १९३७ ।
भविष्यदत्त कथा, याकोबी सस्करण, १९१८ ।
भविष्यदत्त कथा, बडौदा सस्करण, १९२३ ई० ।
भावना सधि प्रकरण, ए० भ० ओ० रि० इं० पूना, जिल्द १२ ।
महापुराण, पुष्पदन्त, सपा० पी० एल० वैद्य, बम्बई तीन खडो मे प्रकाशित १९३७–४१ ई० ।
यशोधर चरित, सपा० पी० एल० वैद्य, कारजा, १९३१ ई० ।

वैराग्य सागर, संपा० एच० डी० वेलंकर, ए० म०, रि० इ० १९२८ ई०।
संदेश रासक, संपा० मुनि जिनविजय तथा ह० मायाणी, ववई, १९४५।
सनत्कुमार चरित्, संपा० हे० याकोवी, म्यूनचेन, १९२१।
संयम मंजरी, महेश्वर सूरि, ए० भ० ओ० इ० जिल्द १।
सावयधम्म दोहा, संपा० हीरालाल जैन, कारंजा, १९३२ ई०।

अपभ्रंश : हस्तलिखित ग्रन्थ

अगरसेन चरित, माणिक्कराज, जयपुर।
अणुव्रत रत्न प्रदीप, लक्खण, डा० वाबूराम सक्सेना से प्राप्त।
आत्मसंबोधिकाव्य, रयधू, जयपुर।
आनंदा स्तोत्र, जयपुर।
चंद्रप्रभ चरित, यशकीर्ति, आरा।
जम्बूस्वामी चरित, वीर, जयपुर।
जिनदत्त चरित, लाखू, जयपुर।
णिर्झर पंचमी विहाण कथानक, विनय चंदमुनि, जयपुर।
दोहा पाहुड, महचंद कृत, जयपुर।
द्वादशानुप्रेक्षा, जोगेन्द्रदेव लक्ष्मी चंद्र कृत, जयपुर।
धन्यकुमार चरित, रयधू, जयपुर।
धर्मपरीक्षा, हरिषेण, लाहौर।
नागकुमार चरित, माणिक्कराज, जयपुर।
पउम चरिउ, स्वयंभू, जयपुर।
पद्मपुराण, रयधू, जयपुर।
पार्श्व चरित, पद्मकीर्ति, जयपुर।
प्रद्युम्न कथा, सिद्ध, जयपुर।
वलभद्र पुराण, रयधू, दिल्ली।
वर्धमान कथा, नरसेन, जयपुर।
वर्धमान चरित, जयमित्रहल, जयपुर।
वाहुवलि चरित, धनपाल, जयपुर।
मदन पराजय, हरिदेव, जयपुर।
मेघेश्वर चरित, रयधू, जयपुर।
रत्नकरंडशास्त्र, श्रीचंद्र, जयपुर।

श्रीपाल चरित, नरसेन, जयपुर ।
श्रीपाल चरित, रयधू, दिल्ली ।
षट्कर्मोपदेश, अमर कीर्ति, जयपुर ।
सुदर्शन चरित, नयनंदि, जयपुर ।
सन्मतिजिन चरित, दिल्ली ।
सुकुमाल चरित, पूर्णभद्र, जयपुर ।
सुकुमार चरित, श्रीधर, जयपुर ।
सुकोशल चरित, रयधू, दिल्ली ।
सुप्रभाचार्य दोहा, जयपुर ।
हरिषेण चरित, अज्ञात, जयपुर ।
हरिवंश पुराण, यशकीर्ति, आरा ।
हरिवंश पुराण, यशकीर्ति, जयपुर ।
रिट्ठणेमि चरिउ, स्वयंभू, जयपुर ।

(३) हिंदी ग्रंथ : प्रकाशित

अर्द्धकथा बनारसीदास, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९४२ ई० ।
अर्द्ध कथानक, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई १९४३, संशोधित, १९५७
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, प्रयाग, २००४ वि० ।
करहिया को रायसो, ना० प्र० प० भाग १०, पृ० २७८१ ।
गोरखबानी, सा० स० प्रयाग, १९४२, डा० पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल द्वारा संपा० ।
छंदप्रभाकर, भानु, बिलासपुर, १९२२ ।
छंदराउजइतसीराउए, बिब्लियोथेका इंडिका, कलकत्ता, १९२० ।
छत्र प्रकाश, ना० प्र० सभा काशी, १९१६ ।
जंगनामा, ना० प्र० सभा काशी, २००४ वि० ।
जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९४२ ।
जैन हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, कामता प्रसाद जैन, काशी १९४७ ।
ढोला मारू रा दूहा, ना० प्र० सभा, काशी, १९९१ वि० ।
नंददास ग्रंथावली, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी इलाहाबाद, १९४२ ।
नाथ-सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रयाग, १९५० ।
पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० सभा, काशी, १९०४–१३ ।

हिन्दी काव्यधारा, राहुल साकृत्यायन, इलाहाबाद, १९४५।
प्रेमी अभिनदन ग्रथ, टीकमगढ, १९४८।
बीजक, विचारदास शास्त्री, प्रयाग, १९२८।
भगवत रायसौ, ना० प्र० प० भाग ५, पृ० ११४-३१।
माधवानलकामकदला, बडौदा, १९४२।
मीरांबाई की पदावली, सपा० परशुराम चतुर्वेदी, सम्मेलन, प्रयाग, १९९८ वि०।
रघुनाथ रूपक गीतारो, महताब चन्द्र खरेड, ना० प्र० सभा, काशी, १९१७।
राजविलास, ना० प्र० सभा काशी, १९१२।
राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, मेनारिया, प्रयाग, १९३९।
रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, २००६।
रामचन्द्रिका केशवकौमुदी इलाहाबाद, १९३१।
वचनिक रतन सिंघ री, विब्लियोथेका इडिका, कलकत्ता, १९१९।
विद्यापति पदावली, खगेन्द्रनाथ मित्र, कलकत्ता १९४५।
विनयपत्रिका, गीता प्रेस गोरखपुर।
वीरसिंह देव चरित, ओरछा, २००४ वि०।
वीसलदेव रासो, ना० प्र० सभा, काशी स० १९८२।
शिवराजभूषण, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी।
सगीत रत्नाकर वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
सत कबीर, डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, १९४७।
सतसैया अव् बिहारी, सपा० सर जार्ज ग्रियर्सन, कलकत्ता।
सत्यवती कथा, हिन्दुस्तानी भाग ७, १९३७।
समराशाहका रास, प्राचीन गुर्जर-काव्य सग्रह, बडौदा।
सुजान चरित, ना० प्र० सभा, काशी, १८८०।
सुदर ग्रथावली, कलकत्ता, १९९३ वि०।
सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, प्रयाग, १९४८।
सूरसागर, वेकटेश्वर प्रेस सस्करण।
सूरसागर, भाग १, ना० प्र० सभा सस्करण।
हमीर रासो, ना० प्र० सभा, काशी, १९०८।
हमीर हठ्, ना० प्र० सभा, काशी, १९०७।
हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, काशी।
हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, बबई।

हिम्मत बहादुर विरदावली, काशी, १९५२।

हिन्दी ग्रंथ · हस्तलिखित

आदिपुराण रास।
आदित्यवार कथा।
चन्दन मलयागिरि, भद्रसेन।
जम्बुस्वामी कथा, जिनदास।
धर्मपरीक्षा, जिनदास सोनी।
धर्मरासो।
नेमिजिनेश्वर रास।
नेमीश्वर चद्रायण, नरेन्द्र कीर्ति।
परदवन राम।
पुहुपावती, दुखहरनदास।
भविष्यदत्त कथा, ब्रह्मरायमल्ल।
मधुमालती, चतुर्भजदास कृत।
यशोधर रास, ब्रह्मजिनदास।
रत्नपाल रास।
सम्यक्त्व रास।
हरिवंश पुराण।
श्रावकाचार रास।
सदयवत्स चरित।
सुदैवच्छसावलिंगा चौपाई, पदमतिलक।
होलिका चौपाई, छीतर ठौलिया।

(४) संस्कृत ग्रंथ

अशोक की धर्मलिपियाँ, ना० प्र० स० काशी, १९८०।
अद्वय वज्र संग्रह, बड़ौदा, १९२७ ई०।
औचित्य विचार चर्चा, काव्यमाला, प्रथम गुच्छ, निर्णयसागर, बम्बई, १९२९।
कथासकोश, सपा० ए० एन० उपाध्ये, बम्बई, १९९९ वि०।
कथारित्सागर, सोमदेव निर्णयसागर, बम्बई, १९०३ ई०।
कामसूत्र, चौखंभा संस्करण काशी, १९२९ ई०।
काव्य मीमांसा, बड़ौदा, १९३४ ई०।

काव्यादर्श, दडी, पूना, १९३८ ई० ।
काव्यालकार, रुद्रट, निर्णयसागर, वम्बई, १९२८ ई० ।
काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, वामन, वाणी विलास सिरीज, श्रीरगम १९०९ ।
कुवलयमाला कथा, रत्न प्रभ सूरि विरचित : भावनगर, १९१६ ।
कोरपस इस्क्रिप्शंस, इडिकेरम कलकत्ता, १८८८ ई० ।
खरोष्ठी धम्मपद, सपा० एमील सेनार्त, १८९७ ई० ।
छदसार सग्रह, सपा० चद्रमोहन घोष, कलकत्ता, १९९३ ।
जातकमाला, सपा० एच० कर्न, हार्वर्ड, १८९१ ई० ।
जैनशिलालेख संग्रह, हीरालाल जैन, बंवई ।
दशरूपक, निर्णयसागर प्रेस, ववई, १९४१ ।
दिव्यावदान, इ० बी० कॉवेल तथा नेल, कैम्ब्रिज, १८८६ ई० ।
देशोपदेश आदि, क्षेमेन्द्र, काव्यमाला, वम्बई ।
ध्वन्यालोक, काव्यमाला, निर्णयसागर, बंबई, १९३५ ।
नाटयदर्पण, गुणचन्द्र, बड़ौदा ।
नाटयशास्त्र, बड़ौदा, १९२६ ।
२३ काशी, १९८५ ।
न्यायकुमुदचद्र, महेन्द्र कुमार जैन द्वारा संपादित, वम्बई ।
प्रवधचितामणि सपा० मुनि जिनविजय, शान्ति-निकेतन, १९८९ वि० ।
प्राकृत धम्मपद, सपा० वरुआ एड मित्र, कलकत्ता ।
प्राकृत पैंगलम्, सपा० चद्रमोहन घोष, कलकत्ता, १९०२ ।
प्राकृत रूपावतार, डॉ० हुल्टज्ञ, रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०९ ।
प्राकृत लक्षणम्, सपा० रेवतीकान्त भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९२३ ।
प्राकृत सर्वस्वम्, सपा० भट्टनाथ स्वामी, विजगापट्टम, १९१४ ।
वालरामायण, राजशेखर ।
ब्रुखश्टुके वुधिष्टिशेर ड्रामेन, सपा० हाइनरिश ल्युडर्स, वर्लिन, १९११ ।
भावप्रकाशन, वड़ौदा, १९३० ।
महाभाष्य, निर्णयसागर प्रेस, ववई, १९३८ ।
महावस्तु, सपा० एमील सेनार्त पेरिस १८८२-९७ ई० ।
मृच्छकटिक, शूद्रक, निर्णयसागर, वम्बई, १९३६ ई० ।
रत्नावली, हर्ष, निर्णयसागर, वम्बई ।
ललित विस्तर, संपा० एस० लेफमन्न हाले, १९०२-८ ई० ।

वराग चरित, सपा० ए० एन० उपाध्ये, बवई, १९३८ ।
विदग्ध मुखमडन काव्यम्, निर्णयसागर प्रेस, बवई, १९१८ ।
बृहत् कथाकोश, सपा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघी जैन सिरीज, बवई १९४३ ई० ।
बृहत्सहिता, सपा० केर्न, बिब्लियो थिका इण्डिका, १८६५ ई० ।
राजतरगिणी, सपा० बलदेव मिश्र, दरभगा, १९१९ ।
श्रीकृष्ण कर्णामृतम् लीलाशुक प्रणीत श्री रगम् ।
षड्भाषा चद्रिका, सपा० के० पी० त्रिवेदी, बवई, १९१६ ।
सरस्वतीकठाभरण, काव्यमाला, निर्णयसागर, बवई, १९२५ ई० ।
साधनमाला, बडौदा, १९२५ ई० ।
साहित्यदर्पण, निर्णयसागर, १९३६ ।
सेलेक्ट इस्क्रिप्शस, बेयरिंग ऑन इडियन हिस्ट्री एड सिविलिजेशन, डी० सी० सरकार, कलकत्ता १९४२ ई० ।
हर्षचरित, निर्णयसागर प्रेस, बवई ।

(५) सहायक ग्रथ : गुजराती ग्रथ

आपणा कवियो, के० का० शास्त्री, अहमदाबाद, १९४२ ।
ऐतिहासिक रास सग्रह भाग १—३ सशोधक वि० ध० सूरी भावनगर । स० १९७२ ।
ऐतिहासिक रास सग्रह ४ भाग विजय धर्म सूरि आदि, भावनगर ।
गुजराती छदो, रा० वि० पाठक, अहमदाबाद ।
चारणो अने चारणी साहित्य अ० मेघाणी, अहमदाबाद, १९४३ ।
जैन गुर्जर कवियो २ भाग, मो० द० देसाई, बवई, १९२६ ।
पद्य रचना आलोचना की ऐतिहासिक आलोचना, के० ह० ध्रुव, बवई ।
प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह, बडौदा १९२० ।
भारतेश्वर बाहु बाहु विलास, सपा० मुनि जिनविजय, बंबई, १९९७ ।
वसन्त रजत महोत्सव स्मारक ग्रथ, अहमदाबाद, १९२७ ई० ।

छद शास्त्र सबधी

भारत कौमुदी, इलाहाबाद १९४७ ।
कवि दर्पण, सपा० एच० डी० वेलकर, ए० भ० ओ० टि० इ० १९३५—३६ ई० ।

गाथा लक्षण, सपा० एच० डी० वेलकर ए० भ० ओ० टि० इ० भाग १४।
छद कोश रत्नशेखर सूरि ज० यू० ववई भाग २, अक ३।,
छद शेखर राजशेखर कवि ज० व० व्रा० रा० ए० सो०—
छदोनुशासन, हेमचद्र ज० व० व्रा० रा० ए० सो० भा० १९–२०।
जयकीर्ति छदोनुशासनम्, ज० व० व्रा० रा० ए० सा० १९४५।
जयदामन हरितोपमाला, एच० डी० वेलकर, ववई, १९४९।
वृत्तजाति समुच्चय विरहाक एच० डी० वेलकर ज० व० प्रा० रा० ए० सो० १९३२।
स्वयभू छद, सपा० वेलकर, जर्नल व० प्रा० रा० ए० सो० १९३५।

अंग्रेजी ग्रथ

इडोआर्यन एड हिंदी, सु० कु० चटर्जी, अहमदाबाद १९४३।
डिक्शनरी आव् कश्मीरी प्रार्वब्स एड सेइग्स, जे० एच० नोवुल्स, ववई, १८८५।
दि हिस्टारिकल इस्क्रिप्शस आव् सदर्न इडिया, एस० के० आयगर, मद्रास, १९३२।
दि लाइफ आव् हेमचन्द्राचार्य, अनु० डा० मणिलाल पटेल। भारतीय विद्या भवन ववई।
प्राकृत लैंगवेजेज, एड देयर कट्रिब्यूशन टू इडियन कल्चर, एए० एम० कात्रे ववई १९४५।
भासाज प्राकृत, प्रिट्ज १९२१ ई०।
सम प्रावलम्स आव् इडियन लिट्रेचर, एम० विन्टरनित्स, कलकत्ता, १९२५।
सर आशुतोष मुकर्जी सिलवरजुबली वाल्यूम, कलकत्ता।
क्रॉनोलोजी आव् इडिया, सी० एम० डफ।
स्टडीज इन द तत्राज भाग १ वागची, कलकत्ता, १९३९।
स्टडीज इन द हिस्ट्री आव् सस्कृत पोएटिक्स, एस० के० डे
हिस्टॉरिकल ग्रामर आव् अपभ्र श, तगारे, पूना, १९४८।
हिस्ट्री आव् सस्कृत लिटरेचर, डा० एस० कृष्णमाचार्य, मद्रास, १९३७।

जर्मन तथा फ्रेंच

अपभ्रश स्टडिएव, लुदविग आल्सडर्फ, लाइप्जिग, १९३७।
गेशिष्टे देर इडिशेन लितेराटुर, विन्टरनित्स प्राग, १९३२।
ग्रामा टिक देर प्राकृत श्प्राखेन, पीशेल, वेरलीन १९०१।

फेस्टगावे हेरमान्न, याकोवी, बॉन, १९२६।
माटेरियलियेन त्सूर केन्टनिस डेज अपभ्रंश, रिचार्ड पिशेल, बेर्लीन, १९०२।
लेग्रामेरिए प्राक्रतिस्, नीति दोलची, पारी १९३८।
एसाइ सूर गुणाढ्य एला बृहत कथा, पारी १९०८।

(६) पत्र पत्रिकाएँ

अनेकान्त, सरसावा, सहारनपुर।
इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली।
एनल्स भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना।
जर्नल एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल, कलकत्ता।
कर्नाटक हिस्टारिकल रिव्यू।
जर्नल आव् दि डिपार्टमेंट आव् लेटर्स, यूनिवर्सिटी आव् कलकत्ता।
जर्नल आव् दि राएल एशियाटिक सोसायटी।
जर्नल, राएल एशियाटिक सोसाइटी, बाम्बे ब्रांच।
जर्नल आव् दि यूनिवर्सिटी आव् बाम्बे।
जैन एन्टीक्वैरी, आरा।
जैन सिद्धान्तभास्कर, आरा।
नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी।
बुलेटिन आव् दि स्कूल आव् ओरिएंटल स्टडीज, यूनिवर्सिटी आव् लंदन।
प्रोसीडिंग्स, ओरिएंटल कान्फ्रेन्स।
भारतीय विद्या, अंग्रेजी, हिंदी तथा गुजराती, बम्बई।
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज।
इंडियन एन्टीक्वैरी, बंबई।
आर्क्यऑलाजिकल सर्वे, वेस्ट इंडिया।

नामानुक्रमणिका

टि० = टिप्पणी

ज

म

श

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	९	कल	कुल
६	३०	जिनमद्र	जिनभद्र
७	१८	भमण	श्रमण
७	२७	लायमन्न	लायमन्त्र
८	७	प्रा	प्राकृत के
८	८	योग	प्रयाग
८	२६	यूनी टी	यूनिवर्सिटी
१०	१८	रचन	रचना
११	२६	वाण	बाण
१६	३०	पना	पूना
२३	१४	कपाल	कपाए
२५	७	अविवा	अभिधा
३०	१३	की	ही
३१	६	पद्म	पद्य
३३	२५	गोल्डस्मिट	गोल्डस्मिथ
३४	२६	विचरिते	विरचिते
३४	२९	विरोचिते	विरचिते
३५	२२	गोल्डस्मिट	गोल्डस्मिथ
३६	२१	राजातरगिणी	राजतरगिणी
३७	२८	समह	समूह
३९	७	वल	नल
४८	१	भमरेहि	भमरेहि
४९	१	निय	निम्न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५०	१	मवानओ	भावनाओ
६१	२१	का	को
६३	२५	पामय	पाइय
७८	८	कह्या	कहा
८०	१३	सावयमम्म	सावयधम्म
८७	१८	देवसन	देवसेन
८८	५	व्रतापि	व्रतादि
९०	१७	जिनदत्तूसरि	जिनदत्तसूरि
९१	१४	कुद	कुछ
९१	१६	अन्त्यनुप्रास	अन्त्यानुप्रास
९२	१२	महेश्र	महेश्वर
९२	२८	वो	ओ
९७	३	पद्यचरित	पद्मचरित
९७	४	पउमचरिय	पउमचरिउ
१०२	५	ध्वयात्मक	ध्वन्यात्मक
१०९	१०	मयणा	यमणा
१०९	१५	करयलजखु	करयलजलु
११०	१०	अन्त्यनुप्रास	अन्त्यानुप्रास
११६	१३	भविसत्तकहा	भविसयत्तकहा
१२३	१६	श्रगार	शृगार
१२४	३'५,६	श्रगार	शृगार
१२४	२३	सुदह्यण	सुदसण
१३०	२१	कर कर	कर
१३७	३	पपाहृय	पंपाइय
१३७	४,५	वल्लास	वल्लाल
१३७	५	वाद	वाड
१४१	७	अप्रभश	अपभ्र श
१४४	४	जिणदत्तवरिउ	जिणदत्तचरिउ
१४५	१०	विमलमती	विमलमती से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	१०	खम्मात	खम्मात
१५८	१८	रयूव	रयघू
१६८	२८	इलते	मिलते
१७१	१७	व्रजगीति	वज्रगीति
१७२	२९	योजितान	योजिताना
१७३	३	वीजमत्र	वीजमत्र
१७३	२७	आशचर्य	आश्चर्य
१७५	२७	पुल्लिअउ	फुल्लियउ
१७६	५	काव्य	काय
१७९	११	पान्डि	पन्डिउ
१८०	२६	नेयार्ववचन	नेयार्थवचन
१८१	१४	नेरात्मा	नैरात्मा
१८१	१८	निर्पाणे	निर्वाणे
१८२	२	सर्वश्रष्ठ	सर्वश्रेष्ठ
१८२	१८	अन्त्यनुप्रास	अन्त्यानुप्रास
१८३	११	सरह्पा	सरह्पा
१८५	५	प्रच्छन	प्रच्छन्न
१९५	१९	पिंगल के	पिंगल से
२०१	१०	को	की
२०१	१८	वेश्यावाड	वेश्यावाद
२०२	१९	की	को
२०२	२१	वेश्यावाड	वेश्यावाद
२०३	३	एल्लेख	उल्लेख
२०५	११	अपभ्र स	अपभ्र श
२१०	४	विक्रोमोर्वशीय	विक्रमोर्वशीय
२११	२३	विषयि	विपय
२११	२९	रागायण	रामायण
२१२	२	यद्धो गायकमे	युद्ध गायको मे
२१९	३	।३	।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२८	२४	प्रेमवर्ती	प्रेमावती
२२८	२६	मिरगावती	मृगावती
२२९	२२	यह	ये
२३१	१४	दिव्यामनुष	दिव्यामानुष
२३१	१९	उपमेदादि	उपभेदादि
२३२	१९	पद्यवद्ध	पद्यबद्ध
२३२	२७	माधव-	माधवा-
२३३	१९	अपभ्रंश	अपभ्रंश
२३३	२९	ममिका	भूमिका
२३६	१९	गोरखवानी	गोरखबानी
२३६	२०	वाण	वाण
२३६	२९	गारखवानी	गोरखवानी
२३७	२,६,१९,२८	"	"
२४०	१८	विद्वतापूर्ण	विद्वत्तापूर्ण
२४२	२३	अब्दल	अब्दुल
२४२	२४	पदुमावली	पदुमावती
२४३	१८	होना	होने
२४३	२१	अन्त्यनुप्रास	अन्त्यानुप्रास
२४४	२१	क	का
२४७	६	कम से	कम से कम
२४९	२७	गाथा के दोहा पथ्या	गाथा के पथ्या
२४९	२८	पथ्या	पथ्या
२५३	६	अर्धमालची	अर्धमालती
२५३	१४	विज्जुणन्माला	विज्जुन्माला
२५३	२९	भास्कर	प्रभाकर
२५४	२	मिलते न	मिलते है न
२५४	५	काय्यों	काव्यों
२५४	९	प झटिका	पज्झटिका
२५४	२४	हम्मीरासो	हम्मीररासो

२५६	२६	हे	है
२५७	५	के मैं छदो	के छदो
२५७	७	मालची	मालती
२५७	२२	गीतमालची	गीतमालती
२५८	२	"	"
२६०	८	यदि	यति
२६१	२२	पृ० रा० के	पृ० रा० मे
२६२	२	और न	और
२६२	११	भुजगप्रपात	भुजगप्रयात
२६२	१३	स्तर	सार
२६२	१६	नन्दास	नन्ददास
२६२	२३	पय	पर
२६३	२	किमा	किया
२६३	८	प्र झटिका	प्रज्झटिका
२६३	१२	रुपक्रान्ता	रूपक्रान्ता
२६३	१५	ग्रहीत	गृहीत
२६३	३०	हो	हो
२६३	३०	वत्ता	घत्ता
२६४	३०	ममरावलि	भमरावलि
२६५	१	३६५	२६५
२६७	२७	सामन्य	सामान्य
२७०	६	विषयि	विषय
२७१	४	ग्रहीत	गृहीत
२७५	५	मट	भेट
२७७	९	ग्रहीत	गृहीत
२७८	१५	कृणकथा	कृष्णकथा